UNIVERSAL LIBRARY
OU_180911
UNIVERSAL LIBRARY

# पार्थ पत्नी महासती द्रौपदी

( प्रबन्ध काव्य )

अवधनारायण शर्मा

OUP—68—11-1-68—2,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81·6 S53P Accession No. H 3626

Author शर्मा, अवधनारायण

Title पार्थपत्नी महासती द्रौपदी · 1961

This book should be returned on or before the date last marked below.

# पार्थ पत्नी
# महासती द्रौपदी

(प्रबन्ध काव्य)

अवधनारायण शर्मा

प्राक्कथन

डा० राजबली पाण्डेय

प्रथम संस्करण
१९६१

मूल्य ५)

प्रकाशक—
कैलाश प्रकाशन
रामगढ़
बाभनमाई, प्रतापगढ़

मुद्रक :
रामाकृष्णा प्रेस,
कटरा नील, दिल्ली ।

# प्राक्कथन

महासती द्रौपदी काव्य के रूप में पुनः प्रस्तुत हुई है। महाभारत के कथानक और पात्र न जाने कितनी बार चित्रित हो चुके हैं फिर भी उनकी नवीनता नहीं समाप्त होती। वे अभिनव आभा और आकर्षण के साथ फिर नया प्रभाव पाठक और जनता पर डालते हैं। महाभारत कथा, इतिहास और रूपक सभी है। द्रौपदी भी। वह ऐतिहासिक नारी है किन्तु एक महान शक्ति का रूपक अथवा प्रतीक भी। वह मानव को सतत् चेतना और प्रेरणा देने वाली चिरसंगिनी आद्या शक्ति है। अनेक परिस्थितियों और रूपों में उसकी अभिव्यक्ति होती है। श्री अवधनारायण शर्मा ने काव्य में इसी सिद्धान्त को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। जैसा कि विदित है काव्य धर्मशास्त्र अथवा दर्शन-शास्त्र नहीं है। कला के द्वारा ही महान सत्य को यह अंकित करता है। इस कला में श्री शर्माजी को पर्याप्त सफलता मिली है। सभी वय के पाठकों को, विशेषत: वयस्कों को, इस काव्य से प्रचुर प्रेरणा मिलेगी ऐसी मेरी धारणा है। आशा है साहित्य जगत में इस कृति का समुचित आदर होगा।

नागरी प्रचारणी सभा<br>वाराणसी }

(डा०) राजबली पाण्डेय

# भूमिका

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में महाभारत को अत्यधिक महत्वशील माना गया है। पाँच हजार वर्षों से सुरक्षित यह संहिता भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विश्वकोष के रूप में जानी जाती है। इस विशद ग्रन्थ में भारत के वर्ग विशेष की धार्मिक भावनाओं और परम्पराओं को लिपिबद्ध करके रखा गया है। किन्तु ग्रंथ का महत्व इतना ही नहीं समझा जाना चाहिए। इस ग्रंथ में मानव जाति को सुखमय बनाने वाले सभी सहज साध्य उपायों का समावेश हैं जिन्हें 'धर्म' शब्द से विभूषित किया जाता है।

धारणाद्धर्म इत्याहुधर्मो धारयते प्रजा ।
यत्स्याद्धारण संयुक्तं स धर्म इत्युदाहृत: ।।

एवं न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् धर्मं त्यजेज्जीवितास्यापि हेतोः ।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये नित्यो जीवो धातुरस्य त्वनित्यः ।।

आदि श्लोकों से यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज और जनता के धारण के योग्य नियमों को धर्म के नाम से जाना जाय और ऐसे नियमों को काम से, भय से, मोह से अथवा प्राणरक्षा के लिए भी कोई न तोड़े। यही सार अंश महाभारत की महानता का उद्घोष करता है। कहना न होगा कि अर्वाचीन विद्वानों के मतानुसार यही 'धर्म सार' किसी भी महान संस्कृति के लिए पोषक तत्व है। तो यों अपेक्षाकृत नवीन शब्द 'संस्कृति' इसी धर्म शब्द की विशाल सीमा में पनपता है। संस्कृति महान बनाती है। महाभारत इसलिए महान् है।

मानव प्रकृति, चेतना प्रधान है। स्नेह, मोह, ममता त्याग आदि स्थायी चेतनायें उसमें आज भी पहिले के समान मौजूद है। सिद्धान्त रूप से आज भी दिव्य जीवनयापन सभी ऐश्वर्यों से महान माना गया है। महानता यों तो अन्तःमन की वस्तु है परन्तु उसका मूर्त रूप समझाते हुए अवसर कहा जाता है कि त्याग से महानता जन्म पाती है। महानता के इस विशेषण से समाज जिसे भी विभूषित कर देता है विचारक उसे अपने आकर्षण का केन्द्र समझते हैं। महाभारत के कथानक और पात्रों पर समय-समय पर लेखनी उठने का कारण भी यही है। महाभारत के पात्र 'आविर्भावी होते हुऐ भी मानवी हैं'। पर इनमें महासती द्रौपदी हमारी मनीषा से अधिक सहानुभूति प्राप्त करती है। श्री अवधनारायण शर्मा के शब्दों में कहूँ तो यों :—

"···पर द्रौपदी की करुणगाथा सदा ऐकाकी रही।"

निःसंदेह द्रौपदी की विवशता को सहानुभूति, विवेकशीलता को प्रशंसा तथा तपस्या को साधवाद मिलना ही चाहिए।

अधिक प्रचलित घटनाचक्र के आधार पर द्रौपदी का जीवन कई बार साहित्य जगत् में अवतरित हुआ है परन्तु मेरे विचार में श्री अवधनारायण जी शर्मा के द्वारा "पार्थ पत्नी" के रूप में यह चरित्र शायद मौलिक रूप में ही आया है। अपने निवेदन में श्री शर्मा जी ने इससे सम्बन्धित स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है। मूल कथा में भी शर्मा जी ने सबल प्रमाण और अकाट्य तर्क रखे हैं। इन पर निर्णय देने का अधिकार तो होगा अधिकारी पाठकों को ही, मैं तो केवल कुछ प्रश्न जिज्ञासु के रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

महाभारत के विषय में एक कहावत प्रचलित है 'यन्न भारते तन्न भारते' अर्थात् जो बात महाभारत में नहीं है वह बात भारत में नहीं। इसी बात को अगर हम यों कहें कि जो बात भारत में नहीं हैं वह महाभारत में नहीं होनी चाहिए तो कोई आपत्ति न होगी। लगता तो है कि कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा परन्तु बात इतनी आसान नहीं। शतपथ ब्राह्मण, गोपथ ब्राह्मण तथा ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थों में स्त्री के बहुपतित्व को स्पष्ट रूप से निषिद्ध दिखाने पर, या महाभारत के अनुसार धर्मराज युधिष्ठिर के "त्वया जिता फाल्गुन याज्ञसेनी····· गृहाण पाणिं विधिवत् त्वमस्याः" कहने पर राजा द्रुपद की, पाण्डु नन्दन अर्जुन को अपना जामाता बनाने की काम[1] ना होने पर भी पतिव्रता वीरांगना द्रौपदी तथा संसार विश्रुत धर्म प्राण पाण्डवों के चरित्रों को, केवल 'कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे' का सहारा लेकर सही रूप में न समझने का दुराग्रह है ही। अनजाने में माँ का प्रमाद पाण्डवों ने इसीलिए महत्वशील माना कि वेदों ने 'मातृदेवो भव' कहा है? यों बुद्धि का तकाजा कुछ और ही है। स्वयं महाभारतकार कहता है 'सा कुन्ती अधर्म भीता'। तब आपको शर्माजी के तर्क को जो उन्होंने सही विचार के उपरान्त रखा है स्वीकार करना ही होगा।

शुभ संस्कारों से सजे सब आर्यजन देखे गये।
इससे धरा पर श्रेष्ठ नर वे, वीरवर लेखे गये॥
लघु बन्धु पत्नी को जिन्होंने, पुत्रि सम देखा सदा।
यह बात भारत में गई पाई सदा औ' सर्वदा॥

× × ×

---

१. यत्रनेस्य कामस्तु पाण्डवाय किरीटिने
कृष्णां दद्यामिति सदा न चैतद् विवृणोति सः

पाण्डव सभी रक्षक रहेंगे पति सरिस संसार में ।
संयम, नियम निश्चित रहेंगे, सभी के व्यवहार में ।।
× × ×
माँ ने कहा तुमसे समझ लो राजनैतिक रत्न है ।
लगता मुझे इस दृष्टि से तुमने न किया प्रयत्न है ।।
यह एकता की ज्योति सम सबके हृदय-आकाश में ।
होगी सुरक्षित उस तरह, ज्यों प्राण रहते श्वास में ।।

अस्तु द्रौपदी धर्मराज युधिष्ठिर के हित मंत्री, भीम की चेतना, सहदेव की सहोदरा, नकुल की कुलाङ्गना और पार्थ की प्रिय पत्नी थी, मानना ही होगा ।

हों, पार्थ इसके पति लिए गार्हस्थ्य का सिर भार हो ।
विकसित करें कुल-तन्तु विधिवत्, स्नेहमय संसार हो ।

कुछ प्रचलित परम्पराओं की ओर भी अधिकारी विद्वानों ने ध्यान दिलाया है। इनमें राय बहादुर श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य का नाम प्रमुख है । महाभारत मीमाँसा में श्री वैद्य ने लिखा है कि आज भी उत्तरप्रदेश के पहाड़ी इलाकों (जोनसार-बाबर) में बहु पति प्रथा जारी है । इस सम्बन्ध में मेरा नम्र निवेदन है कि उक्त प्रदेशों में पाई जाने वाली प्रथा प्रस्तुत ग्रंथ की मान्यता को काट नहीं सकती क्योंकि वहाँ विवाह केवल एक और सबसे बड़े भाई का ही होता है । यही नहीं द्रौपदी के विवाह से सम्बन्धित कथा प्रसंग यदि ऐसी परम्पराओं पर आधारित होता तो माता कुन्ती को पश्चाताप करने की आवश्यकता ही क्या थी ? एक प्रश्न और भी । जब महाभारत के अन्य पात्र भी, लगता है कि हमारी परम्पराओं और नैतिक मापदण्ड पर खरे नहीं उतरते तो, केवल द्रौपदी के चित्रण पर शंका क्यों ? इस सम्बन्ध में मैं इतना ही कहूँगा कि जन साधारण उक्त पात्रों को जितना समझते जानते हैं उतना ही काफी है । पर महासती द्रौपदी की स्थिति स्पष्ट होना जनहित में है ।

इस कथानक के सम्बन्ध में उक्त प्रमाणों से कहीं अधिक सशक्त और विस्तृत प्रमाण अधिकारी विद्वानों के भी मिले हैं जिनका स्थानाभाव के कारण उल्लेख सम्भव नहीं है ।

धार्मिक श्रद्धा ही जन-कल्याण की कसौटी है । प्राचीन संस्कृति पर असीम श्रद्धा रखते हुए पार्थ पत्नी महासती द्रौपदी का चरित्र चित्रण निःसंदेह जनहित में होगा ऐसी मेरी धारणा है । अस्तु श्री अवधनारायण शर्मा का यह सद् प्रयत्न स्तुत्य है ।

जैसा कि मुझे ज्ञात हुआ है महासती द्रौपदी प्रबन्ध काव्य के रूप में शर्मा जी की प्रथम रचना[1] है। अपने इस प्रथम प्रयास में कवि कितना सफल हुआ है वह तो पाठक आँके पर बानगी के रूप में इन पदों की छटा को तो देख ही लें। द्रौपदी की स्पष्टोक्तियाँ देखिये—

मैं जानती थी चन्द्रमा से शाँति लेना चाहिए।
जल से जगत हित सीख, भू सम भार सहना चाहिए।।
रवि से मिले नित तेज, वायु सुशक्ति की दाता बने।
इस भाँति तप बल पर मनुज निज भाग्य निर्माता बने।।

द्रौपदी में ओज और आत्म-सम्मान की भावना कवि के शब्दों में इस प्रकार चित्रित है —

जिसने लेकर जन्म मातृस्तन का पान किया होगा।
है मेरा विश्वास कर्महित उसने ध्यान दिया होगा।।
अपना पापाचार पाप है, केवल यही न हम माने।
उसका लखना सुनना अथवा सहना सदा पाप जाने।।

और तनिक इन पदों को भी—

हूँ याज्ञसेनी, धृष्टद्युम्न की भगनि, पत्नी पार्थ की।
लाई गई थी आर्त यों मैं, बात थी सब स्वार्थ की।।
मुझ एक वसना, ऋतुमती, को देख उनको सुख हुआ।
विहँसा शुकनि औ' कर्ण, माधव ! बोलिये यह क्यों हुआ?
अपमान जो मेरा हुआ अब सोचिये क्या तथ्य है।
क्या कुल वधु हूँ भीष्म की, धृतराष्ट्र की, यह सत्य है ?
पुरुवंश का प्रत्येक नर अन्याय के सम्मुख हुआ।
पर मौन थे अर्जुन वहाँ, यदुनाथ यह क्यों कर हुआ ?

प्रस्तुत ग्रन्थ में ऐसे अनेकों स्थल हैं जहाँ शर्मा जी को मिली सफलता स्पष्ट दीखेगी। पर सब एक मत होंगे यह तो कहा नहीं जा सकता। कविता आपकी सहानुभूति सदा चाहती रही है और कवि भी। अतः इसी पुस्तक की दो पंक्तियों द्वारा मैं अपना दृष्टिकोण भी रख दूँ—

'यह सत्य का दधि है, इसे विश्वास से मथ लीजिए।
नवनीत नित नव प्राप्त होगा, यत्न तो कुछ कीजिए।।'

३८ ई० तिमारपुर
दिल्ली-८

—विश्वनाथ मिश्र

---

१. यद्यपि रचना प्रथम है पर इस पुस्तक के बाद की रचनाओं का प्रकाशन हो चुका है।

# निवेदन

द्रौपदी का जीवन-चरित्र महाभारत का एक महत्वपूर्ण अंग है जिसके रचयिता भगवान वेद व्यास जी हैं। महाभारत हिन्दू संस्कृति का एक महान ग्रन्थ है जिसके द्वारा मानव जीवन के सभी आदर्शों का ज्ञान उपलब्ध हो सकता है। भगवान व्यास ने इस ज्ञान का कहीं विस्तार से और कहीं संक्षेप में वर्णन किया है। लोक-व्यवहार और लोक-मर्यादा पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया है।

अनुश्रुति है कि भगवान वेद व्यास की महाभारत संहिता में ६० लाख श्लोक थे। बाद में यह संहिता चार भागों में विभाजित हुई। प्रथम भाग में ३० लाख श्लोक संग्रहीत थे जिन्हें नारद जी ने देव लोक में देवताओं को सुनाया था। १५ लाख श्लोकों का दूसरा भाग पितृलोक में प्रचलित हुआ। इसके वक्ता देवल असित हैं और श्रोता हैं—पितृगण। तीसरे भाग में १४ लाख श्लोक थे जिन्हें श्री शुकदेव जी के श्रीमुख से गन्धर्वों, यक्षों तथा राक्षसों ने सुना। शेष एक लाख श्लोकों का प्रचार मनुष्य लोक में हुआ। यह मूलसंहिता का चतुर्थ भाग है। इसके वक्ता श्री वैशम्पायन और श्रोता जन्मेजय तथा अन्य ऋषि हैं। जन्मेजय से इन श्लोको का श्रवण करने के पश्चात् सौति उग्रश्रवा ने नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियों को भी यही भाग सुनाया था। भगवान व्यास ने एक लाख श्लोकों को पूरे सौ पर्वों में बाँटकर महाभारत पूर्ण किया था परन्तु उग्रश्रवा में नैमिषारण्य में कथा सुनाते समय उन १०० पर्वों को १८ पर्वों में विभाजित करके सुनाया। अनुक्रमणिका के अनुसार महाभारत में कुल १९२३ अध्याय और ८४२४४ श्लोक हैं हरिवंश के बारह हजार श्लोकों को मिलाकर कुल ९६२४४ श्लोक होते हैं इससे प्रतीत होता है कि बीच के कुछ श्लोकों का लोप हो गया है।

कुछ लोगों की धारणा है कि महाभारत के तीन भाग हैं जय, भारत और महाभारत। और यह सौति उग्रश्रवा की रचना मानी जाती है। जय में

कितने श्लोक थे, यह ठीक ठीक पता नहीं चलता। परन्तु ऐसा कहा जाता है कि जय के श्लोकों में वृद्धि कर वैशम्पायन ने २४ हजार श्लोकों की भारत संहिता बनाई। फिर उसी में बहुत से नये नये उपाख्यान जोड़कर सौति ने एक लाख श्लोकों का महाभारत रच डाला। इस मत के अनुसार, 'भारत' को महान आकार देने के कारण ग्रन्थ का नाम महाभारत पड़ा। विद्वानों का यह भी मत है कि भगवान व्यास, वैशम्पायन तथा सौति तीनों समकालीन नहीं थे।

अस्तु स्पष्ट है कि यदि वैशम्पायन व्यास जी के शिष्य नहीं थे तो उनकी शिष्य-परम्परा में रहे होंगे। ऐसा सम्भव भी लगता है। भारतवर्ष की तत्कालीन परिस्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए इन विद्वानों का यह भी कथन है कि शक संवत् से तीन सौ वर्ष पूर्व, जब बौद्धमत तथा जैनमत के प्रसार के कारण सनातन धर्म का प्रभाव क्षीण हो रहा था, सौति ने महाभारत को वर्तमान रूप प्रदान किया। इस प्रकार विविध उपाख्यानों के प्रवेश से, अथवा श्लोकों के इधर-उधर हो जाने से महाभारत के मूल रूप में कुछ अन्तर आ जाना स्वाभाविक ही है।

एक बात विशेष ध्यान देने योग्य और है। इस ग्रंथ में आठ हजार आठ सौ श्लोक ऐसे हैं जिनके सम्बंध में भगवान व्यास ने स्वयं शपथ पूर्वक कहा है कि उनका अर्थ केवल उन्हें और शुकदेव जी को छोड़ कर अन्य कोई नहीं जानता। संजय जानते थे या नहीं इसमें उन्हें स्वयं संदेह था। ये श्लोक जिन्हें इस ग्रंथ की कुंजी माना जाता है, अभी तक महाभारत में मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त भी इस ग्रन्थ के, भाव-शुद्धि करने के उपरान्त पठन पर भी विशेष जोर दिया गया है। अस्तु महाभारत के किसी भी नायक या नायिका का चरित्र-वर्णन यदि तत्कालीन संस्कृति तथा लोक मर्यादा को ध्यान में रखते हुए करने का यत्न किया जाता है, तो वह मूल चरित्र के प्रति न्याय ही है।

यद्यपि द्रौपदी, जो महाभारत की मुख्य नायिका है, के विषय में कहा जाता है कि वह पाँचों पाण्डवों की पत्नी थी, परन्तु उस समय की लोक मर्यादा, पाण्डवों की सत्य-प्रियता धार्मिक आचरण और जगत व्यवहार को ध्यान में रखते हुए, यह बात असम्भव प्रतीत होती है। ध्यान रखना चाहिये कि हम पाण्डवों का जन्म, सत्य, धर्म, न्याय और मर्यादा की स्थापना के हेतु ही हुआ मानते हैं। यदि उन्होंने अपने जीवनकाल में इसके विरुद्ध कोई कार्य किया है तो यही समझना उचित होगा कि उनके चरित्र वर्णन में कहीं न कहीं कुछ भूल अवश्य हुई है।

हमारे प्राचीन ग्रंथों में स्थान-स्थान पर ऐसी अन्योक्तियां और अलंकार पाये जाते हैं, जिनका अर्थ समझना जन साधारण की बुद्धि के बाहर है। खेद है कि विद्वानों ने भी मूल भाव को बिना समझे अर्थ का अनर्थ कर देने पर जन साधारण को विवश किया है। कहीं-कहीं पर अप्रचलित, अविश्वसनीय और अनहोनी बातों को ईश्वरीय मान कर उनके शुद्ध रूप और अर्थ पर धर्म का पर्दा डाल दिया गया है। यद्यपि ईश्वर सर्वशक्तिमान है और उनके लिये कोई भी कार्य असंभव नहीं है तथा उस पर संदेह करना हमारी धृष्टता ही होगी, तथापि देखा गया है कि ईश्वर ने अवतार लेकर कभी भी लोक-मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया है और सदैव सत्य तथा धर्म को महत्व दिया है। उन्होंने यद्यपि अवतार लिया किन्तु कहीं भी यह प्रकट नहीं किया कि वे ईश्वर के ही अवतार हैं। जीवनमुक्त होने के पश्चात् ही लोगों ने धार्मिक भावना, न्याय-प्रियता तथा महान व्यक्तितत्व को परख कर उनका आदर किया। पर उनके अवतार काल में जीवित व्यक्तियों ने उन्हें कभी साक्षात् ईश्वर की संज्ञा नहीं प्रदान की। भगवान रामचन्द्र भगवान कृष्ण और भगवान बुद्ध, आदि जिन्हें हम आज ईश्वर के अवतार मानते हैं, सभी अपने जीवन काल ही में ईश्वर नहीं माने गये। उनकी गणना, ज्ञानी मानी व्यक्तियों में ही थी। उनके गत होने के उपरान्त ही संसार ने उन्हें ईश्वर के अवतार की उपाधि प्रदान दी। इन सभी महापुरुषों ने अपने जीवन काल में ऐसे-ऐसे महान कार्य किये, जो एक जन साधारण के बूते के बाहर हैं।

ऐसा देखा जाता है कि कोई भी लेखक जब किसी व्यक्तितत्व के प्रति अपने विचार व्यक्त करने लगता है तब उसकी अभिव्यक्ति अतिरंजन की सीमा पर पहुँच जाती है। प्राय: उस व्यक्ति के वास्तविक गुणों और दोषों को भूल जाता है और स्वयं अपने विचार प्रवाह की धारा में ही बह जाता है। अपने प्राचीन ग्रंथों में कुछ स्थानों पर ऐसी ही बातें लिखी हुई हैं जो साधारण व्यक्ति की बुद्धि के परे हैं। उदाहरणार्थ रामायण और महाभारत में वर्णित निम्न घटनाओं की ओर ध्यान दीजिये :—

१—हनुमान जी के लंका जाते समय देवताओं ने उनकी यह परीक्षा लेने के लिये कि वे भगवान श्री रामचन्द्र जी का कार्य कर सकेंगे या नहीं सर्पों की माता सुरसा को भेजा। सुरसा हनुमानजी को निगल कर अपनी क्षुधा मिटाने का आग्रह करती है। इस पर हनुमान जी अपना शरीर इतना विशाल कर लेते हैं कि सुरसा को उन्हें निगलने के लिये अपना मुंह सौ योजन का बनाना

पड़ा। एक सौ योजन का मुख बनाने के लिए सुरसा को अपना शरीर कितना विशाल करना पड़ा होगा और उसके कारण प्राणी मात्र को कितना कष्ट हुआ होगा, इसकी सहज कल्पना भी नहीं की जा सकती।

२—इसी प्रकार लक्ष्मण जी को ब्रह्म शक्ति लगने पर, हनुमानजी संजीवनी बूटी लेने पर्वत पर गये। बूटी के न मिलने पर वे पर्वत ही उखाड़ कर ले आये। अब प्रश्न है कि पर्वत को उन्होंने कहाँ पर रखा और जहाँ भी वह रखा गया वहाँ के पदार्थों का क्या हुआ इन बातों का कुछ मनोवैज्ञानिक और ठीक-ठीक उत्तर नहीं मिलता। इसी प्रकार की अन्य घटनाएं जो साधारण बुद्धि के परे हैं, रामायण में मिलती हैं।

• ३—महाभारत में भी द्रौपदी को वस्त्रहीन करने के लिये दुःशासन उसकी साड़ी खींचता पर साड़ी बढ़ती ही चली जाती है। उसका अन्त नहीं होता। वह बात ठीक नहीं जान पड़ती। परमात्मा इस प्रकार भी किसी की रक्षा करते हैं ऐसा हम सबका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं है। परमात्मा ऐसे अवसर पर उचित कारण उत्पन्न कर देते हैं और फिर वह काम उनकी इच्छानुसार हो जाता है, ऐसा मानना ठीक जान पड़ता है। द्रौपदी की लाज रखने के लिए भगवान ने कोई ऐसा कारण उत्पन्न किया होगा जिससे उसकी लाज बच गई।

४—अर्जुन की एक अन्य घटना भी मन में खटकती है। ब्राह्मण की गायों की रक्षा के लिये वे अपने शस्त्र लेने धर्मराज के कक्ष में, जहाँ द्रौपदी और धर्म साथ बैठे हैं चले जाते हैं। क्या अर्जुन को इतना ज्ञान नहीं था कि प्रतिज्ञा भंग करने से उन्हें प्रायश्चित करना पड़ेगा? क्या उन्हें यह पता नहीं था कि कौरव उनके साथ चालें चल रहे हैं? क्या वे किसी और को, भेज कर धर्मराज को अपने आने की सूचना नहीं दे सकते थे? सब कुछ हो सकता था। पर, लगता है कि इसमें न तो कोई भूल हुई है और न भूल की गई है। इसमें एक रहस्य है। पाण्डवों को ज्ञान था कि एक न एक दिन महाभारत होगा। उन्हें सब पड़ोसी राज्यों से भेंट करनी थी। कौन उनका साथ देगा और कौन नहीं, देखना था। परन्तु यह काम वे खुले आम नहीं करना चाहते थे। उसके लिये कोई बहाना आवश्यक था।

५—इसी प्रकार गोवर्धन पर्वत की बात लीजिए। कहते हैं कि बाल कृष्ण ने उसे एक अंगुली पर उठा लिया था। यह बात भी ठीक नहीं जान पड़ती। हाँ, यह माना जा सकता है कि उसको बड़ा करने में कृष्ण का बड़ा हाथ है।

उनके इशारे मात्र से ही लोगों ने इसको ऊँचा उठा कर इतना बड़ा कर दिया कि शत्रुओं का भय कम हो गया।[1]

और भी कई ऐसी घटनाएं हैं जिन्हें ज्यों का त्यों मान लेना स्वाभाविक नहीं जान पड़ता। ये सब बातें कल्पना-युक्त हैं और उनके वास्तविक भाव को समझने की बड़ी आवश्यकता है। ऐसी बातों को अतिशयोक्ति समझना चाहिये या समझना चाहिए कि वह कवि-कल्पना पर आधारित हैं। हमारे सभी प्राचीन ग्रन्थों में ऐसी अतिशयोक्तियाँ प्रचुरता से मिलती हैं। हमारे ग्रन्थों की भावों की गहराई में न जाकर, लोगों ने इनमें धार्मिकता की इतनी गहरी पुट दे दी है कि हम उससे आगे सोच ही नहीं पाते।

महाभारत में कर्मनीति, राजनीति तथा जीवन सम्बन्धी सभी नीतियों का वर्णन है। वास्तव में यह कहना अनुचित नहीं है कि महाभारत से बड़ा कोई दूसरा ग्रन्थ विश्व में नहीं है। इसका कारण उसका कलेवर नहीं, बल्कि यह है कि जीवन सम्बन्धी शायद कोई विषय ऐसा होगा जिसका उल्लेख महाभारत में न आया हो। प्रत्येक कथा के अध्ययन और मनन से उसका भावार्थ ठीक-ठीक समझ में आता है। महाभारत ग्रन्थ अथाह सागर है, उसमें जितनी बार गोते लगाइये, नये-नये रत्न मिलते हैं। महाभारत के कथानक पर बहुत से ग्रन्थों की रचना की गई है। पर उन सबके विचार एक से नहीं हैं। लोगों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार अपने विषय चुने हैं और उन पर अपने-अपने विचार व्यक्त किये हैं। सभी के विचार मननीय और आदरणीय हैं।

सती द्रौपदी के विषय में भी कई पुस्तकें उपलब्ध हैं। यद्यपि इन पुस्तकों के विचारों में थोड़ी बहुत विषमता है, फिर भी सभी ने द्रौपदी को पाण्डवों की पत्नी माना है। यदि द्रौपदी के जीवन को एक साधारण जीवन मान लिया जाय, तो उसके पांच पति रहे होंगे, यह भावना टिक नहीं पाती। इसलिये, उसे कोई इन्द्राणी मानता है और कोई चन्डी देवी का अवतार कहता है। क्योंकि ऐसा कहने से लोगों का ध्यान धर्म की ओर झुक जाता है और बहुपति प्रथा की ओर नहीं जाता है। ऐसा मानना कहाँ तक उचित है, यह मैं नहीं कह सकता परन्तु यदि हम द्रौपदी को एक साधारण मानवी के रूप में

१. आज भी मथुरा जाने वाले यात्री कुछ पत्थर गोवर्धन पर्वत पर रख आते हैं। शायद इसके पीछे भी वही धारणा छिपी है।

देखते हैं तो उसके पाँच पति थे यह मानना जगत धर्म के सर्वथा विपरीत है। पाँच पतियों की भावना बिलकुल ग़लत जान पड़ती है। मेरा यह संदेह करना कि इस धारणा में अवश्य कहीं न कहीं भूल हुई है पाठकों को उचित जान पड़ेगा। लोक मर्यादा को देखते हुए ऐसा मानना अन्याय है कि द्रौपदी के पाँच पति थे। इसी अन्याय का प्रतिकार करने के लिए मैंने यह लघु यत्न किया है। हो सकता है कि कुछ बातें मेरे ध्यान में न आ पाई हों, फिर भी द्रौपदी सत्य, धर्म, न्याय, लोक मर्यादा और हिन्दू संस्कृति की परम्परा को देखते हुए अर्जुन की ही धर्म पत्नी थी ऐसी मेरी धारणा है। वस्तु का बँटवारा हो सकता है, परन्तु धर्म पत्नी का बँटवारा कभी नहीं होता है। मेरी प्रार्थना है कि विज्ञजन मेरे इस दृष्टिकोण पर ध्यानपूर्वक विचार करने का कष्ट करें, तथा अपना संशोधित निर्णय प्रदान करें, जो सर्वमान्य और हिन्दू संस्कृति के आदर्शों के अनुरूप हो।

मेरे इस प्रयत्न के फलस्वरूप अगर आँशिक रूप में भी प्राचीन संस्कृति को ग्रहण करने की भावना बढ़ी तो यह श्रम सफल हो जायेगा। तथास्तु।

इसी स्थल पर मैं उन सभी सज्जनों का अनुग्रह स्वीकार करना अपना परम कर्तव्य समझता हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ को पाठकों के कर कमलों तक पहुँचाने में अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया है। मेरे इन सहयोगियों में तरुण साहित्यकार श्री विश्वनाथ मिश्र का नाम विशेष रूपेण उल्लेखनीय है जिन्होंने ग्रन्थ के कलेवर को सजाने-सवाँरने में अनथक परिश्रम किया है।

गणतंत्र दिवस १९६१
सिरपुर कागजनगर
(आन्ध्र प्रदेश)

अवधनारायण शर्मा

# गौरी-वंदना

मानवता-रक्षा-हित तुमने, कथा सुनी अविनाशी से ।
प्रत्युपकार न हो पायेगा, तेरा भूतल वासी से ।।
मां गौरी कब उऋण हो सके, तुझ से तेरे भक्त अनेक ।
जिनकी तू रक्षा करती है, औ' रखती है जिनकी टेक ।।

करी अर्चना जिसने तेरी, उसने वांछित फल पाया ।
सुखद रहा जीवन इस जग में, परम धन्य वह कहलाया ।।
कष्टों में जिसने आराधा, बाधायें की उसकी दूर ।
नरपति किये रंक नर तूने, निर्बल बने अन्यतम् सूर ।।

तप बल से तूने पाया है, देवि शम्भु का जीवन संग ।
तेरी शुचिता की द्योतक है, अविरल भागीरथी तरंग ।।
तेरे ही पावन प्रताप से, हुए पुनीत आर्य, माता !
तेरा यशोगान गा युग से, कवि निज वाणी को पाता ।।

द्रुपद सुता की लाज रखी औ' उसे दिया समुचित सम्मान ।
महासती कहलाई कृष्णा, उससे भारत हुआ महान ।।
पावन गाथा उसकी गाना, है अभीष्ठ मेरा मां आज ।
जगत बंदनी, पतित पावनी, जगदम्बा, रखना तुम लाज ।।

# भारत-महाभारत और संस्कृति

मिलते प्रमाण अनेक जिनसे, सिद्ध होता है यही।
जिस थल हुआ आलोक सद् का, थी यही भारत मही ।।
इस पात्रता का हेतु केवल, शुद्ध जन मन बुद्धि थी।
बहुजन हितैषी[1] नीति द्वारा, प्राप्त की, यह सिद्धि थी ।।

'मुझको चलो ले दूर तम से, ज्ञान के आलोक में।
जग का रहूँ मैं मित्र प्रतिपल, हर्ष अथवा शोक में'[2] ।।
थी कामना ऐसी प्रबल इस देश के नर नारि की।
समता कहाँ मिलती कहो तो, आर्यजन व्यवहार की ।।

वे विश्व व्यापी नियम, जिनको मानता सारा जगत्।
मर्मज्ञ आर्यों ने उन्हें, 'ऋतु' [3] नाम से जाना सतत् ।।
ऋतु रूप मानव आचरण हों, मान्यता ऐसी रही।
उनके पुरातन वाङ्मय से सिद्ध होता है यही ।।

---

१. बहुजनहिताय-बहुजन सुखाय

२. 'तमसोमाज्योतिर्गमय'

३. "वेदों में सृष्टि के विश्व-व्यापी नियमों को 'ऋतु' कहा गया था। ऋतु के अनुसार जीवन का व्यवहार मानव के लिए श्रेष्ठ मार्ग था।...... ......वैदिक परिभाषाओं का आने वाले युग में विकास हुआ। उस समय जो शब्द सब से ऊपर तैर कर आया वह 'धर्म' था। धर्म शब्द भारतीय संस्कृति का सार्थक और समर्थ शब्द बन गया।"

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल

लेकर प्रतीकों का सहारा कर सहज शुभ कर्म को।
संक्षेप में वे कह गये थे विश्व व्यापी धर्म को॥
संज्ञा मिली सद्धर्म की इस जग हितैषी नीति को।
जो सींचती युग तक रहेगी प्राणियों में प्रीति को॥

शुभ कार्य करने का सभी को सब समय अधिकार है।
वे कार्य जिनकी पूर्ति हो सब को सहज स्वीकार है॥
निज कर्म तक सीमित रहे कब आर्य, जन हित सोचते।
वे श्रेष्ठ मानव विश्व के जन संकटों को मोचते॥

सौभाग्यशाली देश है अपना कि प्रभु जन्मे यहीं।
अन्यत्र भी ऐसा हुआ हो यह सुना देखा नहीं॥
माया सहित जन्मे यहाँ हरि, सर्व सम्मत बात है।
कल्याण जगती का हुआ यह भी सभी को याद है॥

अवतार श्रीपति के हुए हरने धरा के भार को।
करने स्वजन पर प्रीति देने ज्योति नव, अँधियार को॥
अवतार हुए अनेक जिनके कार्य परमादर्श हैं।
अनुसरण करने से शमन होते सकल संघर्ष हैं॥

जन्मे तपस्वी वीर, धीर, प्रवीण, ज्ञानी श्रेष्ठ नर।
आये यहां पर वीतरागी[1], बुद्ध[2] और प्रबुद्ध वर॥
यह तो हुई नर रूप की चर्चा अभी कुछ शेष है।
कहना कथा उनकी, कि जिनका, नारि कोमल वेश है॥

---

१. महावीर स्वामी २. भगवान तथागत्

प्रतिपाद्य है यह सत्य युग से कह रहे हैं श्रेष्ठ नर।
रहते सहज अनुकूल हरि संसार के नर नारि[1] पर ॥
जग वंदनीया देवियां हैं हर समय मंगल मुदा ।
इनके चरित का गान करते आर्य जन-मन[2] सर्वदा ॥

जन्मी अनेकों देवियाँ, इस पुण्य भारत भूमि पर
जिनकी तपस्या साधनायें आज भी है अन्यतर ॥
अबला कहा कर भी सबल थी, शक्ति की आगार थीं।
थीं त्याग की प्रतिमूर्ति, निर्मल स्नेह की भंडार थीं ॥

वह ओज की प्रतिमा कि जिसका चरित् श्रेयस गेय है।
वह नारि-जग में अन्यतम जिसका सुयश जन प्रेय है ॥
हे लेखनो ! चल तीव्र गति से सफल होना है यदी।
कह द्रौपदी ! जय द्रौपदी !! जय द्रौपदी !!! यह द्रौपदी ॥

---

१. भारतीय संस्कृति ने सिद्धान्ततः स्त्री पुरुष दोनों को समदृष्टि से देखा था।

२. "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।"

## महासती द्रौपदी

आधार हो जिसका मनोविज्ञान, लौकिक मान्यता।
जिसके समझने मानने से, नष्ट हो अज्ञानता ॥
हूँ चाहता कुछ कह सकूं यों, द्रौपदी के चरित पर।
मत दे सकें अपना अगर इस कार्य में कुछ श्रेष्ठ नर ॥

है नाम दुनिया में अमर उस द्रौपदी का आज तक।
करते प्रशंसा हैं सभी उसकी सकल संकोच तज ॥
कोई नहीं अब तक सती ऐसी हुई संसार में।
होगी कभी, ऐसा न सम्भव आज के व्यवहार में ॥

पत्नी कहा कर पाँच की है द्रौपदी सच्ची सती।
क्या भाव है इसमें भरा सोचे इसे योगी यती ॥
महिमा सती की अतुल है, तुलना सही मिलती नहीं।
सब दृष्टि से है अन्यतम, सब मानते इसको सही ॥

खोजा बहुत मैंने मगर है एक भी पाया नहीं ।
दृष्टांत कोई ग्रन्थ में, अथवा प्रथा ऐसी कहीं ।।
हैं गूढ़ बातें ये, इन्हें साहित्य कहता श्लेष है ।
ज्ञानी समझते हैं इसे न जिनको न शंका लेश है ।।

मर्मी समझते हैं कहीं पर, हो गई कुछ भूल है ।
थे पाँच पति यह मानना संगत नहीं निर्मूल है ।।
अर्द्धांगिनी थी पार्थ की वह पार्थ थे उसके पती ।
पर शेष की सेवा सुश्रुषा से रही थी शोभती ।।

शुभ संस्कारों से सजे सब आर्य जन देखे गये ।
इससे धरा पर श्रेष्ठ नर वे वीरवर लेखे गये ।।
लघु बन्धु पत्नी को जिन्होंने पुत्रि सम देखा सदा ।
यह बात भारत में गई पाई सदा औ' सर्वदा ।।

सब मानते हैं यह युधिष्ठर धर्म के मर्मज्ञ थे ।
सब काम करते धर्मयुत औ' नीति श्रुति पथ भिज्ञ थे ।।
उनने कभी छोड़ा नहीं सत-पथ किसी भय-लोभ से ।
आदर्श के दीपक बने ऊँचे रहे व्यामोह से ।।

सद् धर्म के अवतार थे, पाण्डव सभी हम मानते ।
औ, धर्म युत है द्रौपदी का जन्म यह भी जानते ।।
करने प्रतिष्ठित धर्म इन सबका हुआ अवतार था ।
औ' लोक मर्यादा लिए आदर्शतम व्यवहार था ।।

कैसे हुई तब द्रौपदी के विषय में यह धारणा ।
संभव नहीं है जो कभी लौकिक प्रणय में मानना ॥
गम्भीरता से सोचिए अविवेक को अब दूर कर ।
थे धर्म-चुत हरगिज नहीं वे पाण्डु सुत वे वीरवर ॥

निश्चित जगत व्यवहार की बातें सभी थे जानते ।
पारस्परिक सम्बन्ध को भी थे सभी सनमानते ॥
करना नहीं थे चाहते कुछ काम ऐसा सृष्टि में ।
जिससे उन्हें कोई निरंकुश कह सके निज दृष्टि में ॥

यदि धर्म संकट आ पड़ा तो रंच भय पाते न थे ।
थे लाज रखते धर्म की क्षण हेतु भरमाते न थे ॥
थे याद रखते बात प्रण की सोचते मर्यादा भी ।
सद्धर्म औ' कर्तव्य हित थे सहज देते प्राण भी ॥

दुष्यन्त थे पाण्डव पितामह कह रहा इतिहास है ।
सद्धर्म से जिनका सजा था राज यह सब साक्ष्य है ॥
थे सुखद जनपद उस समय होता न पाप कभी कहीं ।
थे सब धनी सम्पन्न जन, थीं व्याधि बाधायें नहीं ॥

सब यवन देशों पर बना उनका प्रबल अधिकार था ।
बहुपति प्रथा का वहां भी किंचित नहीं सत्कार था ॥
चोरी, ठगी, छल, कुपथ, कामुकता न तब जन जानते ।
औ' एक पत्नीव्रत सहज दृढ़ चित्त होकर मानते ॥

थी इसी कुल की द्रौपदी शुचि धर्म-पत्नी एक की ।
थे पाँच पति कहना सुनाना बात है अविवेक की ।।
पति पाँच होना असम्भव जाति जन व्यवहार से ।
हैं भूल करते वे इसे जो मानते मनुहार से ।।

आभास होता है हमें प्राचीन निज इतिहास से ।
जग जानता है वे कथायें जो बँधी विश्वास से ।।
अति शुद्ध नारी भावना थी एक पति से प्रेम था ।
'डोली जहां—अर्थी वहीं से चले', उनका नेम था ।।

पल एक भी दूषित हुई कब धर्म की ये संहिता ।
यदि यह नहीं सम्भव हुआ तो वे रहीं अविवाहिता ।।
यदि विघ्न पड़ता था कभी वे जूझती थीं मर्म पर ।
है विश्व को भी गर्व इनके मान्यतामय कर्म पर ।।

कुल मान्यताओं औ' जगत व्यवहार के अनुसार यों ।
ब्याही गई थी द्रुपद कन्या व्यर्थ फिर प्रतिकार क्यों ?
इससे अधिक कहना सुनाना, क्यों कहें अनुकूल है ।
यह आर्य-जन-गण के लिए तो सर्वदा प्रतिकूल है ।।

बस ब्याह होगा एक से जिस संस्कृति का मूल है ।
विपरीत इसके जो कहा वह श्लेष है या भूल है ।।
बहु पति प्रथा को आदि से ही मानना अन्याय है ।
धर्मज्ञ औ' श्रुति नीति पालक आर्यजन सम्प्रदाय है ।।

आदर्श हित अवतार था यह मान्यता जिनको नहीं।
लौकिक कथा को कह अलौकिक जो कभी थकते नहीं ॥
यह भी बहुत सम्भव है कि वे कह दे भनित सब झूठ है।
जिसको सुधा मैं कह रहा वह तो गरल का घूंट है ॥

है बात केवल समझने की औ' समझ पाते वही।
जिनका सरल है चित्त औ' जिनको परम प्रिय यह मही ॥
जो शुभ अशुभ कर्मादि की हैं मान्यतायें मानते।
वे ही चतुर नर श्रेष्ठ ऐसे भनित का रस जानते ॥

आख्यान वेदों के पुराणों के बताते हैं यही।
आदर्श आर्यों के उदय से मुदित थी माता मही ॥
रहते असंख्यों देवता इस भूमि पर नर वेश में।
आये जनम ले ईश भी इस हेतु अपने देश में[1] ॥

क्या हम कभी कुछ सोचते हैं पूर्वजों के कर्म को।
कितनी तपश्चर्या करी थी जानने जग मर्म को ॥
खोजी सभी यह बात जो सम्बन्ध रखती सृष्टि से।
पाया सभी का भेद जो है तर्कयुत सब दृष्टि से ॥

उनने विचारा आत्मा औ' जीव के चिर भेद को।
सद्कर्म को दुष्कर्म को या हर्ष को या खेद को ॥
निर्मित किया मनु ने सकल सुखपुंज मानव धर्म था।
अनुकरण जिसका कर जगत पहिचान पाया मर्म था ॥

---

१. लोकमान्य तिलक (गीता रहस्य)

मिलती हमें शिक्षा सभी से. श्रेय औ' आदर्श की ।
पर सीख सकते हैं तभी जब चाह हो उत्कर्ष की ॥
अज्ञान. औ' आलस्य वश हमने गवांई साधना ।
परिणाम में जिसके सहीं हमने भयंकर यातना ॥

ज्योंही तजा यह पथ पड़े हम त्यों वितंडावाद में ।
थोथे दिखावे में कहो या व्यर्थ भौतिकवाद में ॥
दुर्व्याधि फैली देश में श्रुति नीति थी सब मिट गयी ।
फलरूप अपनी पूत [1] मानवता सकल थी मिट गयी ॥

नर धर्म पारायण मिलेंगे, आज भी संसार में ।
जो पालते हैं सत्य को अपने सभी व्यवहार में ॥
यह सत्य का दधि है जिसे विश्वास से मथ लीजिए ।
नवनीत नित नव प्राप्त होगा यत्न तो कुछ कीजिए ॥

थे भरत वंशज पाण्डु सुत पाँचों सहज रणबाँकुरे ।
फिर भी निबल रक्षक रहे, धर्मी रहे, छल से परे ॥
रण में स्वयं यदुनाथ आये पाण्डु सुत का पक्ष ले ।
उत्कर्ष हो सद्धर्म का केवल यही इक लक्ष ले ॥

उस काल भारत भूमि पर कुरु जनित पापाचार था ।
पिसते दुखों में थे प्रजा जन असह अत्याचार था ॥
थे निबल हाहाकार करते नृप निरंकुश राज्य था ।
थी काँपती सद् भावनायें कुमति के सिर ताज था ॥

---

१. पवित्र

था वर्ग शासक का सुखी जनता निबल थी पिस रही।
हों आततताई नष्ट जिससे बात वह प्रभु ने कही॥
शिशुकाल से पीड़ित रहा कुल पाण्डु दुर्व्यवहार से।
था ज्वार लाया धैर्य—सागर कृष्ण-ज्ञान-बयार से[१]॥

सद्धर्म ने आलोक पाया लुप्त कर व्यभिचार को।
समता सरलता का उदय दीखा पुनः संसार को॥
धरती सुखी थी उस समय लख भार कुछ हल्का हुआ।
वह स्वयं खाई में गिरा जिसने खुदाया था कुँआ॥

दस अष्ट दिवसी युद्ध का अपनी विजय में अन्त कर।
थे आंकते परिणाम वे विजयी विनीत पुनीत नर॥
माधव कृपा से युद्ध जीता औ' कहाये वीर हम।
पर कार्य अब भी शेष है, है रोकना व्यभिचार तम॥

यद्यपि हुआ समुचित प्रबन्ध प्रवीण नृप का राज्य था।
फिर भी रहा था अंश में अपवाद, जो दुष्काज था॥
जिस देश के शत कोटि नर हों काम आये युद्ध में।
कितनी विपत्ति, विषाद कितना था न आता बुद्धि में॥

लगता हमें इससे कि कुछ है छोड़ आई लेखनी।
वह बात जो अब तक रही अनजान है अब देखनी॥
अनजान में माँ का कथन जैसा कहा सम्भव सही।
पर जान कर सब मौन रह जाये नहीं सम्भव यही॥

---

१. गीता ज्ञान का उद्देश्य धर्म संस्थापन था।

केवल पतिव्रतधर्म को अपना, नियम सब भूल कर ।
जो चाहती पद सती का है त्यागती कुछ मूलतर ॥
जब तक नहीं सद्धर्म के प्रति भावना होती विमल ।
नारी न पद पाती सती का यह नियम निश्चित अटल ॥

ऐसी अनेकों नारियाँ हैं इस बड़े संसार में ।
जो एक पति की हैं रहेंगी मन-वचन-व्यवहार में ॥
उनको सती कह दें न हमको सोहती यह उक्ति है ।
शुचि, सत्य, पतिव्रत पालने में ही सती की शक्ति है ॥

यह राह निश्चित ही कठिन इसमें अनेकों ताप हैं ।
थी पाँच ही सतियाँ पुरातन जानते यह आप हैं ॥
पर द्रौपदी की करुण-गाथा सदा एकाकी रही ।
क्या है कभी सोचा कि ऐसी बात क्यों जाती कही ॥

युग से सुनी हमने कथा जो पुण्य भारत देश में ।
प्रतिपाद्य करने का हुआ है यत्न अति संक्षेप में ॥
जैसे कभी मरुभूमि में पैदा न होता धान है ।
तैसे बिना दाम्पत्य-सुख के गृह नरक की खान है ॥

व्यवहार में संयम रहे यह सर्व सम्मत नीति है ।
यों लोक मर्यादा सुरक्षित है सुरक्षित प्रीति है ॥
माता सरिस भाभी, पिता सम जेष्ठ भ्राता थे जहाँ ।
आदर्श का यह रूप मिलता सहज ही अपने यहाँ ॥

लघु बन्धु पत्नी को यहाँ तनुजा सरिस जाना गया।
या सुत—वधू की भाँति कन्या रूप में माना गया ॥
शुचिता, समादर, स्नेह दें इनको अनेकों वेश में ।
व्यवहार में यह था हमारे विश्व वंदित देश में ॥

पर थी प्रथा अनुकूल वर वधु एक हों हर क्षेत्र में।
हो बाहुबल वर में, दया ममता वधू के नेत्र में ॥
सम्पन्न होते थे स्वयंवर योग्यता आधार पर ।
थीं कुलवती सब नारियाँ औ' योग्य थे सब श्रेष्ठ नर ॥

इतिहास कहता है स्वयंवर के कई आधार थे ।
वर की परीक्षा मूल थी, औ' गौण सब व्यवहार थे ॥
होवें यशस्वी इस परीक्षण में, लिये यह कामना ।
आये सुयोग्यों का हुआ करता रहा, तब सामना ॥

कुल की प्रतिष्ठा निज सुयश औ' योग्य साथी के लिए ।
विधिवत् स्वयंवर उच्च कुल में थे सदा जाते किए ॥
जैसा जगत व्यवहार था नृप द्रुपद ने वैसा किया।
निज बाहु बल से पार्थ ने था द्रौपदी को वर लिया ॥

सम्मान करता नारियों का शास्त्र मत अनुसार है ।
जिस गेह में होता नहीं घर वह नरक साकार है ॥
जो मूढ़ नर करते अवज्ञा शास्त्र सम्मत तर्क का।
यह जान लीजे चढ़ रहे हैं सीढ़ियाँ वे नर्क की ॥

निन्दा करें नर नारियों की, जन्म के आधार पर।
होता दुखद फल प्राप्त उनको इस बुरे व्यवहार पर॥
जिसने कहा नारी निशा है, काम की है किंकरी।
उसने लखो कब प्रीत माँ में, बहिन में सुचिता खरी॥

इन नारियों की अतुल महिमा कह रहे सब वेद हैं।
निन्दा अगर सुनते कहीं तो बहुत होता खेद है॥
हैं जगत में कुछ लोग जो करते बुराई ही सदा।
आता नहीं कुछ समझ में आखिर उन्हें क्या आपदा॥

कर त्याग अनुपम नारियाँ करतीं प्रणय निर्माण हैं।
इस हेतु इनके मान से ही विश्व का कल्याण है॥
सम्मान हो इनका उचित, यह शास्त्र का मतसार है।
अपमान करना पाप है, शुचि प्रेम होता क्षार है॥

निन्दा नहीं कुछ और केवल भावना का पतन है।
निन्दा करे जो नारियों की नर नहीं नर अधम है॥
स्त्रित्व के अपमान पर है ताड़ना सबको मिली।
वरदान पा सद्नारियों से भाग्य कलिका थी खिली॥

हम सब नहीं क्यों सोचते हैं नीति के इस मूल को।
हो लक्ष्य दृढ़, मन शुद्ध हो, तो प्रिय बना लें शूल को॥
अनुरूप ऐसी भावना के क्यों नहीं देखा उन्हें।
करते प्रशंसा यदि नहीं छोटी बतायें क्यों उन्हें॥

इन नारियों ने जन्म दे सत्कर्मियों की कोख से ।
पोषा जगत में है सदा अति प्रेम औ' संतोष से ।।
परिवार में रहता इन्हीं से सुरक्षित सुख चैन है ।
हैं देखते जो भी धरा पर बस इन्हीं की देन है ।।

यह तो विदित है विश्व में, ये नारियाँ करती नहीं—
अपमान औरों का, कथा ऐसी सदा जाती कही ।।
केवल हुआ अपमान उनका ही पुरुष व्यवहार से ।
मिट गया शील समूल इन पर हुए अत्याचार से ।।

सब कुछ हमारी भूल है हम दोष देते व्यर्थ में ।
इन निबल और निरीह नारी को अजाने अर्थ में ।।
जितना पुरुष होता पतित उतनी न होती नारियाँ ।
तब सत्य कहने में भला क्यों छूटती है नारियाँ[1] ?

बस मूल कारण एक था कुरुक्षेत्र के उस युद्ध का ।
उन कौरवों को दण्ड देना जो नियमवत् शुद्ध था ।।
उल्लेख ग्रंथों ने किया है जो कथन का सार है ।
थी द्रौपदी सच्ची सती यह मानता संसार है ।।

होंगी कहीं कुछ नारियाँ जिनसे हुए कुछ पाप हैं ।
वह दोष मढ़ते हैं सभी पर यह बड़ा अभिशाप है ।।
सब नर नहीं हैं एक से ना एक सी सब नारियाँ ।
फल फूल होते भिन्न चाहे एक सी हों क्यारियाँ ।।

---

१. नारियाँ=नाड़ियाँ

होता कहीं पर जन्म औ' जीवन कहीं वे काटतीं ।
माता पिता परिवार की ममता हृदय से पाटतीं ।
आदर्श है सब नारियों का इस हमारे देश में ॥
करुणा, दया, ममता छिपी हो ज्यों सलोने वेश में ॥

# पूर्वाभास

## द्रौपदी के पूर्व जन्म की कथा

कथा पुरातन है प्रचलित यह, यद्यपि उसके रूप अनेक ।
सुखद तपोवन में हिम गिरि के रहती थी ऋषि कन्या एक ।।
रूपवती गुणवती विदूषी करती थी शिव की पूजा ।
कुछ ऐसा प्रबन्ध कि उसके साथ न था साथी दूजा ।।

पतित पावनी गंगातट पर निर्जन और सघन बन में ।
तप बल से रहती निशंक थी पंचानन के मंदिर में ।।
खड़ी शिवाले में इक पग से रँगे विभूति शंकर की ।
पूजा निश दिन करती थी वह निष्ठा से गंगाधर की ।।

स्वाभाविक है हम अपना दुख-सुख समझें औ' पहिचानें ।
भाग्य चक्र का संचालक जो उस ईश्वर को सनमानें ।।
अपने सुख दुख हानि लाभ जो करते इष्ट देव अर्पित ।
होती उनकी पूर्ण सभी इच्छायें, रहते चिर हर्षित ।।

बीत गये दिन बहुत तपस्या करते कन्या ने सोचा ।
हैं समर्थ दानी शिव शंकर क्यों न कष्ट मेरा सोचा ।।
निश्चय किया कि आज हृदय का भाव सभी कह दूँगी मैं ।
वे ही तो सब कुछ मेरे हैं उनसे क्यों शर्माऊँ मैं ।।

यों होकर दृढ़ चित तुरत ऋषि कन्या गई मूर्ति के पास ।
कहने सब स्पष्ट शब्द में, जो कुछ थी उसको उर आस ।।
वह अधीर शंकित उसका मन, थी श्रद्धा आती जाती ।
करने सिद्ध अभीष्ट वहाँ कुछ कहती औ' फिर रुक जाती ।।

लेते सदा परीक्षा भगवन अपने भक्तों की ऐसे ।
जैसे होती मनोकामना फल देते उसको वैसे ।।
आशुतोष भोले शंकर हैं बड़े दयालु औ' दानी ।
कभी न मन बांछित फल देने में करते आना कानी ।।

मंदिर में स्वर गूँजा सहसा "माँग माँग कल्याणी माँग ।
होगा कुछ न अदेय माँग हे ! तपोधना अपना वर माँग" ।।
'माँग' 'माँग' के पाँच स्वरों से ऋषि कन्या होगई विभोर ।
लगी गूँजने प्रतिध्वनि ऐसी शिव मन्दिर के चारों ओर ।।

उस क्षण जब सूने मन-नभ पर आशा नीरज छा जाते ।
अनुरंजित करने अभिलाषा सब संयोग स्वतः आते ।।
हो जाता अधीर मानव मन सुख की सुखद जोहते राह ।
फल न मधुर मधुतम बन पाता, बन जाता है जीवन दाह ।।

लगी सोचने वह बेचारी किस विधि शिव तुम को आराधूँ ।
करूँ अर्चना किस मुख आगे किस मुख आगे वर-स्वर साधूँ ।।
शंका हुई कि शायद मेरे पूजन में कुछ भूल हुई ।
मौन अधर के सम्मुख की जो कातर विनती, धूल हुई ।।

आया ध्यान तभी कन्या को, पाँच बार बोले थे शंकर—
मेरा इच्छित वर देने हित, क्यों संकोच करूँ उर अन्तर ।।
क्यों न माँग लूँ वर अब इनसे जैसा मन में धारा है ।
पति के बिना किसी अबला का होता कौन सहारा है ।।

हुआ तभी भ्रम ऋषिकन्या को सहसा उसको आया ध्यान ।
करूँ सभी मुख आगे विनती, तभी प्राप्त होगा बरदान ।।
यही सोच कर घूम घूम कर पाँचों मुख सम्मुख माँगा ।
रही भावना उसकी जैसी वही भाव मन में जागा ।।

कन्या ने यों कहा दीन हो "हे ! कृपालु हे प्रलयंकर !!
'पति' दो मम अनुरूप नाथ तुम, बसते हो उर के अंतर ।।"
इसी भाँति श्रद्धा सँवार कर शिव के प्रति आनन आगे ।
कहा कि मुझ को पति दो, पति दो, पाँच बार पति थे माँगे ।।

हुई घोषणा तब नभ से "हे ! ऋषि कन्या, हे कल्याणी ।
तेरे जीवन साथी होंगे पाँच, सत्य शिव की वाणी ।।
जो वर माँगा है तूने बस, वही दिया मैंने तुझको ।
यदि कुछ है अब और चाहती, होगा ना अदेय मुझको ।।"

विकल हो गई अबला सहसा सुन शंकर का यह वरदान ।
ग्लानि गलित थी पर क्या कहती हेतु स्वयं थी वह नादान ।।
जैसे वर माँगा था उसने वैसा उसे मिला था आज ।
पर ऐसे वर से कैसे इक अबला रख सकती थी लाज ।।

मौन हो गई करुण मूर्ति वह नष्ट हुआ सुख का सपना ।
किसे पुकारे इस कुसमय में वहाँ न था कोई अपना ।।
नीर बहाती थी नयनों से शीश छिपा बाँहों की ओट ।
असह वेदना थी खा कर यों, निज संचित इच्छा पर चोट ।।

अतिशय दीन भाव भर दुखिया शिव चरणों में बैठ गई ।
नहीं समझ पाई वह अब तक, उससे थी क्या भूल हुई ।।
थी अशान्त जड़वत आकुल वह, मन ही मन में यों बोली ।
याचा था सुख स्वर्ग, मिली यह दुसह यातना भर झोली ।।

हे शंकर, हे भोले बाबा, दीन वचन फिर फिर बोली ।
पति हूँ केवल एक चाहती, बात पाँच की क्यों खोली ।।
पाँच पती की इक नारी, कुछ बात समझ में ना आई ।
कैसे बोले शंकर जी तुम यह, क्या इसमें है गहराई ।।

ऋषि कन्या हूँ आप जानते, क्या ऐसा है पाप किया ।
मिला शाप है वर के बदले ऐसा क्या अपराध किया ।।
हे शंकर ! गिरजा-उर-वासी, मर्यादित प्रभु रहे सदा ।
करो क्षमा यदि भूल हो गई, मुझ से कोई कभी कदा ।।

आशा बड़ी आपसे मुझको लुटी लाज मेरी ऐसे ।
मान-हीन प्राणी जीते यों, बंधन में पशु हों जैसे ।।
सत्य सनातन सुन्दर शिव जी, वर दो पति-व्रत बना रहे ।
हो उज्ज्वल जग-जीवन मेरा मर्यादा में रमा रहे ।"

उत्तर उसे मिला "हे बाले ! सिद्धि मिली, जो तुमने माँगी ।
समझा था मैं बात यही हो पाँच पति की तुम अनुरागी ।।
वर माँगे थे पाँच अतः दे दिये पाँच ही मैंने तुमको ।
यदि इच्छा थी एक मिले पति पाँच बार बोली क्यों उसको ।।

"ज्यों ही वाणी सुनी आपकी" कन्या बोली हो आतुर ।
"रही न सुधि बुधि कुछ प्रभु मुझको, था उल्लसित प्रभो मम उर ।।
नहीं समझ में आया मेरे, करूँ याचना किस मुख से ।
भूल हुई यों पाँच बार थे, माँगे वर पाँचों मुख से ।।

अब क्या होगा हे शिव शंकर पतिव्रत की रक्षा कीजे ।
युग युग से निर्मित मर्यादा की भगवन् रक्षा कीजे ।।
था जो सच्चा भाव हृदय में पूर्ण कीजिये अब उसको ।
एक पुरुष की रहूँ सेविका सदा सराहूँ मैं तुमको ।।"

"दे देता हूँ जो कुछ बाले, वापस कभी न ले सकता ।
यदि कुछ कमी रहे तो उसको, भाग्य यही था कह सकता ।।
मुझको भी संतोष नहीं है, नहीं समझ मैं कुछ पाया ।
पर यह थी वाणी तेरी ही" शिव ने कहना दुहराया ।।

"क्यों ऐसा करते हो शिव शंकर" कन्या ने शिव से पूछा।
पति-पत्नी की मर्यादा को क्योंकर करते इस विधि छूँछा॥
करो याद जब महासती ने, सीता का था रूप बनाया।
त्याग दिया था उन्हें आपने कौतुक भी तो तुम्हें न भाया॥

भगवन तनिक विचारो मन में पत्नी के कर्तव्य गुनो।
किसको होगा सहन जगत में, फिर आगे भी बात सुनो॥
सत्य, धर्म, कर्तव्य और मर्याद सभी मिट जायेगी।
पति-पत्नी में प्रेम न होगा, अतुल विपति बढ़ जायेगी॥

अत्याचार बढ़ेगा जग में शान्ति भंग हो जायेगी।
नारी वर्ग सती महिलायें दूषित यों हो जायेंगी॥
वर्ण संकरों के कारण प्रभु, पुत्र प्रेम मिट जायेगा।
कुल कुटुम्ब का मान मिटेगा, धर्म-कर्म मिट जायेगा॥

सेवा मात-पिता की करना, पुत्र भाव ना यह मानें।
स्वेक्षाचारी हो जायेंगे, सत् असत्य बिन पहिचाने॥
लड़ा करेंगे आपस में ही द्वेष-भावना रख मन में।
देश-व्यवस्था बिगड़ जायेगी महाप्रलय होगा छन में॥

भ्रष्टाचार बढ़ेगा जग में, मानवता मिट जायेगी।
प्रेम न होगा पति-पत्नी में ललनायें पिस जायेंगी॥"
सोचा तब शंकर ने यह अबला तो सत्य गुहारी है।
आज सभी नारी मर्यादा, लगती गई बिसारी है॥

मौन खड़े भोले शंकर कुछ बात नहीं मुँह से बोले।
जहाँ खड़े थे वहीं खड़े थे इधर उधर कुछ ना डोले॥
वचन बद्ध थे, मानबद्ध, कुछ धर्म बद्ध मुख था नीचा।
गद्गद् कण्ठ वचन ना आवे, आँसू से तन था सींचा॥

शिशु की लघुतम व्याधि न क्षण भर सह पाती कोई माता।
जिसका सम्बन्ध स्नेह से, ममता से जिसका नाता॥
यह तो जगत विदित है युग से, शिशु का ममता अर्थ समूल।
गुण दिखते बालक के माँ को, अवगुण वह जाती है भूल॥

दया आर्द्र हो माँ गौरी ने कहा सदा शिव दानी से।
"होगा श्रुति पथ भंग आप की, इस अनहोनी वाणी से॥
पतिव्रत के प्रभु सबल समर्थक, तुम हरते जन के भव ताप।
नीलकण्ठ सोचो तो क्षण भर, वर-याचिका पा रही शाप॥

मानव निर्बल है निरीह है, सीमित है उसका धीरज।
बूँद अघातों से दब जाती, आँधी पा उड़ती ज्यों रज॥
दुख अथवा सुख बौरा देता, उसकी मति औ' वाणी को।
हैं अनेक द्रष्टान्त विदित प्रभु दीनबन्धु, अति दानी को॥

भगवन हुआ प्रयत्न न यदि तो, परम्परा दूषित होगी।
ना जाने किन विशेषणों से, आर्यजाति भूषित होगी॥
जो पर-हित की बात सोचते, अथवा पर-हित करते यत्न।
उनको सहज सुलभ हो जाते जग जीवन के अनुपम रत्न॥

भूल नहीं अबला की इसमें स्वयं समझ में भूल रही ।
गहराई की बातें हैं सब, जो इसका मन शूल रही ॥
करो विचार सभी बातों का इधर उधर में ना टालो ।
पाँच पती सेवे इक नारी शंभु प्रथा यह मत डालो ॥

आर्त सभी सुधि बुधि खोता है, बुद्धि न उसमें रह जाती ।
दु:ख भँवर में फँस जाता जब आशा सब है मिट जाती ॥
कहना चाहे बात और पर, और और निकले मुख से ।
स्वयम् समझ कुछ ना पाता है, पागल हो जाता दुख से ॥

नहीं विचार उसे कुछ रहता भाव वेश में कह जाता ।
ज्यों पतवार बिना जल वाहन बीच भँवर में रह जाता ॥
वही दशा है इस अबला की इसका है कुछ दोष नहीं ।
समझ बूझ कर वर दीजे प्रभु इसे अभी संतोष नहीं ॥

घट-घट वासी कहलाते हो क्यों ना समझे बात प्रथम ।
सोच समझ कर वर देना था जिससे होता मार्ग सुगम ॥
एक पुरुष की एक नारि हो भाव आपका रहता है ।
नारी के दो रूप देख शिव हृदय आपका दहता है ॥

याद करो पिछली बातें सब, जो इसने समझाई है ।
जब जन्मे थे रामचन्द्र यह कथा पुरानी गायी है ॥
हुआ मोह मुझको भी उस क्षण वचन आपका ना माना ।
मायापति भगवान राम को, केवल मानव ही जाना ॥

धरा रूप सीता का मैंने और परीक्षा की उनकी।
नहीं कुभाव रहा मन मेरे, थी कुतर्कना ही मन की ॥
औ' फिर मैं अज्ञान, विवश हो, झूठ आप से बोली थी।
त्याग दिया था मुझे आपने बात नहीं कुछ खोली थी ॥

माता सम सम्मान दिया था पत्नी सम मैं नहीं रही।
आग्रह किया बहुत था मैंने बात अंत तक नहीं कही ॥
दुखी नहीं क्या आप हुये थे प्रेम बना क्या वैसा था।
पति-पत्नी जब रहे प्रथम हम, प्रेम भाव तब जैसा था ॥

ब्रह्मा विष्णु महेश तीन पर एक अंश कहलाते हो।
है अभिन्नता सदा आप में फिर भी अलग कहाते हो ॥
यदि तीनों की पत्नी होवे एक कहो सह सकते हो।
यह अनुचित व्यवहार कहो प्रभु सहन कभी कर सकते हो ॥

भालचन्द्र ने सुनी उमा की पर उपकारी यह वाणी।
नीलकण्ठ ने कहा धन्य तुम, धन्य-धन्य हो कल्याणी ॥
है प्रसंग छेड़ा जो तुमने मुझको उससे है अति क्षोभ।
किन्तु हेतु इसकी शंका है अथवा सकल विनाशी लोभ ॥

तुम्हें विदित है नियति-चक्र मानव को रखता निज आधीन।
अरे रुलाता है हँसतों को दानी को करता है दीन ॥
अर्थ नहीं इसका मानव शुभ कर्मयोग को जाये भूल।
किन्तु चुने जब फल-पुष्पों को, याद रखे प्रारब्धिक शूल ॥

श्रद्धालू श्रद्धा अवलम्बन यदि क्षण भर को देते छोड़ ।
उनके मन में यदि कुतर्क की, शंका की, होती है दौड़ ।।
फल स्वरूप उनको मिलता है, चिर विषाद या पश्चात्ताप ।
असफल रहती कठिन साधना बन जाता वर भी अभिशाप ।।"

× × ×

"है सत्य विधि का खेल मानव भाग्य" माता ने कहा ।
पर आपका जो दास है उसने कहो कब दुःख सहा ।।
यह किंकरी है नाथ अब इसको क्षमा का दान दो ।
अभिशाप का कर शमन प्रभु इसको रुचिर वरदान दो ।।

इससे बँधे मर्याद उत्तम कर्म को इस देश में ।
जिससे रहे नारी महत्ता हर समय हर वेश में ।।
प्रभु अब कृपा करके वही शुभ यत्न सत्वर कीजिये ।
सम्मान लुटता आर्य ललना का दया अब कीजिये ।।

सम्मान था यह आर्य ललना का न छोटी बात थी ।
अनुरोध भी था शैलकन्या का, सदा जो साथ थी ।।
सोचा पुनः अति ध्यान दे ऐसी हुई क्यों धारणा ।
क्यों पाँच-पति-वरदान देने की हुई यों प्रेरणा ।।

आई समझ में बात तब इसमें छिपा क्या भेद था ।
सब जानकर भगवान की माया न उनको खेद था ।।
बोले कृपालु कि विष्णु ने जो बात थी मुझसे कही ।
वह अब समझ में आ गई शंका नहीं मन में रही ।।

कोई स्वयं करता न कुछ भी कर्म इस संसार में।
देता नहीं, पाता नहीं कोई जगत व्यवहार में॥
जब तक न होती प्रेरणा, उस सर्वव्यापी ब्रह्म की।
जो है नियंता विश्व का, सब बात भूलो दम्भ की॥

वरदान सहसा आज जो मैं दे गया होगा सही।
पर बात है कुछ और जो तुम समझ पाई हो नहीं॥
अब बढ़ गया है पाप दुनियाँ में न जिसका अन्त है।
धर्मात्मा सब कष्ट पाते हैं बँधे परतंत्र हैं॥

अब क्रूर अभिमानी दुराचारी, जनों की वृद्धि है।
जिससे कि धार्मिक कार्य में रहती न किंचित शुद्धि है॥
उद्धार होगा सज्जनों का पापियों का नाश कर।
अवतार लेंगे इस धरा पर जान गौरी नर-प्रवर॥

इसी हेतु है मेरे मुख से निकल गई वह अद्भुत बात।
सोच समझकर उनकी माया हर्षित है अब मेरे गात॥
क्षमाशील हैं जग के स्वामी भूल क्षमा करते सारी।
पर अबला अपमान सहन करते ना असुरारी॥

याद करो सीता की बातें रम्भा की भी याद करो।
भूल गई क्या अपनी भी तुम पिछली बातें ध्यान धरो॥
वधा राम ने बालि, दशानन भस्मासुर भी भस्म हुआ।
एक आँख फोड़ी जयन्त की था अबला अपमान हुआ॥

यह सिद्धान्त अटल है उनका इसमें फेर न आता है ।
जब जब होती धर्म हानि औ' पाप पुंज छा जाता है ॥
बढ़ते क्रूर अधम अभिमानी जो मनमानी बात करें ।
जिसे सहन वे कब कर पाते, हम इस पर अब ध्यान धरें ॥

बढ़ता पाप जगत में जाता सहन न अब उनसे होता ।
माया में पड़ अधम पुरुष सब नियम धर्म जग का खोता ॥
लेंगे अब अवतार विष्णु मेरी यह बात सत्य मानो ।
होगा अब कल्याण जगत का बात सही इसको जानो ॥

इस नारी को हेतु बना कर नाश पापियों का होगा ।
सत्य धर्म की रक्षा होगी नाश अधर्मी का होगा ॥
पति जो इसको पाँच मिलेंगे रक्षक सम होंगे इसके ।
प्रतिरक्षा वे करें सदा मिल याद रहेगा यह उनके ॥

पत्नी होगी एक पुरुष की पूर्ण सती कहलायेगी ।
पतिव्रत इसका बना रहेगा, मान बड़ा यह पायेगी ॥
सेवा यह सम भाव करेगी, पाँच रक्षकों की ऐसे—
माता करती बहुत सुतों की भेद नहीं रखती जैसे ॥

कभी फूट ना पड़े पाँच में यह चाहेगी अंतर से ।
सबको सदा एक कर देगी प्रेम भाव के मंतर से ॥
वे सब मिलकर एक रहेंगे द्वेष न होगा कुछ उनमें ।
देख तपस्या इस नारी की प्रेम करेंगे आपस में ॥

धर्म कार्य जितने भी होंगे पांच रक्षकों के द्वारा।
सबमें यह सम्मिलित रहेगी कार्य सभी होगा न्यारा॥
निशि-दिन इसका धर्म बढ़ेगा, ईश्वर में रम जायेगी।
आत्मजनों की सेवा कर यह भवसागर तर जायेगी॥

शंकर ने देखा कन्या को हुआ नहीं संतोष अभी।
अश्रु-पात का रुका नहीं क्रम संशय उसका शेष अभी॥
नहीं समझ पाये क्यों उसका, मिटा नहीं संशय उसका।
फिर दुहराये वर अपने ही, रहे नहीं मन में खटका॥

यह तुल्य कन्या के रहेगी शेष पति के संग में।
उसमें रहेगी उस तरह शुचिता, यथा है गंग में॥
यह चेतना प्रति मूर्ति होगी पंचनर वर वेश की।
आदर्श नारी यह कहायेगी सदा इस देश की॥

होगा न क्षण भर क्लेश इसको पंचजन के साथ का।
मिलता सदा इसको रहेगा, प्रेम अपने नाथ का॥
अर्धाङ्गिनी केवल रहेगी एक ही भर्तार की।
इसके सुशासन में रहेगी शान्ति उस परिवार की॥

आग्रह विनय अनुनय सुनो इस भांति शिव त्रिपुरारि ने।
अनुपम दया का दान दे डाला सहज कामारि ने॥
"हे नाथ ! इसने प्राप्त निश्चित कर लिया वर आप से।"
मां ने कहा होकर मुदित "वर पा गई यह शाप से॥"

प्रभु आपने सब दे दिया जो कुछ करी थी कामना ।
मैंने न कुछ इसको दिया यह जान मन है अनमना ॥
मैं चाहती हूँ यह करे फल-भोग मेरी भक्ति का "।
यों कह दिया वह वर, कि जिससे, भान होता शक्ति का ॥

"इस रूप में रह कर रहेगी यह परम पूज्या सती ।
इसके पुनीत चरित्र से, अभिभूत हों योगी यती ॥
यह पंच कन्या में सहित सम्मान लेखी जायगी ।
इसकी व्यथा बाधा न मुझ से, तनिक देखी जायगी " ॥

सुन ये सुधा साने वचन जग जननि माता अंब के ।
चेती सुता ऋषि की, पड़ी जो थी सहारे खम्भ के ॥
हो दीन पर आभार से परिपूर्ण किया प्रणाम नम ।
माँ की दया का स्रोत बह निकला विमल जलधार सम ॥

× × × ×

हो कर प्रकट मात गौरी ने, उसे अंक भर भेंट लिया ।
मानों युग युग तक उसकी सब बाधाओं को मेट दिया ॥
माँ ने कहा "सुता अब भी तू जो चाहे ले ले वरदान ।
यह सुन ले अक्षुण्ण रहेगा युगों युगों तक तेरा मान ॥"

माँ ! सेवा का कार्य कठिन है कहते यह ऋषि मुनि योगी ।
समझाओ तो पाँच नरों की किस प्रकार सेवा होगी ॥
सम्भव है मैं विफल कहाऊँ, निज कर्तव्य निभाने में ।
और गवाँ दूँ वह विभूति जो मुझे मिली अनजाने में ॥

इससे हे अम्बे ! वर देना मैं निज पति के साथ रहूँ ।
सुख दुख जो जीवन में आये उनसे पहले स्वयं सहूँ ॥
सदा रहे पति प्रेम हृदय में रहूँ प्रेयसी मैं उनकी ।
इच्छा सारी पूर्ण करूँ मैं बाजी लगा प्राण तन की ॥

कभी न उनकी सुनूँ बुराई सहूँ न मैं उनका अपमान ।
मन मेरा आसक्त रहे उनमें, माँ देना यह वरदान ॥
सेवा उज्जवल रहे सदा औ' पति मेरे सानन्द रहें ।
उनके गृह मेरे प्रयत्न से सुफल, सफल, सम्पन्न रहें ॥

मेरे कर्तव्यों से क्षण भर दुखी न हों मेरे स्वामी ।
मैं तन मन से रहूँ किंकरी निश-दिन दासी अनुगामी ॥
उनके चरणों में प्रतिपल अनुराग रहे मेरा माता ।
औ' कुटुम्ब के अन्य सदस्यों से भी उचित निभे नाता ॥

जिस प्रकार रुचि हो साथी की वही करूँ मैं जीवन में ।
कर्म करूँ मैं सदा वही जिससे सुख साजे जीवन में ॥
यद्यपि बिधि के हाथों में रहती सबकी जीवन डोरी ।
किन्तु अचल अहिवात माँगती हूँ मैं तुझसे, माँ गौरी ॥

मन में पतिव्रत रहे और मैं पति अनुगामी बन विहरूँ ।
अप्रिय कभी न उनसे बोलूँ मृदु भाषण ही सदा करूँ ॥
उनकी रुचि मेरी रुचि होवे सदा रहै मेरा बाना ।
उनको क्षणिक असुविधा भी माँ, हो न कभी, व्रत है ठाना ॥

तन मन से पति की सेवा में लगन सदा ही लगी रहे ।
पति से मुझको मिले स्नेह औ' प्रेम ज्योति यों जगी रहे ।।
जैसी भी स्थिति में वे हों मन मेरा उनमें रीझे ।
हीन अवस्था अपनी लख कर कभी न मेरा मन खीझे ।।

कर व्यतीत जग जीवन सारा स्वर्ग सिधारूँ सँग उनके ।
मिलें वहाँ भी वही मुझे हो प्रेम रमा तन में जिनके ।।
कभी जन्म मानव का पाऊँ पति हों मेरे सदा वही ।
प्रेम हमारा बना रहे यों टूटे नाता कभी नहीं ।।

सास ससुर देवर कुटुम्ब की सच्ची दासी कहलाऊँ ।
निशि-दिन सेवा सबकी कर मैं भव निधि पार उतर जाऊँ ।।
सुख माने परिवार मुझे लख सच्चा भाव रहे मन में ।
पति मेरे सब को अति प्रिय हों द्वेष नहीं उपजे तन में ।।

निज गृह को समृद्ध करूँ मैं बने सफल जीवन मेरा ।
गली गाँव में वैभव बरसे रहे दूर दुख का डेरा ।।
नर हो वीर धनी मानी सब भाव हृदय में शुद्ध भरे ।
ललनायें कर्तव्य-निष्ठ हों ज्यों श्रद्धा हो मूर्ति धरे ।।

बालक पाये स्नेह हृदय से प्रगति करे ले नव आशा ।
काम राम है, राम काम है, हो यह जीवन अभिलाषा ।।
जीवन हो सम्मान लिये पर तनिक न मन अभिमान रहे ।
उन्हें देश पर मान, देश को युग-युग उन पर मान रहे ।।

सबके सुख में सुखी रहें नित हों प्रसन्न मन में फूले ।
देख पराया लघु संकट भी अपना भीषण दुख भूले ।।
मातृभूमि की सेवा करने में सदैव रत उनके प्राण ।
कष्टों में मृदु हास लिये रहना ही केवल उसकी आन ।।

मान बिना जीना ना सीखें प्रेम बिना पग ना धारें ।
सुख पहुँचाते सदा सभी को वे अपना जीवन वारें ।।
लहें बड़ाई सकल विश्व में यशमय हो उनका जीवन ।
देख दुःख अनजाना का भी हों चिन्तित, व्याकुल, उन्मन ।।

हो कर्तव्य परायण नारी कार्य करे सब के हित का ।
मान बढ़े ललनाओं का यों, यश फैले उनके गुन का ।।
भाव सदा सम उनका होवे देश कार्य में लगी रहें ।
उच्च भाव ऊँचे विचार की ज्योति सदा ही जली रहे ।।

मातृभूमि की सेवा में रत रहें सभी भारतवासी ।
बच्चा, बूढ़ा, युवक, गृहस्थी योगी अथवा सन्यासी ।।
लूला लंगड़ा अंध बधिर हो, नारी पति के साथ रहे ।
सत्य धर्म कर्तव्य न्याय का मान और मर्याद रहे ।।

प्रजा-प्रेम राजा में होवे राजा सबका प्यारा हो ।
सत्य धर्म कर्तव्य न्याययुत भारतवर्ष हमारा हो ।।
ज्ञान ज्योति जागे सबके मन देश हमारा सुखी रहे ।
मनसा, वाचा, और कर्मणा, लगन देश हित लगी रहे ।।"

अभिलाषा विशाल थी उसकी अतः हुई ऋषि कन्या मौन ।
लगी सोचने तत्परता से, रखा शेष वर मैंने कौन ।।
माँ ने मृदु मुस्कान सहित पूँछा "क्या सोच रही बाले ।
क्या शंका संदेह अभी भी है मन में डेरा डाले ?"

"माँ" बोली ऋषि कन्या "जय हो भक्त हृदय की वासी आप ।
तुमसे अभयं मिला है मुझको मिटा भरम शंका का ताप ।।
किन्तु मुझे शंका होती है अपनी ही थोड़ी मति पर ।
दुखिया अबला का कहना क्या धीरज खोते ज्ञानी नर ।।

सुलभ सभी कुछ देख मुझे लगता है सभी माँग लूँ मैं ।
इच्छा है तेरे अथाह वर-विधि की आज थाह लूँ मैं ।।
पर अपनी निर्बलता का आभास मुझे हो आया है ।
इसी लिये कुछ क्षण विचार हित मौन मुझे अब भाया है ।।"

कहा भवानी ने "प्रसन्न हूँ, सुनकर परहित में अर्चन ।
इसीलिये मैं सफल करूँगी आज तुझे मेरे दर्शन ।।
अब बेटी तुम चलो द्रुपद के पुत्रेष्टि को सफल करो ।
जीवन करो महान नृपति का, शिव वाणी को अटल करो ।।

हकबक सी थी खड़ी पुजारिन आगे ना कुछ कह पाई ।
गद्-गद् होकर गिरी चरण में उमड़ प्रेम करुणा आई ।।
रही न सुध-बुध उसको अब कुछ आँख मूँद खोजा मन में ।
देखा फिर तब उन्हें न पाया अन्तर्धान हुई छन में ।।

धरा ध्यान तब से शंकर पर ध्यान धरा शिव कथनी पर।
रही पूजती सदा प्रेम से गौरी के संग गंगाधर॥
उसी भाँति उसने जीवन के दिन पूरे कर तन त्यागा।
ध्यान धरा था सदा उसी का जिसे रहा वर मैं माँगा :।

## आचार्य द्रोण का अपमान

विद्या कला-कौशल प्रवीण, सुयोग्य, कुल निष्ठा लिए।
आचार्य पद पर थे सुशोभित श्रेष्ठ नर जाते किए॥
सबसे सहज सद्भाव रखना जो गुने अनिवार्य हैं।
निर्माण-मोह, विनीत नर, ही मानते आचार्य हैं॥

उसका न धन पर धर्म, कर्म महत्वशाली जानकर।
आचार्य को सम्मान मिलता था प्रथा यह मान कर॥
यह योग्यता का धन सभी को प्राप्त था शुभ कर्म से।
तप साध्य था, केवल न था यह वर्ण अथवा धर्म से॥

आचार्य पद पा योग्यता से द्रोण पहुँचे द्रुपद घर।
जो भोगते सुख स्वर्ग बन काम्पिल्य के नृपवर प्रवर॥
नृप द्रुपद द्रोणाचार्य थे गुरु बन्धु इस सम्बन्ध से।
नृप के भरे दरबार में थे द्रोण सहसा जा धँसे॥

नरपति भवन अथवा अजानों के घरों में नीति है—
जाये न बिन बोले कि, इससे नष्ट होती प्रीति है ।।
ऐसी जगह अन्तर जहाँ हो धन धरा आधार पर ।
जाते नहीं सहसा बुलाये बिन कभी भी चतुर नर ।।

महिपालसुत थे द्रुपद, द्रोणाचार्य भूसुर वंश के ।
ऐसी विषमता मान कर, वे मित्र सम ना मिल सके ।।
यह धन धरा है मूल मानव के पतन औ' नाश की ।
यदि भूलकर केवल कभी भी इसी की ही आस की ।।

यह सोचकर नृप मित्र हैं थे द्रोण पहुँचे भेंटने ।
पर हा ! उन्हें सत्कार से वंचित रखा नृप ऐंठ ने ।।
यह मानकर, शायद गये हैं भूल मुझको अब नृपत ।
द्विज द्रोण ने परिचय दिया दरबार में अपना, तुरत ।।

"है क्या न पहिचाना मुझे राजन सखा तव, द्रोण हूँ ।
परिचय करायें निज सभासद से मुझे, कह कौन हूँ" ।।
उस क्षण सभा में वचन सुन छल हीन यों आचार्य के ।
चुप हो गये सामंत बोले द्रुपद सोच विचार के ।।

"ब्राह्मण सुनो ! कब मित्र होता, अन्य नर श्रोत्रीय का ।
जैसे रथी औ' विरथि में नाता न रहता प्रीति का ।।
इस भाँति जो भूपति नहीं उसका नृपति से मेल क्यों ?
संभ्रान्त जन की प्रीति का आधार होवे खेल क्यों ?

यह सत्य होगा हम पढ़े खेले किसी चटसार में।
पर आज लाऊँ किस तरह वह बात मै व्यवहार में ॥
यदि आप आये हैं अतिथि बन आज ब्राह्मण वेश में।
तो अन्न जल की है नहीं किंचित कमी इस देश में ॥

मेरी प्रजा का नियम है गौ विप्र का प्रतिपालना"।
इस भाँति नृप ने दर्प में चाहा स्वज़न को टालना ॥
थी यह समय की माँग लौटे द्रोण नृप के द्वार से।
पर कह चले, परिणाम होगा शुभ न दुर्व्यवहार से ॥

नृप का न कोई शत्रु हो, है एक मानी नीति यह।
यदि चाहता है शान्ति से अपना चलाना राज्य वह ॥
इस पर बने थे शत्रु वे आचार्य भूसुर वंश के।
जिसके सहायक थे परशुधर वीर भृगुपति अंश के ॥

दुर्भाग्यवश राजा द्रुपद को ध्यान तब आया नहीं।
औ' द्रोण के उर में जमी प्रतिशोध की इच्छा वहीं ॥
नृप की सभा में थे अनेकों बुद्धिजीवी नर गुणी।
जिनकी सिखावन भी द्रुपद ने दर्प में की अनसुनी ॥

## बदला

थी ग्लानि होती द्रोण को जब ध्यान आता बात का।
जो थी कही नृप द्रुपद ने नाता भुला गुरु-भ्रात का॥
यह कामना मन में तड़फती यदि समय आया कभी।
लूँगा चुका मयब्याज के अपमान का बदला तभी॥

× × ×

कृपाचार्य के अतिथि बने वे नगर हस्तिनापुर आये।
लख कर योग्य सभी विद्या में थे द्विजवर के मन भाये॥
थी इच्छा कुछ ऐसी प्रभु की हुआ द्रोण का कुछ दिन वास।
फल स्वरूप कौरव पाण्डव मिल, दीक्षा लेने आये पास॥

अनुज संग ले धर्म एक दिन करते थे कन्दुक-क्रीड़ा।
गिरी अचानक गेंद कूप में जान हुई मन में पीड़ा॥
गेंद सुयोधन की थी उसने, दिया मचा अनचाहा शोर।
था अति गहरा कूप न दिखती जिसके जल की किंचित कोर॥

× × ×

थे पास ही में द्रोण यह सब देखते कौतुक रहे।
लख कर विवश इन राजपुत्रों को वचन उनने कहे॥
"क्या मूढ़ सम हो देखते आओ निकालें गेंद को।
मैं आज कर दूँगा सुलभ तव हित धनुर्विद भेद को॥

यों कह धनुर्विद्या निपुण गुरुद्रोण ने कुछ बाण से ।
बाहर निकाली गेंद तत्पर शर-कला के ज्ञान से ।
लख कर हुआ विस्मय सभी को महल में जाकर कहा ।
आये यहाँ विद्वान द्विज जिनकी धनुर्विद्या महा ।।

× × ×

सुनी खबर जब वीर भीष्म ने कहा "कहाँ हैं चलो तुरन्त" ।
सादर साथ चले मंत्रीगण विप्र महाजन संत महंत ।।
अति विनीत औ' स्नेहभाव से बना द्रोण को बालगुरू ।
कौरव पाण्डव की विद्या का हुआ तभी से कार्य शुरू ।।

बड़े परिश्रम बड़े स्नेह से भूप सुतों को मन भाई ।
अस्त्र-शस्त्र की गूढ़ कलायें गुरुवर ने थीं सिखलाई ।।
योग्य हुए जब राज कुँवर तब गुरु ने यों हँसकर पूछा ।
"दोगे गुरु-दक्षिणा बालकों अथवा रखना है छूंछा" ।।

अतुल स्नेह श्रद्धा से बालक बोल उठे ऊँचे स्वर में ।
तन मन धन सब कुछ अर्पित है गुरुवर के श्री चरणों में ।।
मुदित द्रोण ने कहा "सुनो सुत ! मुझे द्रव्य की चाह नहीं ।
केवल दान वीरता का दो, मुझे और दरकार नहीं" ।।

कही द्रोण ने बात द्रुपद की अपने शिष्यों के आगे ।
और दक्षिणा में शिष्यों से युद्ध हेतु थे सिर माँगे ।।
कही कथा जिस भाँति भीलसुत ने था सब कुछ दान दिया ।
औ' इस तरह गुणज्ञ विप्र ने, मन चाहा सम्मान लिया ।।

निज शिष्यों से कहा, "सजाओ अपनी चतुरंगी सेना ।
भूप द्रुपद को बंदी करके गुरुदक्षिणा मुझे देना" ॥
सहज वीर इस पर गुरु आज्ञा, सब ने घोर किया गर्जन ।
और कहा "आज्ञा दो गुरुवर विजय बाद होंगे दर्शन" ॥

यों तो नृप पांचाल देश के स्वयं वीर थे अति बलवान ।
थी अपार सेना भी जिसमें थे योधा बलवीर महान ॥
पहले मिला युद्ध का अवसर कौरव-राजदुलारों को ।
किन्तु पड़ी मुँह की ही खानी द्रुपद समीप, बिचारों को ॥

दूर खड़े दर्शक सम अब तक पांडव-सुत थे देख रहे ।
"सावधान" नृप पांचाल से सहसा इनने शब्द कहे ॥
"क्षणिक विजय पर गर्व न करना, करो युद्ध की तैयारी ।
थके बंधु कौरव यदि तो अब, आई पांडव की बारी" ॥

बाण वृष्टि अर्जुन ने की जो सिद्ध हुई प्रलयंकारी ।
बन्दी बना लिया नृप को औ' सारी सेना संहारी ॥
अति विनीत हो आये बालक विजय कीर्ति का लिए हुलास ।
आगे किया द्रुपद को, बोले "नाथ दक्षिणा प्रभु के पास" ॥

यद्यपि थे प्रसन्न गुरु ज्ञानी शिष्यों की क्षमता लखकर ।
किन्तु दिया आदेश, "मित्र को मुक्त करो, बच्चों सत्वर" ॥
बड़े प्रेम से गले लगाया कहा "नृपति मेरा अपमान ।
हुआ तुम्हारी राज सभा में था, जाने अथवा अनजान ॥

समता रहित मित्रता मेरी तुमको मित्र न भाई थी ।
यद्यपि गुरु ने मानवता में समता तुम्हें सिखाई थी ।।
मानव मानव का प्रेमी हो बस इतना ही है पर्याप्त ।
इससे जीवन सुखमय होता मिटते हैं संकट संताप ।।

तुम से लेना दान मुझे था उचित, किन्तु कुछ और हुआ ।
होकर भी मैं विप्र तुम्हारे लिए दान का ठौर हुआ ।।
गंगा के उत्तर की सीमा मेरा राज्य कहायेगा ।
औ' दक्षिण का राज्य तुम्हारा पुनः तुम्हें मिल जायेगा" ।।

कहते नीति सुजान कि जब सारा धन हो डूबा जाता ।
भाग्यवान समझो उसको जो आधा तो ले ही जाता ।।
रह कर मौन द्रुपद ने उस क्षण यही व्यवस्था स्वीकारी ।
और किया सब कुछ जैसा करते हैं नृप, हो अधिकारी ।।

उत्तर दिया ईंट का था यों द्रोणदेव ने पत्थर से ।
आतुर थे बदला लेने को द्रुपद, किन्तु चुप थे डर से ।।
सच है प्रेमपाश में हम कर सकते हैं, केहरि अपना ।
किन्तु श्वान को भी न सुहाता सदा दबा भय से रहना ।।

मित्र हो गये थे ऊपर से या कहिये मजबूरी थी ।
किंतु द्रुपद के मन में तो पहले से दूनी दूरी थी ।।
सोच रहे थे, किस प्रकार बदला ले लूँ अपमानों का ।
करते थे सम्मान इसीसे जाने और अजानों का ।।

उपरोहित के कर्म करा सकने में थे प्रवीण द्विज याज[1] ।
पुत्रकामना हित राजा की किया यज्ञ का पूरा काज ।।
फलस्वरूप नृप ने पाया तब धृष्ठद्युम्न सा राजकुमार ।
और उसी के साथ प्राप्त की कन्या, ज्यों लक्ष्मी साकार ।।

धृष्ठद्युम्न का जन्म हुआ औ' साथ साथ कृष्णा आई ।
ज्यों सत् में शिव और धर्म में श्रेय ज्योति हो दिखलाई ।।
थी अनिन्द्य सुन्दरी कुमारी, मनहर गुँथी हुई वेणी ।
सभी अंग प्रत्यंग मनोहर अनुपम यथा याज्ञसेनी ।।

× × ×

काले काले बाल बड़े घुँघराले और मनोहर थे ।
लाल लाल ऊँचे-ऊँचे नख योगी का मन हरते थे ।।
हाथ पैर सुन्दर सुडौल थे चम चम चम चमके पाया ।
कोकिल कण्ठी अधर मधुर थे, गम गम गम गमके काया ।।

श्याम रंग सर्वांग सुन्दरी, बड़ी बड़ी आँखों वाली ।
पुष्ट पयोधर टेढ़ी भौंहें, बड़ी मनोहर मतवाली ।।
मंद मंद गज-गामिनि सुन्दर कृश कटि अति मनहर लगती ।
सौम्य वदन औ' नाक कीर सी, सदा मधुर भाषण करती ।।

---

१ गंगा तट पर कल्माषपाद राजा के नगर के सब से श्रेष्ठ दो ब्राह्मण थे, एक का नाम याज और दूसरे का उपयाज था । राजा द्रुपद ने उपयाज से-जो याज की अपेक्षा अधिक तेजस्वी थे द्रोण को मारने वाला पुत्र प्राप्त करने के हित प्रार्थना की । उपयाज ने सलाह दी कि ऐसा कार्य याज करा सकते हैं अस्तु याज से प्रार्थना की गई जिसके फल स्वरूप पुत्रेष्ठि यज्ञ हुआ ।

सती द्रौपदी—अखण्डानन्द सरस्वती

हुई घोषणा नभ में 'कृष्णा होगी असत् विनाशक नारि ।
इसकी रक्षा सदा करेंगी माँ गौरी शंकर त्रिपुरारि ।।
होगी परम भयावह यह उन अनाचारियों के हित में ।
जिनने अब तक कभी न सोचा परहित को अपने चित में ।।

यद्यपि इसका जन्म हुआ है बिना प्रसव की पीड़ा के ।
अथवा शिशु के रुदन रहित या बालोचित प्रिय क्रीड़ा के ।।
फिर भी इसे प्राप्त होंगे ही प्राकृत शिशु के सारे भाव ।
और यज्ञजन्मा होने का इस पर होगा कुछ न प्रभाव' ।।

गगन-गिरा सुन सभी प्रजाजन ने अपूर्व सुख था माना ।
द्रुपद लगे बुनने निज मन में आशा का ताना-बाना ।।
उनके मन में भाव जागते, जामाता अर्जुन पाऊँ ।
दूँ यह कन्या सौंप उन्हें औ' परम धन्य मैं कहलाऊँ ।।

कन्या को वर मिले योग्य औ' मेरी हो इच्छा पूरी ।
सहज सुगम गति से तय करलूँ अपने जीवन की दूरी ।।
याद न भूले थे अब तक नृप तीखे अर्जुन बाणों की ।
इसीलिए थे पार्थ, द्रुपद हित, कुंजी भरे खज़ाने की ।।

था विश्वास नृपति के मन में एक दिवस वह आयेगा ।
जब प्रशान्त पांडव-मन-निधि भी, ज्वार भयंकर लायेगा ।।
खाते अन्न कौरवों का हैं होंगे द्रोण उन्हीं के संग ।
होगी यदि अधिकार-याचना हित पांडव-कौरव की जंग ।।

श्रौर तभी वे बाण कि जिनसे लुटा युद्ध में मेरा मान।
निश्चित ही मेरे वैरी का कर देंगे सत्वर श्रवसान ॥
यही सोच पंचलनरेश ने करी घोषणा यह तत्काल।
बाण-युद्ध में श्रेष्ठ वीर के उर डाले कन्या जयमाल ॥

राजा ने था लखा कि कन्या उनकी नव आभा वाली।
श्याम वर्ण सर्वांग सुन्दरी घुँघराली अलकें काली ॥
थी स्वभाव से उस कन्या में सभी सम्पदायें दैवी।
अति विनीत मृदुभाषी थी वह, मात पिता गुरु जन सेवी ॥

स्नेह विभोरित नृप ने उस क्षण कृष्णा से यह कह डाला।
"इच्छा है अर्जुन के उर पर डालो बेटी जयमाला" ॥
आज्ञा, होकर मौन किन्तु निश्चय, कृष्णा ने स्वीकारी।
अपनी इष्ट देवि गौरी की, पूजा की, की तैयारी ॥

"माँ अम्बे जग पालनहारी भक्तहृदय में तेरा वास।
दासी हूँ मैं जन्म जन्म की पूर्ण करो मेरी उर आस ॥
शक्तिदायिनी परम शक्ति दो जिससे हों मम जनक प्रसन्न।
और विश्व के अनुपम योधा, पार्थ धनुर्धर का हो संग ॥

वही योग्य कन्या कहलाती जो हो पितु आज्ञा कारी।
जिसने माँ का यश उज्ज्वल कर निज कुल मर्यादा धारी ॥
अतः पिता माता की इच्छा के अनुरूप मुझे वर दो।
इस प्रकार मेरी झोली में दो प्रकार के सुख भर दो" ॥

# द्रौपदी स्वयंवर

मौन हुई नृप-सुता तभी जगदम्बा से यों विनती कर ।
अनजाने ही मिला उसे तत्काल मातु से अनुपम वर ।।
वह प्रसन्न थी देख द्रुपद भी थे प्रसन्न निज कुल के संग ।
होते शकुन अनेक फड़कते सकल सिद्धि दायक शुभ अंग ।।

लखा द्रुपद ने सभी स्वजन का उन्हें मिल रहा है सहयोग ।
उद्यत हुए सहित प्रिय जन के करने निज सुकर्म का भोग ।।
"रचना करो स्वयंवर की अब" नृप ने कहा सचिववर से ।
"पहिचानेंगे वर की क्षमता हम उसके सुसाध्य शर से" ।।

कह जयजीव सचिव ने सत्वर दिया सेवकों को आदेश ।
रचना हुई रंगशाला की पहुँचाये चहुँ ओर सँदेश ।।
आये वीर अनेक स्वयंवर में पाने हित, यश सम्मान ।
हुआ प्रबन्ध अन्यतम जितना कर सकते नृप श्रेष्ठ महान् ।।

हुई उपस्थिति पूर्ण, रंगशाला में आये भाट अनेक।
करने लगे प्रशस्ति द्रुपद की अपनी अपनी लाठी टेक॥
वंश पुरोहित ने कहलाया 'राजन कन्या को लाओ।
अवसर है इस रंग-भूमि में रूप-गंध अब फैलाओ'॥

द्रुपद महल में स्वयं लक्ष्मी सरिस, सजाया कन्या को।
भौतिक उपचारों से शोभित किया रूप सम्पन्ना को॥
आई मत्त गयंद सरिस वह संग सखी हमजोली थी।
मधुर स्वरों में गीत गा रही, पिक बयनी की टोली थी॥

किया प्रणाम पिता माता को, रुका तनिक नैसर्गिक शोर।
यह विचित्र अवसर महलों में था आनन्द, वियोग विभोर॥
"माँ ! मैया !" कहकर ज्योंही कृष्णा माता के निकट गई।
"बेटी बेटी" कहकर जननी कन्या से तब लिपट गई॥

माँ ने साहस धरा और बोली अमृत समान वाणी।
"उचित समय है गुरु समीप जाओ बेटी, हे कल्याणी॥
उनकी सीख प्राप्त करके ही सफल जन्म होगा तेरा।
कीर्ति-ध्वजा नृप की फहरेगी, यश फैलेगा प्रिय मेरा"॥

साथ चले राजा रानी भी, निज कुल के गुरुदेव समीप।
अभिवादन कर नम्र स्वरों से, चरणों में जा पड़े महीप॥
कहा "विदित है नाथ कि कृष्णा अब हो रही पराई है।
ज्ञान-दान के हेतु, ज्ञाननिधि ! यह याचक बन आई है॥

हे पुनीत द्विजराज ! इसे उत्तम कर्मों की दीजे सीख ।
जिससे हो पुनीत मेरा कुल माँग रहा हूँ मैं यह भीख" ॥
लख विनम्रता चतुर नृपति की बोले सद्गुरु विज्ञानी ।
"नृपति तुम्हारी कन्या तो है अनुपम विदुषी कल्याणी ॥

फिर भी सुनो कि नारि-धर्म को कहते हैं कृपाण की धार ।
पग-पग पर विश्वास परीक्षण हित आतुर रहता संसार ॥
इससे जो विचार निष्ठा ले सदा आचरण करती हैं ।
वे अपना कुल और पितृ कुल सदा उजागर करती हैं ॥

सब कुछ सोच विचार उठातीं पग जो परम प्रवीणा हैं ।
उनके ही जीवन में बजती रहती मधुमय वीणा है ॥
गूढ़ तत्व सेवा का माना बड़े बड़े गुणवानों ने ।
सेवा को सादर देखा है निर्धन औ' धनवानों ने ॥

सदा प्रेम हो मात-पिता में, रुचि हो निज कुल वालों में ।
किन्तु रहित अभिमान प्रेम हो घर या बाहर वालों में ॥
सुभग स्नेह हो श्वशुर-सास पर उनकी अनुचरि सदा रहे ।
ऐसी शीलवती नारी के गुण गाते नर श्रेष्ठ रहे ॥

हो स्वभाव से शुभाचारिणी हो न वासना का कुछ रंग ।
किन्तु बहे पति-पत्नी में नित शुद्ध प्रेम की निर्मल गंग ॥
मद न बढ़े धन औ' यौवन का अथवा उन्मादी आशा ।
स्वाभिमान तो रहे, किन्तु हो, सत्वगुणी कोमल भाषा ॥

कुल की मर्यादा को सोचे हो उत्कर्ष हेतु प्रस्थान।
सहज मधुरता से ले जाये जीवन, पाये महाप्रयाण ॥
भ्राता, पिता, पुत्र सम जाने जेष्ठ, श्वशुर, लघु पति-भ्राता।
सेवा करे समान कि जिससे हर कुल है शोभा पाता ॥

सादर अंगीकार करे वह निज कुल के व्यवहारों को।
योगदान दे गठन हेतु वह, सभी वर्ग-परिवारों को ॥
महिलाओं के कारण रहता सभी कुलों में संचित चैन।
परिवारों की शांति बहुत कुछ महिलाओं की होती देन ॥

यदि कुबुद्धि वश कभी प्रकट हो परिवारों में दुखद विषाद।
और शांति की वीणा का स्वर छीने सहसा दुसह प्रमाद ॥
निभा सकें कर्तव्य चाहिए हर बनिता में ऐसी चाह।
उसकी सहज समान नीति का, द्रुततर होवे पुण्य प्रवाह ॥

धर्म कर्म में सहयोगी वह रहे नाथ अपने के संग।
उसके पुण्य चरित्रों से हों पुलकित प्राणनाथ के अंग ॥
जो कुछ हो, दुख सुख अथवा वैभव विषाद, उसके सम्मुख।
पति का शुभ सहयोग लिये वह भोगे उन्हें मान कर सुख" ॥

गद्-गद् होकर कृष्णा बोली "नाथ! नारि का कैसा रूप।
सेवक वही, स्वामिनी भी है, रंक वही है, वह ही भूप ॥
प्रभु इस दुर्गम पथ पर क्यों कर मुझे सफलता होगी प्राप्त"।
कहा विप्र ने "बाले! इस हित शुभाशीश ही है पर्याप्त" ॥

नृप ने स्वयं द्रौपदी के संग, रंगभूमि में किया प्रवेश ।
कहा भाट-बंदीजन ने तब, महाराज का वह आदेश ।।
लक्ष भेदकर जिस कुलीन नृप ने यश अपना फैलाया ।
समझो विश्व-सुन्दरी इस देवी को उसने वर पाया ।।

हुआ पुनः जय घोष और दोहराई गई यही वाणी ।
देख रहे थे आतुर होकर जन समूह राजा रानी ।।
आये तभी अनेकों भूपति, तौला निज पौरुष औ' बल ।
किन्तु निराशा लगी हाथ अभिमान मिटा सबका उस थल ।।

आते बड़े वेग से आतुर और चढ़ाते थे डोरी ।
किन्तु न सकते वेध मच्छ को, रह जाती शेखी कोरी ।।
व्याकुल हुए द्रुपद लखकर यह वर न मिलेगा आया ध्यान ।
नष्ट हो रहा रंगभूमि पर था भूपों का दुराभिमान ।।

× × ×

आये अनेकों नृप कहाते विश्व में जो वीर हैं ।
जिनके पवित्र विचार हैं व्यवहार में गंभीर हैं ।।
यद्यपि किया सबने परिश्रम किन्तु कुछ ना कर सके ।
अधिकांश नृप तो बाण भी इस धनुष पर ना धर सके ।।

नृप पाण्डु के रण बांकुरे सुत पार्थ की करते सुधी ।
पछता रहे थे नृप द्रुपद थी लुट रही उनकी निधी ।।
पहुँचा न शर अब तक किसी का मत्स्य के कुछ पास ही ।
थे शेष जो वर वीर उनसे थी न नृप को आस ही ।।

लख कर व्यथित नृप द्रुपद थे यह हाल सब भूपाल का।
था हौसला बढ़ने लगा अब सूतकुल के लाल[1] का॥
ज्योंही उठा नृप कर्ण, त्योंही चीख कृष्णा ने कहा।
"कुल हीन से हो ब्याह यह मुझ से नहीं जाता सहा॥

"मम ब्याह ना हो जन्म भर, यह तो मुझे स्वीकार है।
पर सूत-सुत को सौंपना मुझको, पिता बेकार है॥
स्वीकार है बन ब्रह्मचारिणि काट देना जीवनी[2]।
पर बन नहीं सकती कभी मैं सूत कुल में संगिनी"॥

सुन कर हुआ हतमान वह नृप कर्ण पूर्ण समाज में।
था चाहता वह विघ्न करना द्रुपद के इस काज में॥
इस हेतु उसने तनिक रुक लेकर शपथ सहसा कहा।
"अपमान के बदले द्रुपद को प्राप्त होगा दुख महा"॥

पर बात उसकी काट दी तत्काल कौरवराज[3] ने।
इससे न कुछ उत्तर दिया उस क्षण द्रुपद महराज ने॥
पर हो गये नृप तनिक शंकित औ' कहा तत्काल ही।
"लगता मुझे अब पड़ गया है वीरता का काल ही॥

यह भूमि भारत की जहाँ शिशु भी नचाता शेर था।
इस भूमि के नर श्रेष्ठ सम होता न इन्द्र कुबेर था॥
अब भील सुत के सम धनुर्धारी नहीं कोई यहाँ।
हा! सो गया अब क्षत्रियों का शौर्य्य बल पौरुष कहाँ?"

---
१. कर्ण
२. जीवन, जिन्दगी
३. दुर्योधन

यह सुन कि होता है स्वयंवर नृप द्रुपद के देश में।
आये वहाँ थे पाण्डु सुत सब ब्राह्मणों के वेश. में।।
था ध्यान यदि अवसर मिला, शर की दिखायेंगे कला।
सम्बन्ध नृप पाँचाल से होना सभी विधि है भला।।

है वीर वह जो धीर है पर सुधि न भूला आन की।
यदि आँच आये शान पर बाजी लगा दे प्राण की।।
उस काल के नर श्रेष्ठ रखते ध्यान थे इसका सदा।
सम्मान से विष पान करते त्याग अपमानित-सुधा।।

सुन कर द्रुपद की बात बोले धर्मराज मुदित मना।
"लगता मुझे है नृप द्रुपद का इस समय मन अनमना।।
इस हेतु उनको सुधि हुई है हेय कुल के बाल की।
औ' ब्रह्म कुल को भूल बैठे, शक्ति जिसमें काल की।।

क्यों भूलते महराज अब भी ब्रह्म कुल में तेज है।
उनकी कृपा से सो रहा नृप वंश सुख की सेज है।।"
थी बात गहरी यह युधिष्ठिर की वहाँ द्विज वेश में।
उत्तर सकें दे, थी न क्षमता पांचाल नरेश में।।

बोले द्रुपद "द्विजवर बनो भागी तुम्हीं इस होड़ के।
शायद तुम्हें ही प्राप्त हो यश क्षात्रकुल को छोड़ के।।
ब्राह्मण सदा चिन्ता किया करते प्रभू के नाम की।
उनकी न होती याचना कुछ कीर्ति या धन धाम की"।।

इस पर कहा यों पार्थ ने "महाराज हम में प्राण है।
निज कार्य क्षमता और वंशज का सहज अभिमान है॥
यदि हो मुझे आज्ञा यहाँ बैठे सभी वर-जेष्ठ की।
तो बेध दूँ मैं मत्स्य निश्चित है शपथ अति श्रेष्ठ की" ॥

यह ओजमय हुंकार सुन नृप द्रुपद को ऐसा लगा।
मानो यहाँ है बोलता उनका, स्वयं का ही सगा॥
थी याद नृप को खूब वाणी वीरवर प्रिय पार्थ की।
उनको लगा यों दीखने, है बात बनती स्वार्थ की॥

तब रंगशाला में हुआ जयनाद ब्रह्म समाज का।
योधा चला अब लक्ष्य पाने, ध्येय था जो आज का॥
थी चाल चिर जानी द्रुपद को हो चला विश्वास था।
है पार्थ यह निश्चित, कि मन उनका लिए नव आस था॥

× × ×

खींच सहज ही प्रत्यंचा को छोड़े लक्ष्य साध कर तीर।
हुई घोर जयकार, रंगशाला में, डाली मछली चीर॥
मत्स्य गिरी उस ठांव जहाँ पर रोपी गई कढ़ाई थी।
इसके साथ सभी नृपगण की डूबी आन बड़ाई थी॥

गुरु जन का आशीश और सम-वय से मिली बधाई थी।
थी अनुकम्पा ब्रह्म वर्ग की, जिनकी शान बढ़ाई थी॥
सच है रहते मौन कार्य रत जो कर्मठ कहलाते हैं।
वे ही करते कार्य श्रेष्ठ, दम्भी तो गाल बजाते हैं॥

× × ×

धृष्टद्युम्न लाये द्रौपदो थी सुभग आभा गात की।
चिंतित खड़ी वह सोचती ले मूर्ति उर में पार्थ की॥
उसको लगा मानों कि उसकी अर्चना निष्फल हुई।
प्रिय पार्थ पाने में बिचारी सर्वथा असफल हुई॥

पर याद था उसको कि श्रद्धा और, शंका और है।
सद्धर्म निष्ठित हृदय का दूजा न कोई ठौर है॥
इससे लगा उसको कि यदि प्रभु का यही आदेश है।
तो मैं इसे स्वीकार कर लूंगी न शंका लेश है॥

वर माल डालो द्रौपदी, आदेश भाई ने दिया।
सुन द्रौपदी ने निज व्यथित मन को तनिक साहस दिया॥
थे अधमुंदे से नयन औ' वह रम गई थी ध्यान में—
प्रिय पार्थ के—जिसको बसाये थी सदा से प्राण में॥

आंखें न खोलीं किन्तु कर तब ध्यान श्रीजगदम्ब का।
बोली कि 'माता हो सहारा तुम निबल निर्लम्ब का॥
जिस हेतु मैंने अर्चना की और जिसका ध्यान है।
दासी बना उसकी मुझे जिसमें सहज सम्मान है॥

तज कर उसे मैं और को हे मातु! कब हूँ जानती?
इससे मुझे पति दो वही, जिसको रही हूँ मानती'॥
यह कह उठाया हाथ औ' जयमाल सहसा गिर गई।
मुस्कान की नवरेख उस क्षण, पार्थ मुख पर फिर गई॥

इस भाँति हुआ सुयोग, पाया द्रौपदी ने पार्थ को।
जैसे मिला करती सदा शुभ कीर्ति नर निःस्वार्थ को॥
लख इस युगल को रंगशाला में बड़ी खलबल मची।
थे प्रिय प्रजाजन मुग्ध लख मिलते पुरंदर औ' शची॥

ज्यों ही पड़ी जयमाल त्यों, महिपाल सब होकर खड़े।
कहने लगे ललकार कर यह ब्राह्मण हम से लड़े॥
बोले सभी मारो इसे, इससे हुआ अपमान है।
हे क्षात्र कुल ! जागो तुम्हारी मिट रही सब शान है॥

यद्यपि किया साहस भिड़े अभिमान वश सब अंध से।
पर दीखते थे यों, भिड़ें ज्यों खर अनेक, गयंद से॥
यह रंगशाला हो गई रणभूमि क्षण भर में तभी।
शंकित खड़े थे देखते नृप द्रुपद औ' साथी सभी॥

लख कर अकेला पार्थ को थे भीम आये साथ में।
लड़ कर हराया कामियों को ले गदा निज हाथ में॥
औ' बाण की वर्षा वहां की पार्थ ने इस भाँति थी।
रवि ढक गया, मानो हुई सहसा भयानक रात थी॥

सब ने दिखाई पीठ ठहरा एक ना मैदान में।
यमपुर गये वे तुरत जो सन्मुख हुए अभिमान में॥
इस भाँति लड़ते वीर लख यदुनाथ ने मन में कहा।
है पाण्डु सुत प्रिय पार्थ यह निश्चित, धनुर्धारी महा॥

× × ×

ले कृष्णा को साथ बंधु सब हर्ष-सहित निज घर आये ।
तन पुलकित औ' मन मुखरित था परम धन्य थे कहलाये ।।
'मां ! लाये सौगात' जभी बोले यों पाण्डुवंश के नाथ ।
माता ने चट कहा[१] 'इसे उपभोगो सभी बन्धु मिल साथ' ।।

यही सोचकर उत्तम भिक्षा लाये हैं बालक मेरे ।
मां बोली थी यों; यद्यपि वाणी को थी होनी घेरे ।।
कठिन समस्या थी, सुत पाँचों लगे सोचने तब मन में ।
मौन हुआ मस्तिष्क सभी का सिहरन थी सब के तन में ।।

बहुत भाँति सोचा सबने पर कुछ न समझ पाये उस क्षण ।
एक ओर आदेश मातृ का, एक ओर नैतिक बंधन ।।
केवल एक मार्ग था सब मिल, देवें अपना जीवन दान ।
धर्म और कुल-मर्यादा हित हो जावें सहर्ष बलिदान ।।

कुन्ती व्याकुल हुई ईश ! यह विपदा पर विपदा कैसी ।
पहले नहीं सोच पाई थी बात बनी पीछे जैसी ।।
जननी बने मृत्यु निज सुत की, प्रभु! कैसी यह उलटी रीत ।
पर यह निश्चय आर्यों का है, समझ सोच होती भयभीत ।।

× × ×

जो हो गया उस पर करें चिन्ता, रहित सब अर्थ है ।
पानी लिया पी और पूछी जात, यह तो व्यर्थ है ।।
फिर भी बुला युवराज को बोले द्रुपद "जाओ वहाँ ।
प्रिय द्रौपदी को ले गये हैं वीर वे ब्राह्मण जहाँ" ।।

---

१ उवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे — आदि पर्व

छिप कर गये नृप-पुत्र यों कोई न जाना कौन हैं ।
देखा कि पाँचों ब्राह्मण औ' द्रौपदो सब मौन हैं ॥
रह कर तनिक उस ठांव उनने बात वह सब जान ली ।
जिससे वहां पर द्रौपदी भी भीख सम थी मान ली ॥

आये पिता के पास अतिशय दुःख से विकराल हो ।
नृप को सुनाई सब कथा तत्काल ही बेहाल हो ॥
सुन कर वचन राजा द्रुपद के खेद का ना अंत था ।
रोते तड़फते विवश पर दिखता न कोई पंथ था ॥

यों खलबली थी मच गई राजा द्रुपद के गेह में ।
जैसे चढ़े विष बीछ का छूते किसी की देह में ॥
क्या सोचते थे क्या हुआ महराज बहुत अधीर थे ।
छिप कर सिसकते थे विकल, दृग से बहाते नीर थे ॥

प्रातः द्रुपद आये वहाँ, ठहरी जहां थी द्रौपदो ।
था लघु रुचिर स्थान बहती पास ही सुन्दर नदी ॥
देखा कि बैठी है सुता उन ब्राह्मणों के साथ में ।
रख गोद में सिर अन्य महिला का व्यजन ले हाथ में ॥

लख लाडली को इस तरह, नृप रह गये गरदन झुका ।
कृष्णा रही हो मौन पर, दृग-नीर उस क्षण कब रुका ?
नृप ने धरा तब धीर बोले नीति-निधि सज्जन प्रवर ।
"कीजे हमें परिचित स्वयं से, हे ! निराले वीर वर ॥"

देखा तभी हैं आ रहे श्रीकृष्ण भी उस ओर ही।
थी गति बड़ी रथ की, कि जिससे कांप जाती थी मही ।।
लख कृष्ण को तत्काल ही सब जन हुए उठकर खड़े।
यदुनाथ हैं परिचित, नृपति आश्चर्य में जाते गड़े ।।

रथ से उतर श्रीकृष्ण भेंटे अंक भर अति प्रेम से।
पूछा तभी "हे बन्धु बोलो हैं बुआ भी क्षेम से" ।।
सब मौन थे, औ' मौन थी कृष्णा, विगत सब आस थी।
था भंग होता मौन लघु ध्वनि से, किसी उच्छ्वास की ।।

"बोलो युधिष्ठिर! कहो अर्जुन ! कहो तो क्या बात है ?
हो मौन क्यों ! भय से विकम्पित भीम का भी गात है ।।
क्यों मौन हो प्रियवर नकुल सहदेव कुछ बतलाइये।
यदि हो नई कुछ बात तो वह भी मुझे समझाइये" ।।

"बोलो भला कुछ तो कहो" श्रीकृष्ण फिर कहने लगे।
मनुहार सुन परिवार के दुख-अश्रु थे बहने लगे ।।
"बोलो बुआ तुम ही बताओ क्यों धरा चिरमौन है।
देखो नयन पट खोलकर तुम को बुलाता कौन है ।।"

खोले नयन सुनकर तभी श्रीकृष्ण की परिचित गिरा।
"हे यदुपते ! परिवार मम अब संकटों में आ घिरा ।।
तुम ही बचाओ हे प्रभो ! मैं दुसह संकट में पड़ी।
इस ओर है गहरा कुंआ उस ओर है खाई बड़ी ।।"

इतना कहा ही था कि सहसा कण्ठ उनका रुँध गया।
आगे न कुछ फिर बोल पाईं शीश सहसा झुक गया॥
पूछा न अब श्रीकृष्ण ने कुछ भी दुखित परिवार से।
बोले द्रुपद सुत से तभी श्रीकृष्ण अति मनुहार से॥

"तुम ही बताओ तो कुँवर किस हेतु होता खेद है।
क्यों रागिनी दुख की बजी, बोलो भला क्या भेद है॥
यह समय है उत्सव मनाने का सभी को गर्व है।
प्रिय पार्थ को कृष्णा मिली हमको विदित यह सर्व है॥

यह याज्ञसेनी द्रौपदी, देवेश सम प्रिय पार्थ है।
इस ब्याह बंधन में निहित पंचाल-पति का स्वार्थ है॥
इससे मुझे समझाइये क्यों शोक आतुर हैं सभी।
उसका निवारण क्या यहाँ पर हो नहीं सकता अभी"॥

साहस कहाँ था धृष्टद्युम्न में कृष्ण के सम्मुख कहे।
वह हेतु, जिससे दुःख-निधि में जन सभी थे बह रहे॥
उसने कहा फिर भी कि "प्रभु होती तनिक अनरीति है।
मैं ही कहूँ सब बात ऐसी तो न समुचित नीति है॥

होकर बड़ों के सामने छोटे न करते बात हैं।
इस क्षण सुशोभित आर्य कुल भूषण हमारे तात हैं"॥
संकेत था पर्याप्त बोले कृष्ण द्रुपद नरेश से।
"महराज हैं विख्यात करनी से तथा वरवेश से॥

ये पाण्डु-सुत नरश्रेष्ठ मेरे प्राण प्यारे मित्र हैं।
इनको दुखित यों देख कर धरता न धीरज चित्त है ।।
कृपया अनुग्रह कीजिए मुझ पर सुना सारी कथा ।
किस हेतु इनका मन दुखी है, सह रहे दारुण व्यथा" ।।

बोले महीप सुजान "यदुपति नीति कहती है यही ।
देखो सुनो जो स्वयं मानो बात केवल वह सही ।।
जो कुछ सुना मैंने कहूँ यह तो न सम्मत तर्क है ।
अपने पराये श्रवण में रहता सदा ही फर्क है ।।

इससे महात्मन् पाण्डु की भार्या अनुग्रह यदि करें ।
मुख को सभी सुत पाण्डु के, सम्मान से मुखरित करें ।।
उनको व्यथित लखकर न मैं अनुरोध उनसे कर सका ।
पर इस तरह व्याकुल सभी को लख नहीं जाता रुका" ।।

यह कह हुए नृप मौन सहसा ग्लानि दुख शंका भरे ।
हो स्नेह कातर पर सहित सम्मान यों बोले हरे ।।
"मेरी बुआ करके कृपा कहिए कि भय वह कौन है ।
जिससे हुए भयभीत सारे वीर धारे मौन हैं" ।।

सुन कर महारानी नृपति कुल श्रेष्ठ राजा पाण्डु की ।
होकर शिथिल कहने लगी गाथा अरुचि कर काण्ड की ।।
यदुवंशभूषण भूल से ऐसा हुआ व्यवहार है ।
जिसको बताना आप को, मेरे लिये अनिवार्य है ।।

पाण्डव प्रतिज्ञा है, न क्षण भर बात मेरी टालना ।
यदि पूर्ति सम्भव है नहीं तो प्राण निज दे डालना ।।
है धर्म संकट आ पड़ा कुछ भी कहा जाता नहीं ।
दें प्राण मेरे लाल मेरे हित सहा जाता नहीं ।।

हो न्याय तो अधिकार है निज राज्य पर प्रिय धर्म का ।
है चाहती उसको प्रजा अवतार वह शुभ कर्म का ।।
निज नगर से वारारणवत, इस हेतु था भेजा गया ।
होवे अकंटक कौरवों का राज्य यह लेखा गया ।।

आग्नेय गृह में की व्यवस्था दुष्ट ने आवास की ।
इस भाँति तोड़ी कौरवों ने रज्जु चिर विश्वास की ।।
पर की विदुर महाराज ने रक्षा सभी के प्राण की ।
थी गुप्ततम सारी व्यवस्था पाण्डवों के त्राण की ।।

जो योग्य हैं नृप के छिपे वे रंक सम फिरते यहाँ ।
औ' माँगते हैं भीख दर-दर से मिले जितनी जहाँ ।।
भूखे तड़फते हैं मगर कण एक भी खाते नहीं ।
उपभोग करने का अगर आदेश ये पाते नहीं ।।

सुत लौटते थे नित्य ही संध्या समय निज गेह को ।
पर कल विलम्ब हुआ, कि जिससे हुआ कम्पन देह को ।।
थी सोचती क्या कौरवों को चल गया इसका पता ।
सुत प्राण मेरे दीन सम छिपकर रहे हैं दिन बिता ।।

या राक्षसों ने ले लिया बदला पुराने बैर का ।
औ' हो गया दुख-अन्त मेरे भीम जैसे शेर का ।।
क्या पार्थ के शर हो गये कुण्ठित समय के साथ में ।
थी सोचती पति खो लिखा है, पुत्र-दुख भी माथ में ।।

अज्ञात भय से भीत हो, मुझको न कुछ सुधि-बुधि रही ।
'माँ आ गये हम' बात सहसा धर्म ने प्रमुदित कही ।।
'अनुपम मिली है वस्तु माँ खुद देखिये, पट खोलकर' ।
देखे बिना मैंने कहा 'सब बन्धु लो उपभोग कर' ।।

मैंने न जाना भीख में क्या वस्तु उनके हाथ थी ।
मैंने न देखा था सुतों के पांचाली साथ थी ।।
अनजान में वह बात जो मैंने सुतों से थी कही ।
उससे व्यथा-व्याकुल न हम से यातना जाती सही ।।

पंचाल पति नृप हैं उपस्थित धर्म नीति प्रवीण हैं ।
इनको प्रथायें हैं विदित जो देश में प्राचीन हैं ।।
यदि पाण्डवों का इस तरह प्राणान्त प्रभु हो जायगा ।
तो नष्ट होगी मामता, औ' सत्य कोसा जायगा" ।।

यदुनाथ ने सहसा कहा "यह तो अनोखी बात है ।
अनजान में हो भूल तो दें प्राण यह—क्या बात है ।।
इस बात पर ही रो रही हो क्या बुआ यों तुम यहां ।
है व्यर्थ की सब बात, जाता धर्म कब किसका कहां ।।

माना कि नृप हरिचन्द्र ने था राज्य छोड़ा स्वप्न में ।
पर कब ? हुआ जब सत्य प्रातः जो दिखा था स्वप्न में ।।
जो कुछ हुआ है आपके संग वह अनोखी बात है ।
यदि अयश मिलता छोड़ने में, मानने में पाप है ।।

यह तो सनातन नीति है श्रुति के विरोधी वचन को ।
ना मानिये चाहे कहे ब्रह्मा स्वयं उस कथन को ।।
यद्यपि पिता ने वचन पालन में किया तन विसर्जन ।
नृप-सुत भरत ने कब किया स्वीकार जननी का कथन ।।

श्रुति-धर्म की गति गूढ़ है इसका स्वरूप विशाल है ।
यह है मधुर अमृत, यही विष कुण्ड भीषण काल है ।।
इसकी परिधि को ज्ञानियों ने बहुत बाँधा ज्ञान से ।
सद्वृत्ति से, जग प्रेम से, सम्मान से, विज्ञान से ।।

पर अन्त में क्या कह सका कोई कि यह ही धर्म है ।
अथवा कि है यह आचरण कृति-योग्य या यह मर्म है ।।
इस हेतु ही महाराज मनु ने संहिता सुन्दर रची ।
जिसमें व्यवस्था धर्म की पूरी हुई कुछ ना बची ।।

मनु कृत मनुस्मृति में लिखा है धर्म समयाकूल है ।
जो योग्य था कल तक हमारे आज वह प्रतिकूल है ।।
वह सत्य जो प्रेरित करे मर्याद कुल की तोड़ना ।
है स्वर्ण सम जो कान फाड़े, उचित उसको छोड़ना ।।

क्या बाँटने की वस्तु होती है कहीं अर्धांगिनी।
यह सोचिए मर्याद क्या है आज दुनिया की बनी॥
हो धर्म का निर्णय, समय कुल रीति, विधिवत् देख कर।
अनुचित उचित को भूलने से चोट होती मर्म पर॥

यदि आपने निश्चय न बदला धर्म सीमित जान कर।
औ' जो कहा अनजान में अनुचित, सही सच मान कर॥
तो अयश फैलेगा धरा पर नीति सब मिट जायगी।
अथवा सभी की बलि चढ़ा ममता स्वयं मिट जायगी॥

क्यों कर रहे हैं धर्म को सीमित तनिक समझाइये।
जो हो उचित कर्तव्य सबके हित हमें दिखलाइये॥
संकीर्ण इतना धर्म को यों मानना ना चाहिए।
जो हो सभी के योग्य हितकारी बरतना चाहिए॥

यदि सत्य कहने से बनी मर्याद मिटती जानिये।
तो झूठ कहने में न होगा पाप, निश्चित मानिये॥
हो ब्याह ब्याही का पुनः केवल वचन आधार पर।
उपहास होगा जगत में इस भांति दुर्व्यवहार पर॥

क्यों मोह में हम फँस गये औ' सत्-असत् से दूर हैं।
बातें उचित अनुचित समझने में बने मजबूर हैं॥
यह तर्क है सोचो सभी, समझो न, उर उद्गार है।
कीजे ग्रहण उसको कि जिससे धर्म का उद्धार है॥

सद्भाव यह जाना न जिसने कर रहा वह भूल है।
है सत्य का क्या रूप, औ' युग-धर्म का क्या मूल है॥
विश्वास अब कीजे सभी मम कथन का लवलीन हो।
आदर उचित है तथ्य का मर्याद पर आसीन हो॥"

कुन्ती बड़ी हर्षित हुई सुन कृष्ण की बातें सभी।
बोली "न यों मैं बोलती, यदि जान पाती कुछ तभी॥
मैंने न जाना था कि इनके साथ षोड़शि नारि है।
मैं सत्य कहती हूँ वचन के, साक्षी त्रिपुरारि हैं॥

सुख छोड सब पांचाल नगरी के, द्रुपद नृप की सुता।
आई यहाँ, दुर्भाग्य-नभ में चाँदनी सी, श्रीयुता॥
यह भूल मेरी थी न समझी कीर्ति आई पार्थ की।
बन कर रुचिर प्रतिबिम्ब मेरे प्राणप्रिय सुत गात की॥

मैं थी विकल उस काल बिन देखे निकल मुख से गया।
उपभोग करलो मिल सभी, जो भीख में था मिल गया"॥
"पर बांटनी थी भीख, क्या नारी सुनी बंटती कहीं"।
यह तर्कयुत् वाणी तभी, यदुनाथ ने उनसे कही॥

बोली तुरन्त कुन्ती "महाप्रभु ! सत्य है तुमने कहा।
अपराध मेरा, दण्ड सुत भोगें मुझे अचरज महा॥
मैं मानती हूँ भूल है मेरी न कुछ प्रतिकार है।
जो कुछ लगेगा पाप इस कारण मुझे स्वीकार है॥

दें प्राण सुत मेरे सभी यह सोच आती लाज है।
अनजान के अपराध पर सजता मरन का साज है॥
क्या अर्थ इसका यह न होगा पाण्डु-सुत सब भीरु थे।
उनका विवेक सभी मिटा था ज्ञान के जो मेरु थे ?

मैं चाहती हूं, आप सब में श्रेष्ठ हैं, वह कीजिए।
सब नीति का पालन करें उपदेश ऐसा दीजिए॥
रह जाय सब की बात औ' रक्षा रहे कुल-धर्म की।
यदुपति कहो तुम ही इन्हें वह बात जो हो मर्म की॥

अड़ना युधिष्ठिर भीम अर्जुन औ' नकुल सहदेव का।
निज बात पर इस भाँति, है कारण बना अब मौत का॥
इनकी प्रतिज्ञा थी सदा मेरा कथन पूरा करें।
यदि हो न पाये पूर्ण तो बिन मौत ये सारे मरें॥

कहते युधिष्ठिर ही नहीं यह पार्थ का भी कथन है।
माँ का कहा हो पूर्ण अथवा सत्य सब का मरन है॥
मेरा कथन हो सत्य अथवा झूठ या आवेश में।
हैं मानते ये सत्य ही हर समय औ' हर देश में"॥

यदुनाथ तब बोले "मुझे है भार यह सौंपा बड़ा।
ममता खड़ी रोती इधर कर्तव्य है ज़िद पर अड़ा॥
माना कि ममता की न मानूं औ' सुनूं कर्तव्य की।
पर क्या नहीं जग यह कहेगा हम सभी है पातकी॥

'जो मीन को दे भेद अपने लक्ष्य भेदी बाण से ।
उसको वरेगी द्रौपदी, तत्काल ही सम्मान से' ।।
की थी द्रुपद ने इस प्रकार विवाह की शुभ घोषणा ।
सम्मिलित थे इस स्वयंवर में वीर ले वर एषणा ।।

यों वेधते ही मच्छ जब दो प्राण समता मय हुए ।
कुछ भी रहा ना शेष नरवर पार्थ कृष्णा-पति हुए ।।
जयमाल पहनी पार्थ ने यह भी सभी हैं जानते ।
यों द्रौपदी को पार्थ पत्नी नीतिनायक मानते ।।

यह सत्य है सोचा सभी ने था सुनेंगे माँ कहा ।
पर क्यों अड़े उस बात पर जिससे सभी को दुख महा ।।
माँ का कथन दूजा सुनो, 'मत कीजिए पहली कही' ।
फिर क्यों नहीं यह मानते हो बात जो साँची सही ।।

इस देश में कुल चार ही हैं नारियों की श्रेणियाँ ।
माता, बहिन, बेटी तथा प्रिय संगिनी, सम देवियाँ ।।
बहु पति प्रथा इस भाँति फैले यह नियम विपरीत है ।
हो एक पति में प्रीत ऐसो ही सनातन रीत है ।।

अतिरिक्त इसके प्राण का भी विश्व में कुछ मूल्य है ।
निष्प्राण के हित तो धरा धन धर्म केवल धूल है ।।
यदि प्राण रहते हैं सुरक्षित तो सुरक्षित धर्म है ।
इस प्राण से ही तो बंधे सब नियम साधन कर्म हैं ।।

इस हेतु रक्षा प्राण की स्वयमेव ही सद्धर्म है ।
रक्षा करें निज प्राण की यह भी बड़ा शुभ कर्म है ॥
उनके प्रयत्नों को नहीं सम्मान से हम आंकते ।
अज्ञान वश हठशील नर जो प्राण हैं यों त्यागते ॥

बोले द्रुपद "कुछ भी समझ आता नहीं क्या हो रहा ।
होती असंगत बात क्यों, क्या दैव चुप हो सो रहा ॥
यह तो सुना था नृपति रखते थे अनेकों रानियाँ ।
पर थे अनेकों पति कहीं, ऐसी सुनी न कहानियाँ ॥

मुझको न होगी बात यह स्वीकार इस क्षण या कभी ।
हों द्रौपदी-भर्तारवत् ये पाण्डु कुल भूषण सभी ॥
मर्याद सब मिट जायगी है आज तक जो भी बनी ।
यदि याज्ञसेनी पार्थ की है, बात ना माने मनी ॥

सुनकर मुदित थे भीम रचना, द्रुपद की भयहीन यह ।
पर मौन लख कर पार्थ को उनने दिये यों वचन कह ॥
"हैं पितु सरिस राजा द्रुपद, सम्मुख न कहना शोभता ।
पर यह समझ, अर्जुन अभी कर्तव्य का पथ जोहता—

अनुरोध है मेरा नृपति अनुचित न माने यह तनिक ।
व्यवहार के बाजार में लखकर मुझे निर्धन बनिक ॥
प्रस्ताव यह मेरा विचारे औ' उचित यदि जान ले ।
तो धर्म की, प्रिय धर्म पत्नी, द्रौपदी को मान ले ॥

भइया युधिष्ठिर हैं बड़े, हम सब इन्हें सम्मानते ।
हम हर समय इनको पिता के तुल्य ही हैं जानते ।।
होगो सभी हित मातृवत् यह द्रौपदी व्यवहार में ।
इस भाँति होगी धर्म की रक्षा सहज संसार में ।।

सुन बात यह प्रिय बन्धु की अर्जुन तभी कहने लगे ।
सुनकर जिन्हें सब भद्रजन 'हो धन्य' यह कहने लगे ।।
कुलकान्त अर्जुन ने कहा "प्रस्ताव यह स्वीकार है ।
स्वीकारने से हो रही लो जीत पिछली हार है ।।

हो ब्याह अग्रज का प्रथम ऐसी सनातन रीति है ।
इस आचरण से अति सुरक्षित पारिवारिक प्रीति है ।।
है योग्य नृप-कन्या इन्हीं के हम सभी यह जानते ।
इस हेतु भी प्रस्ताव को अनुकूल ही हम मानते ।।

गृह-कार्य में है दक्ष औ' रुचिवती जग व्यवहार में ।
अन्यत्र इसके सम न कन्या है नृपति-संसार में ।।
राजा युधिष्ठिर को प्रशंसा में कहें जो, स्वल्प है ।
रवि को लखें हम दीप ले, यह क्यों उचित संकल्प है ।।

बोलो नकुल ! सहदेव ! बोलो कुछ तुम्हें क्या चाहिए ।
प्रिय भीम के प्रस्ताव पर निज मत हमें बतलाइये" ।।
बोले नकुल "मैंने न जाना नीति-शास्त्र पुराण है ।
फिर भी उसी आधार पर हो कार्य, तब कल्याण है ।।

अनिवार्य है मत यदि यहाँ तो पक्ष में ही मानिये ।
जो भीम, अर्जुन ने कहा स्वीकृत मुझे वह जानिये ।।
पर पूर्व इसके हम निकालें सार या निर्णय करें।
होगा उचित यदि राजकन्या कुछ वचन-विनिमय करे ।।

यह बात सारी हो रही है आज जिसके ब्याह की ।
उसने करी थी कामना क्या औ' किसीकी चाह की ।।
वह जड़ नहीं है औ' नहीं है मूक, यह मत भूलिए ।
इस हेतु निज प्रस्ताव पर ही बन्धु यों मत फूलिए ।।

क्या ज़ान पाये आप सब इस द्रौपदी के मर्म को ।
वह चाहती है पार्थ को, या पाँच को, या धर्म को ।।
पति मानना किसको, कहाँ, कब, क्यों, नियम से प्रेम से ।
अधिकार है उसको विचारे वह स्वयं अति क्षेम से ।।

यदि यह उचित समझें सभी तो द्रौपदी से जानलें ।
वह चाहती है क्या उसे हम सर्व-सम्मत मान लें ।।
है चाहती पति पाँच ही क्या सत्य करने माँ-कहो ।
स्वीकार कर लें हम अगर रुचिकर उसे होता यही" ।।

सुन पांच पति की बात यों सहदेव हो कुछ अनमने ।
अमृत भरे शुभ वचन बोले नीति रीति पगे सने ।।
"बहुपति-प्रथा स्वीकार करना धर्म सिखलाता नहीं ।
दाम्पत्य जीवन नेह इससे शेष रह जाता नहीं ।।

श्री कृष्ण ने आकर स्वयं उपदेश है हम को दिया।
पर खेद है हमने न उसका लाभ किंचित् भी लिया॥
है प्राणियों में श्रेष्ठ मानव अतः हम सब धन्य हैं।
पशुवत् करें यदि कार्य तो हम से न पापी अन्य हैं॥

होगी दशा क्या देश की गुणवान गुनिये ध्यान से।
करती सदा है खून ही तलवार निकली म्यान से॥
व्याकुल रहेंगी नारियाँ यों पुरुष-अत्याचार से।
गार्हस्थ्य-सुख का नाश होगा इस दुखद व्यवहार से॥

है धर्म का आधार भौतिक सुख तथा समृद्धि भी।
परलोक की सुख शान्ति औ' इस लोक में श्री-वृद्धि भी॥
हैं हम नृपति कुल से हमारा आचरण शुभ चाहिए।
इस हेतु शुभ व्यवहार को ही चित्त में अब लाइए॥

हमने किये यदि कर्म कुछ मद में कि निज अज्ञान से।
होंगे न सम्मत धर्म अथवा सिद्ध भौतिक ज्ञान से॥
बढ़ जायगी दुर्वासना यदि मान यह हमने लिया।
बुझ जायगा क्षण में हमारे नियम, संयम का दिया॥

भय है, बढ़ेंगे वर्णशंकर, धर्म ना रह जायगा।
होगा न पैतृक स्नेह जीवन नर्क ही बन जायगा॥
प्रतिपल प्रबल अपवाद फैलेगा नियम-स्थान पर।
अबला लुटेगी व्यर्थ ही थोथे क्षणिक अभिमान पर॥

है दोष इसमें बहुत, हम सब सोच सकते हैं अभी।
इस हेतु बहुपति की प्रथा स्वीकार ना करिये कभी॥
यदि इस अनोखी बात को स्थान हम देते यहाँ।
तो देखना प्रिय प्रजाजन का ध्येय जायेगा कहाँ॥

यह मानना तो दूर, इसको सोचना भी भूल है।
हो धर्म-हित जिनका जनम, उनको न यह अनुकूल है॥
वह काम करना चाहिए जो सब समय शोभा लहे।
बहुपति-प्रथा को मानने से प्राण दें तो शुभ रहे"॥

माद्री-तनय की बात प्रिय थी पार्थ को औ' बन्धु को।
सुखकर लगी यह, भक्त-सम, यदुनाथ करुणासिन्धु को॥
अति सुख हुआ पांचाल-पति को, धन्य वे कहने लगे।
उस काल बोले धृष्ठद्युम्न भी वचन यों अमृत पगे॥

"इस ब्याह की, अब मैं कहूँगा, सब कथा संक्षेप में।
पर यह न समझें कर रहा हूँ किसी पर आक्षेप में॥
था तात का निश्चय बहिन के ब्याह-हित वर-रूप में।
चुनना धनंजय को जिन्हें उत्तम गिना नर-भूप में॥

उनने कहे थे बहिन से निज भाव इस सम्बन्ध में।
इस हेतु थी प्रिय द्रौपदी भी मानसिक अनुबंध में॥
वह ध्यान में हर क्षण, सरिस पति पार्थ को थी मानती।
औ' आर्य-कुल-भूषण धनंजय को सदा पति जानती॥

आग्नेय-गृह में पाण्डवों का अन्त सुन था दुख हुआ।
चिर स्वप्न मेरे जनक का उस काल था खंडित हुआ॥
संवाद सुन होगी निराशा द्रौपदी को मान कर।
चर्चा न हमने की कभी उससे सभी कुछ जानकर॥

विश्वास था इससे बहिन को, पार्थ की हो जायगी।
जिस हेतु थी व्रत, पुण्य करती, पति उसे ही पायगी॥
निश्चय सफल करने चुना था स्वयंवर में लक्ष्य को।
पति द्रौपदी का वह बनेगा वेधता जो मच्छ को॥

दुर्भेद्य था यह लक्ष्य उस पर धनुष घोर कठोर था।
यह लक्ष्य पाने हित न जग में पार्थ के सम और था॥
भगवान की इच्छा कि भेदा पार्थ ने ही लक्ष्य को।
यद्यपि बड़ाई थी मिली, द्विज-ब्राह्मणों के कक्ष[1] को॥

यों वेधते ही मच्छ कहलाए सभी अनुसार से।
पति पार्थ कृष्णा के स्वयंवर में, नियम-व्यवहार से॥
इस भाँति अर्जुन बन गये हैं पति इसे सच जानिये।
जयमाल का गौरव स्वयंवर में बड़ा है मानिये॥

किस धर्म की, किस न्याय की, किस देश की मर्याद है।
हो ब्याह ब्याही का पुनः यह रीति का अपवाद है॥
हास्यास्पद ही नहीं यह प्रस्ताव नैतिक भूल है।
अनजान में की भूल को कहना धरम, निर्मूल है॥

---

१. वर्ग

हम निज नियम, निष्ठा लुटा दें भावना के नाम पर।
क्या भद्र जन होंगे न क्रोधित, इस तरह के काम पर ॥
यह अशुभ और जघन्य कार्य न श्रेष्ठ कुल को शोभता।
करते न तात विरोध क्यों, यह सोच मन है क्षोभता" ॥

\

आवेश में जब द्रुपद-सुत थे बात ऐसी कह रहे।
देखा तभी, सबने कि मुनिवर व्यास जी हैं आ रहे ॥
स्वागत किया अनुकूल राजा द्रुपद ने मस्तक झुका।
"महाराज निर्णय कीजिए इस प्रश्न का" सादर कहा ॥

अविवेक का लेकर सहारा, नियम का निर्मम हनन।
लख हो रहा है आज, अतिशय खिन्न मेरा वृद्ध तन ॥
यह निंपट पशुवत कर्म है, कब आर्य-जन को सोहता।
पर लग रहा मुझको कि निर्णय बाट तव था जोहता ॥

हैं धर्मराज यहाँ परन्तु न धर्महित उपदेश है।
माँ का कथन ही इस समय उनको प्रबल आदेश है ॥
करना कथन पूरा असम्भव औ' अनैतिक जानकर।
वे प्राण देने हित हुए उद्यत सहज मन मान कर ॥

इनने न सोचा क्या दशा होगी भला परिवार की।
क्या जी सकेगी द्रौपदी यह मूर्ति अर्जुन-प्यार की ॥
क्या तप किया था उस अबोधा ने इसी सुख के लिए।
क्या हो सकेगा नाश पापों का, न यदि ये सब जिए ॥

इस हेतु प्रभु मर्मज्ञ हैं, इनको हमें दर्शाइये।
वह राह जिससे धर्म-रक्षण हो तुरत दिखलाइये" ॥
यह कह व्यथित नृपवर, चरण में व्यास जी के गिर गये।
उनकी दशा को देख मुनि के नयन जल से घिर गये ॥

"आतुर न होना चाहिए नृप ! नीति कहते हैं सभी।
इस पर हमारे साथ हैं श्री कृष्ण औ' बलराम भी ॥
प्रभु आपके होते व्यथित हों आश्रित इस भाँति क्यों ?"
श्री व्यास ने उन से किया अनजान सम लघु प्रश्न यों ॥

बोले तभी बलराम जी "भइया नहीं कुछ बोलते !
दुविधा अनोखी है न जाने क्यों नहीं मुख खोलते" ॥
मुनि व्यास से श्री कृष्ण ने गंभीर मुद्रा में कहा।
"इन पाण्डवों का दुःख अब मुझसे न जाता है सहा ॥

अनुरोध है द्वय पक्ष का निष्पक्ष निर्णय के लिये।
उत्तम यही होगा कि निर्णय आप ही अब दीजिए ॥
मुझ को तथा इन पाण्डवों को है भरोसा आपका।
इस हेतु है स्वीकार यह प्रस्ताव पांचल-राज का ॥

मैं जानता हूँ बात केवल एक निश्चित मर्म की।
हैं शुद्ध हृदया पाण्डु-पत्नी, मातृ नरपति धर्म की।
उनके वचन अनजान में भी धर्म-हेतु प्रमाण हैं।
आदर करें ना क्यों भला ये धर्म, कर्म सुजान हैं ॥

पर है न उन्नत जाति में बहुपति-प्रथा आदर्श ही।
इसका किसी भी रूप में स्वीकार है अपकर्ष ही॥
इस हेतु मैं स्वीकार करता हूँ द्रुपद के तर्क भी।
बहुपति-प्रथा स्वीकारने से श्रेष्ठ होगा नर्क भी॥

गति सूक्ष्म है अति धर्म की, है कठिन जिसको समझना।
हैं आर्यजन करते पुरातन जन्म की भी कल्पना॥
जो भोगता है मनुज, उसमें पूर्व कर्म प्रविष्ट है।
इससे कठिन या सुगम बनती साधना जो इष्ट है॥

सत्कर्म ही स्थूल में जग धर्म के प्रारूप हैं।
इसके नियम, निष्ठा, दया, धृति सत्य प्रचलित रूप हैं॥
यद्यपि सुगम हैं दीखते पर कठिन हैं व्यवहार में।
थे एक वे उस काल में पर अन्य हैं इस काल में॥

हर कर्म की गति, कार्य-कारण से बहुत सापेक्ष है।
पर पूर्वजन्मों का सदा इन पर हुआ आक्षेप है॥
है बात कुछ ऐसी बनी, इस काल मुझको लग रही।
कहनी कथा होगी मुझे युग-धर्म की पूरी सही" ॥

राजा युधिष्ठिर ने कहे तब वचन गहरे मर्म के।
"मेरे सदा ही आचरण अनुरूप होते धर्म के॥
मां का कथन मेरे लिए निश्चित महत्तम धर्म है।
बस आचरण करना इसी पर एक निश्चित कर्म है॥

जननी, जनक, गुरु और अग्रज की सदा सुनते कही।
कल्याण की उज्ज्वल चदरिया सहज में बुनते वही॥
ऐसी चदरियाँ से सुरक्षित हृदय औ' तन, रूप हैं।
हो पास जिसके विश्व में वे जीव ही नर-भूप हैं॥

जो श्रेयकर शाश्वत् सनातन और सदा अमर्त्य है।
ध्रुव अंश मानव का, महामुनि ! एक उसका, सत्य है॥
इस हेतु है यह लक्ष्य माता के वचन हो पालना।
हो विघ्न इसकी पूर्ति में तो सहज ही तन त्यागना॥

तब वेद-निधि मुनि व्यास ने था धर्म को धीरज दिया।
था साथ अपने नृप द्रुपद औ' पाण्डु-पत्नी को लिया॥
एकान्त में कुछ दूर जा बैठे महामुनि धीर बन।
थी सौम्य आकृति और तप से था कसा उनका बदन॥

मुनि ने कहा "आर्या ! सुनो सब बात कृष्णा-जन्म की।
राजन ! सुनो तुम भी, छिपी है बात इसमें मर्म की॥
यह याज्ञसैनी जानते हो यज्ञ से उत्पन्न है।
शोभित सभी दैविक गुणों से है तथा सम्पन्न है॥

सादर सुनो तुमको बताता हूँ इसे जानें सभी।
इसका सदा ही ध्यान जीवन में न हम भूलें कभी॥
प्राचीन गाथा-शास्त्र की है मान्यता रहती यही।
शाश्वत् सनातन धर्म हो अनुमुदित ले रूपक सही॥

हैं वृक्ष एक विशाल जग में, नृप युधिष्ठिर धर्म के।
औ' सव्य-साची पार्थ हैं आधार उनके कर्म के ॥
शाखा सरिस हैं भीम फैले धर्म-वृक्ष विशाल की।
सुत माद्रि के, फल-फूल सम हैं, शक्ति यद्यपि काल की ॥

दे जन्म पापाचार को, जिसका सदा से लक्ष्य है।
विपरीत इसके एक ईर्षा-द्वेष का भी वृक्ष है ॥
अभिमान भू दुर्योध[१] की है कर्ण है उसका तना।
शकुनि, दुःशासन के प्रयत्नों से विटप वह है बना ॥

संहार होगा पापियों का, जान पड़ता आज है।
यह द्रौपदी कारण बनेगी कार्य धर्म-सुराज है ॥
इस कार्य में विपदा अनेकों इन सभी पर आयँगी।
रक्षक रहेंगे पाण्डु-सुत कृष्णा न क्षण दुख पायँगी ॥

उपदेश सुन मुनि व्यास का लौटे सभी होकर मुदित।
बैठे जहाँ थे कृष्ण, पाण्डव, है कथा जिनकी विदित ॥
बोले तभी ऋषि व्यास उस क्षण सभी को संबोध कर।
मैं कर रहा हूँ आज निर्णय तथ्य सारा शोध कर ॥

है धर्म की गति हीन औ' गतिवान पापाचार है।
इस हेतु कीजे कर्म शुभ, जिसमें निहित उद्धार है ॥
यह द्रौपदी बन केन्द्र देगी मंत्रणा नृपधर्म की।
औ' सफल गृहिणी बन गहेगी डोर वह गृहकर्म की ॥

---

[१] दुर्योधन

पाण्डव सभी रक्षक रहेंगे पति सरिस संसार में।
संयम, नियम निश्चित रहेंगे सभी के व्यवहार में ॥
सुनिये नृपतिवर ! धर्म ! माँ के कथन का क्या अर्थ है।
इससे अधिक समझे न कोई अन्यथा सब व्यर्थ है ॥

माँ ने कहा तुमसे, समझ लो राजनैतिक रत्न है।
लगता मुझे इस दृष्टि से तुमने किया न प्रयत्न है ॥
मिल कर सभी भोगें इसे आदेश माँ का था यही।
इस से समझिये आप सब वह अर्थ जो सीधा सही।

अपना तथा जग-हित विचारो, समय का अनुरोध है।
देखो खड़े हैं शत्रु सम्मुख लक्ष्य में प्रतिशोध है ॥
वे द्रोण वैरी हैं द्रुपद के कर्ण, कृष्णा-शत्रु है।
औ' ये महारथि कौरवों के हैं हितैषी, मित्र हैं ॥

रहना सभी मिल साथ सुख से हर दशा में हर कहीं।
इसको समझना एकता रक्षक अधिक इससे नहीं ॥
आदेश दो इस हेतु आर्ये अब स्वयं तुम सुतों को।
जिससे रहें रक्षक सभी औ' प्राप्त हों सहयोग को ॥

*

## मातृ-आदेश

वातावरण बदला, समय की माँग आई ध्यान में।
सब तथ्य की बातें सही आईं सभी के ज्ञान में।।
नृप पाण्डु की पत्नी तभी बोली तनिक गंभीर हो।
"मानो, महामुनि का कथन सुत ! तुम सभी मतिधीर हो।।

मैंने कहा था, मिल सभी उपभोग इसका कीजिए।
किस भाँति होगी वह व्यवस्था उसे भी सुन लीजिए।।
यह जानते हैं सब कि इसका पार्थ पर अनुराग है।
अर्धांगिनी है पार्थ की यह, द्वेष है ना राग है।।

हों पार्थ इसके पति लिए गार्हस्थ्य का सिर भार हो।
विकसित करें कुल-तन्तु विधिवत्, स्नेहमय संसार हो।।
पर हर परिस्थिति, हर समय में ध्यान यह कृष्णा धरे।
माता, बहिन, बेटी, सरिस वह कार्य चारों के करे।।

यह जानकर, जिस हेतु सुनिये याज्ञसैनी-जन्म है।
करती व्यवस्था हूँ अभी जो राजनैतिक मर्म है।।
है विषम जीवन आज अपना दुखों का आगार है।
आगे बनेगा क्या हृदय पर, इसी का दुख भार है।।

यह एकता की ज्योति सम सबके हृदय-आकाश में।
होगी सुरक्षित उस तरह, ज्यों प्राण होते श्वास में।।
सब धर्म के शुभ कार्य में इसका सदा ही हाथ हो।
औ' नीति-निर्णय में सदा यह योग्य विदुषी साथ हो।।

इस भाँति होगी धर्महित यह योग्य मंत्री राज्य की।
कर्तव्य अपना मान कर यह सुधि रखेगी काज की।।
उपयोग इसकी बुद्धि का बेटा युधिष्ठिर! तुम करो।
आशीष है मेरा धरा से पाप-रूपी तम हरो।।

है भीम बल की खान पर इसको न किंचित भान है।
कब मौन रहना है उचित, कब मुखर का सम्मान है।।
यह चेतना हो भीम की, उसकी प्रगति का योग हो।
बल के सही उपयोग करने में मिला सहयोग हो।।

सहदेव हो इसका सहोदर-सम सदा व्यवहार में।
भगिनी सरिस उपभोग सेवा का करे संसार में।।
कुल का नियम नित प्रति सिखायेगी नकुल को मुदित मन।
मर्याद-रक्षा में रहेंगे वे, नगर हो या विजन।।

हे धर्म ! भीम ! सुनो मुझे स्पष्ट है कुछ माँगना ।
हे माद्रि-सुत ! सादर सुनो, है चार से यह याचना ॥
तुम संयमी हो पुण्यकर्मी धर्मचर व्यवहार में ।
रहना सदा ही वासना से दूर इस संसार में ॥

यद्यपि अनेकों जाल हैं गतिरोध करने के लिये ।
पर वासना-भंगित हृदय-पट नहीं जाते हैं सियें ॥
यह वासना संसार में वर्णित अघों की मूल है ;
यह शत्रु है कल्याण की सद्धर्म उर-हित शूल है ॥

उपभोग की ऐसी व्यवस्था सुन सभी को सुख हुआ ।
पालन हुआ जग-रीति का उज्ज्वल द्रुपद का मुख हुआ ॥
बोले सभी जयघोष कर, इसमें निहित उपकार है ।
प्रस्ताव यह स्वीकार है ! स्वीकार है !! स्वीकार है !!!

जब हो रही थी घोषणा स्वीकार की सम्मान से ।
औ' आ रहे थे दौपदी के मृतक तन में प्राण से ॥
कर में लिए वीणा अधर पर गूंजता हरिनाम था ।
आगमन नारद का हुआ जो सभी-हित सुखधाम था ॥

स्वागत किया ऋषि का सभी ने विनय कर परसे चरण ।
तब कुछ घड़ी गूंजी मधुर ध्वनि जयति श्री नारायण ॥
"मुनि-दर्श तो सुख प्रद सदा ही" व्यास ने सादर कहा ।
"पर धर्म, व्रत धरते मिले तो जानिये मंगल महा" ॥

संक्षेप में ऋषि से कही श्री व्यास ने सारी कथा।
लख द्रौपदी की दीनता थी हृदय में छायी व्यथा।।
इस हेतु लख हरि की यही इच्छा न उनने कुछ कहा।
थी ग्लानि अति मन में छिपी, प्रारब्ध को लख, दुख महा।।

× × ×

सुन प्रसन्न हो गये बन्धुवर मां की यह शीतल वाणी।
'ऐवमस्तु' कह, धर्मराज ने कहा धन्य हो कल्याणी।।
हे माँ! मैं निश्चय मानूँगा बोले भीम गदा को टेक।
सहमत थे सहदेव नकुल भी, तन विभिन्न थे, था मन एक।।

माता की वाणी को सुन कर द्रुपद-सुता ने सुख माना।
और तभी हो दत्तचित्त उसने तत्क्षण यह प्रण ठाना।।
मन से, वचन, कर्म से मैं पालूँगी इस पुनीत व्रत को।
तज देती है प्राण आर्य-ललना कब तजती है सत् को।।

पाँचों बन्धु सदैव साथ रह, देंगे मुझे उचित सम्मान।
जिनकी निष्छल सेवा करने में होगा मेरा कल्याण।।
यदि इस व्रत में मुझे मृत्यु से करना पड़ जाये आलिंगन।
होगा वह स्वीकार किन्तु क्षण भर भी क्षोभ न होगा मन।।

देखु सभी की सत्य-प्रतिज्ञा माता का मन हुआ प्रसन्न।
तब से दो अंशों का मंगल-मिलन हुआ सादर सम्पन्न।।
इसी तर्क पर विज्ञजनों हे! पक्षपात बिन करो विचार।
क्या न पुनीत आर्य-भूमि पर होते थे ऐसे व्यवहार?

गृह-पत्नी सम बनी द्रौपदी मां की कथनी रही अभंग ।
रहा वही सम्बन्ध कि जैसा होता पुत्र, मातृ के संग ।।
आजीवन वह सद्गृहिणी थी रही सदा सेवा में लीन ।
चारों के मर्याद-सिन्धु में प्रति पल सुखी द्रौपदी मीन ।।

× × ×

ऋषि ने तुरत सुमिरन किया प्रभु वासुदेव मुकुन्द का ।
औ' प्राप्त मानो कर लिया आदेश यदुकुल-चन्द्र का ।।
बोले "सुनो कृष्णा-मुझे देना तुम्हें वरदान है ।
जिसमें निहित है नीति औ' युग-रीति का सम्मान है ।।

स्वामी समझना धर्म को निज सत्य-व्रत-व्यवहार का ।
धृति-ईश लखना भीम को प्रारुप बल-भण्डार का ।।
विनयी विवेकी नकुल औ' सहदेव को सम्मानना ।
निज विनय और विवेक का स्वामी इन्हें ही जानना ।।

आशीष है मेरी कि तुझमें शक्ति अद्भुत् आयगी ।
तू इन सभी के संग कन्या[१] भाव को ही पायगी ।।
इससे सुरक्षित ही रहेगा धर्म तेरा हर घड़ी ।
यों पुन्यश्लोका नारियों में जोड़ तू नूतन कड़ी ।।

जीता स्वयंवर में तुम्हें निज लक्ष्य-भेदी बाण से ।
नरपति-समक्ष जिसे हुईं तुम प्राप्त तन, मन, प्राण से ।।
उस पार्थ की पत्नी रहो तुम नेक स्नेह सजी-भरी ।
सुरभित करो उन संग तुम गार्हस्थ्य-सुख की वल्लरी ।।

---

१. इदं च तत्राद्भुतरुपमुत्तमं जगाद देवर्षिरतीतमानुषम् ।
महानुभावा किल सा सुमध्यमा बभूव कन्यैव गते गतेऽहनि ।।
(आदि पर्व १९७ । १४)

थे दूरदर्शी देव-ऋषि बोले तनिक गम्भीर हो।
सुनिये वचन मम पाण्डु सुत सब योग्य हो, मतिधीर हो ॥
तुम पाँच भाई हो मगर कृष्णा बिचारी एक है।
सब की करे सेवा-सुश्रुषा आज से यह टेक है ॥

सम्भावना है यह कि आयें विघ्न उसके कार्य में।
होवे कठिन यह व्रत निभाना नित्य प्रति व्यवहार में ॥
जब व्यस्त हो कृष्णा लिए गृह कार्य कोई भ्रात का।
आदेश ना देगा उसे कोई किसी भी बात का" ॥

बोले युधिष्ठिर देवऋषि ! स्वीकार तव आदेश है।
जो कुछ कहा है आपने वह एकता-संदेश है ॥
परिवार में सुख आपका ही, देखते जो नर नहीं।
वे हर परिस्थिति में सदा ही संगठित रहते कहीं ॥

तब ले गये धृष्टद्युम्न भगनी को लिवा रनवास में।
मां ने लपेटा लाडली को स्नेह वश भुज-पाश में ॥
होकर व्यथित वह द्रौपदी से वचन यों कहने लगीं।
सुन कर जिसे सब के हृदय में नव व्यथा जगने लगी ॥

"मैं धीर ना धर पा रही हूँ कष्ट है मन में महा।
विवरण मिला जब से वहाँ जो विप्र-पत्नी ने कहा ॥
यदि ब्याह तेरे संग पाँचों का सुना होते कहीं।
तब अग्नि में हो भस्म दोनों प्राण त्यागेंगे वहीं ॥

उपहास क्यों होता कहो तो यों हमारा आज है।
क्या हेतु है बोलो भला क्यों लुट रही यों लाज है ?
माँ भी कहे अनरीति की तो ध्यान देना है बुरा।
आदेश ऐसा मानते वे, पान की जिनने सुरा ॥

हैं जेष्ठ जनक समान देवर को तनय सम मानती।
होगा यही व्यवहार में बस हूँ नहीं कुछ जानती ॥
दो अनुज तेरे, जेष्ठ दो जगदीश कैसी रीत है।
पत्नी बने सबकी सुता, अनरीत है ! अनरीत है !!"

सुन कर रुदन नृप ने कहा "प्राणेश्वरी ! धीरज धरो।
मंगल समय है यह, उठो आनन्द महलों में भरो ॥
जो हो रहा है औ' हुआ उसकी वहाँ विस्तार से—
नृप ने सुनाई बात, रानी को, बहुत मनुहार से ॥

बोले नृपति "है प्राण प्रिय ! यह सोचना निर्मूल है।
होगा वही जो न्याय है संदेह करना भूल है ॥
तुमको पड़ी क्या धर्म की, खुद धर्म अपने पास हैं।
मुझको महामुनि के कथन पर अन्यतम् विश्वास है ॥"

यह कह गये नृप महल से निज कार्य करने के लिए।
माँ ने लगाया द्रौपदी को आर्द्र हो फिर फिर हिए ॥
गम्भीर होकर फिर कहा "हे प्राणप्रिय ! मेरी सुता।
किस भाँति सँग में पाँच के जीवन सकोगी तुम बिता ?"

कृष्णा तभी बोली कि "माँ ! भगवान है रक्षक बड़ा।
मेरे लिए आदेश का पालन नहीं कुछ भी कड़ा॥
आदेश पांडव जननि का समझे न थे सब उस घड़ी।
जब पाँच के सँग द्वार पर मैं हो गई थी जा खड़ी॥

नृप धर्मराज प्रवीण औ' उनके सहोदर बन्धु भी।
समझे न थे कुछ मर्म को व्याकुल खड़े थे वे सभी॥
भइया नकुल सहदेव दोनों का हुआ वह हाल था।
मानो जननि आदेश उनको, प्राण लेवा काल था॥

वह मानसिक दुख, ग्लानि वह, सहने न पाये आर्यजन।
वे मौन होकर देखते थे एक दूजे का बदन॥
व्याकुल हुए गिर भूमि पर जैसे गिरें अगणित महल।
उनकी दशा यह देख कर मुर्झा गया मम मन-कमल॥

तब आर्य जननी ने विकल होकर कहा "क्या आज है ?
पाण्डव सभी मूर्च्छित सरिस हैं क्या हुआ अपकाज है ?"
लख कर मुझे सहसा हुई विस्मित कहा "तुम कौन हो ?
किस हेतु आई हो यहां बोलो तनिक क्यों मौन हो ?

इस धर्म को क्या हो गया है इस तरह क्यों रो रहा।
यह भीम अपनी धीरता को इस तरह क्यों खो रहा" ॥
तब आर्य से पूछा कि वे भी क्यों नहीं हैं बोलते।
भय आपदा की गांठ यह थे क्यों नहीं वे खोलते।

थे चाहते कहना कथा सब किन्तु साहस था नहीं ॥
आँसू बहाते पर अधर पर शब्द इक आता नहीं ॥
ज्यों मृत्यु से भयभीत का स्वर बंद पर, दुख असह हो ।
औ' हो व्यथा इतनी कि जिसका झेलना अति दुसह हो ॥

देखी दशा ऐसी कहा ललकार कर फिर पार्थ से ।
ज्यों मर्म-याचन हो रहा हो क्रोध में, नर आर्त से ॥
"बोलो भला क्या हो गया है धर्म को औ' भीम को ?
कुछ तो बताओ मामता-निधि से निकाली मीन को ॥

हैं धर्म हित आधार सद्कृत, मन वचन व्यवहार में ।
अनुचर रहे हो तुम सभी उसके सदा संसार में ॥
सच सच बताओ हेतु क्या है क्यों सभी निष्ठुर बने ?
क्या पुण्य-पंकज पाण्डुसुत, हैं पाप-कीचड़ में सने ?"

सुन कर वचन यों जननि के सुत ने तनिक मुख फेर कर ।
उच्छ्वास छोड़ी दीर्घ सहसा रमापति को टेर कर ॥
यह देख कर मां ने कहा "मैंने किया क्या पाप है ?
कुल दीप मेरे बुझ रहे, किस देवता का शाप है ?

यदि हो गया दुर्दैव-वश इन बालकों का अन्त यह ।
औ' देख पाई यदि न मैं मन चाहती सुबसन्त वह ॥
तो क्या नृपतिवर या कि माद्री करेंगी मुझको क्षमा ।
परलोक में भी व्यथित होगी ईश ! उनकी आत्मा ॥"

इस पर न खोला मुख किसी ने पूर्ववत् ही मौन लख।
बोली "चढ़ेगी अब सहज मम प्राण की हे देव! भख॥"
इतना कहा ही था, विकल वे अब बहुत ही हो गईं।
औ' मुद गये उनके नयन, जड़वत् धरा पर सो गईं॥

मैंने सुना था मौन हो अब तक, हुआ करुणा रुदन॥
अब भी पड़े थे पाण्डु सुत निर्जीव या पाषाण बन।
पर हो गई व्याकुल बहुत लख कर दशा यह मात की॥
वे गिर पड़ी थी भूमि पर, सुधि थी न उनको गात की॥

मम धैर्य छूटा जब लखा वे भूमि पर यों गिर गईं।
थे फड़फड़ाते ओष्ठ उनके, पुतलियाँ थीं फिर गईं॥
इक चीख निकली और मैं दौड़ी उठाने के लिए।
चुपचाप बोले वे, उसी क्षण, 'क्या हुआ तुमको प्रिये?'

मैं क्या बताती क्या हुआ था अतः साधे मौन थी—
ले अंक मां का शीश, जिसने था कहा मैं कौन थी?
मैंने व्यथित होकर कहा 'जगदीश यह क्या हाल है।
मम रूप में है आज आया, पाण्डुकुल का काल है॥

मेरा कथन सुन कर तभी, उभरे नयन नृप धर्म के।
सम्बोध कर मुझको सहज बोले वचन वे मर्म के॥
हे राजकुंवरि न रोइये, तुमसे हुई ना भूल है।
कुछ बात है मां ने कही ऐसी, लगी ज्यों शूल है'॥

तब सूक्ष्म में उनने कही निज जननि की मार्मिक गिरा।
सुन कर जिसे मेरा हृदय भी दु:ख-सागर से घिरा॥
सोचा तभी मैंने कि हूँ मैं प्रात ही पत्नी बनी।
औ' लुट रहा है सांझ ही सौभाग्य हा! हत्भागिनी॥

हा देव! इतने क्यों निठुर हो, दया दीनों पर तजी।
उसको चिता पर झोंकते हो पालकी जिसकी सजी॥
पर दुख नहीं मुझको कि मेरा इस तरह से अंत ही।
है प्रार्थना परिवार संग, प्रमुदित सदा मम कंत हों॥

लगता मुझे मेरा बिलखना आशुतोष न सह सके।
उनकी कृपा से मातु जागीं और उनके सुत जगे॥
चैतन्य होकर बन्धु सब यों पूछने मुझसे लगे।
'क्या हो गया है मात को, होकर व्यथित कहने लगे॥

मां ने मुझे देखा तथा देखा कुशल परिवार को।
आश्चर्य में पड़ सोचने तब वे लगीं व्यवहार को॥
मैंने कहा पा मर्म उनका "मातु कुछ ना सोचिए।
प्रारब्ध था मेरा यही स्वीकार कर दुख मोचिए"॥

मैं पुत्र बधु हूँ पाण्डु कुल की औ' द्रुपद की प्रिय सुता।
सम्मान की जिसके, सजाता समय यों निर्मम चिता॥
जो हो रहा है, हो, मुझे चिन्ता नहीं है प्राण की।
पर है यही अभिलाष प्रभु, रक्षा करो पति-मान की॥"

पर्याप्त था मेरा वचन नृपधर्म 'भूषण के लिए।
औ' शक्ति के आगार अग्रज भीम भीषण के लिए॥
समझी सभी जब बात तो प्रिय आर्य-जननी ने कहा।
हे धर्म! मुझसे हो गया अनजान में पातक महा॥

आगे हुआ जो कुछ सुना है आपने सब तात से।
आशा मुझे है विज्ञ हैं अब आप पूरी बात से॥
इस हेतु माता तनिक भी चिन्ता न कीजे व्यर्थ की।
हैं धर्मवीर धुरी पाण्डव बात है यह अर्थ की॥

मां ये ययाती वंश के नृप पाण्डु की सन्तान हैं।
निज कुल प्रतिष्ठा औ' सनातन नीति का भी मान है॥
यदि हो न जाती बात यों स्पष्ट जैसी बन पड़ी।
तो सत्य है मां तोड़ते सब स्वांस की चेतन कड़ी॥

मां जानती हो धर्मनिधि नृप धर्म ने क्या था कहा।
सुधि कर वचन, मेरा मुदित होता, पुनः तन-मन महा॥
जिस वस्तु हित उनने न कोई किया यत्नप्रयत्न हो।
उसको न वे लेंगे कभी चाहे अमोलक रत्न हो॥[1]

उनके लिए मां दान देना ही रहा कर्तव्य है।
प्रतिग्रह न करते वे कभी इस टेक पर ही गर्व है॥
इससे दुखी थे वे, नहीं स्वीकार कर सकते कभी।
उनकी युगों से मां अनोखी मान्यतायें थीं सभी॥

१. "अहं तु नामि धृष्णोमि, यत्कृतं न मया पुरा', आदि पर्व

सुन कर कथा प्रमुदित हुई प्राणेश्वरी महिपाल की ।
की नष्ट रचना यों कुतर्कों की तथा भ्रम जाल की ॥
मां ने कहा "बेटी बड़ा ही सदय है भगवान भी ।
तुझको मिली यश कीर्ति, औ' हमको दिया सम्मान भी ॥

## शुभ विवाह

सजने लगे पुर द्वार महलों में नया उत्साह था ।
राजा द्रुपद की लाडली का पार्थ के सँग ब्याह था ॥
स्वागत सभी विधि पाण्डु पत्नी का हुआ रनिवास में ।
सब भाइयों को था मिला आसन नृपति के पास में ॥

दिन यों फिरे सब पाण्डवों के द्रुपद–पुर रहने लगे ।
नित प्रबल होता स्नेह, रहते पुत्र सम ममता पगे ॥
वह द्रौपदी सेवा मगन रहती यथा आदेश था ।
उसके लिए अपने पिता का घर स्वसुर का देश था ॥

थे दास औ' दासी अनेकों किन्तु सेवा सास की ।
करती स्वयं थी द्रौपदी, है बात यह विश्वास की ॥
अपनी सुता की शील लख राजा द्रुपद की रानियाँ ।
देती अशीश सदा सुना कर प्रेम पूर्ण कहानियाँ ॥

"ज्यों इन्द्र से इंद्राणि औ' स्वाहा मिली है अग्नि से ।
भद्रा कुबेर मिले यथा श्री विष्णु शशि की भगनि से ॥
हो इस तरह ही प्रेम औ' अनुराग तव पति में सदा ।
रक्षक रहें तेरे बने कुल के सभी नर सर्वदा ॥

होवो प्रसविनी वीर शिशुओं की, शंत-जीवी रहो।
सौभाग्य सुख भोगो, पतिव्रत धर्म की सेवी रहो ॥
बीते समय सानन्द हो उन्नति तुम्हारी सर्वदा।
आशीश देती थीं यही महिला सभी मंगल मुदा ॥

## धर्म चर्चा

अन्न भरे कोठार गृहों में, निर्मल जल हर गगरी में।
होते उत्सव सदा द्रुपद की पुन्य प्रवाही नगरी में ॥
देते थे सहयोग पाण्डु सुत राज काज संचालन में।
नीति और सदधर्म सहित, प्रिय प्रजाजनों के पालन में ॥

स्वाभिमानिनी द्रुपद सुता को सभी भांति था आदर प्राप्त।
किन्तु महत्व चाहती थी वह पाण्डु-सुतों के हित पर्याप्त ॥
इच्छा थी कृष्णा की वे सब होवें वसुन्धरा स्वामी।
बड़े बड़े भूपाल देश के, रहें सदा ही अनुगामी ॥

किन्तु युधिष्ठिर धर्मराज नित अनुज तथा कृष्णा के संग।
रहते हरि पद मग्न, बहाते शुद्ध प्रेम की उज्ज्वल गंग ॥
एक बार पूछा अर्जुन ने "क्यों अक्षुण्य धर्म ज्योती।
युग के झंझावादों में किस प्रकार रक्षा होती ॥

बहुत प्रसन्न हुए नृप कुल मणि, सुन निज भ्राता की वाणी।
बोले "तात सभी दुख सुख को, सहती धरती कल्याणी ॥
आये कष्ट अनेक, उन्हें वह गिनती जैसे कोमल फूल।
किन्तु पाप की स्वांस मात्र भी बन जाती भीषणतम शूल ॥

आज बन्धु मैं मातृभूमि का, कुछ इतिहास बताऊँगा ।
ईश्वर के अवतारों की मैं, तुमको कथा सुनाऊँगा ।।
क्या आदर्श रहा इस भू पर यह तुमको बतलाता हूँ ।
कृष्णा ! तुम भी सुनो बात जो मैं सब को समझाता हूँ ।।

बढ़ता जभी अधर्म भूमि पर पाप भार बढ़ जाता है ।
परम पुरुष लेकर अनेक अवतार धरा पर आता है ।।
रखता ज्योति अखण्ड धर्म की हरता पाप अँधेरे को ।
देता संध्या को चन्दा औ' आशा किरण सवेरे को ।।

बीते कल्प अनेक, ज्ञान की ज्योति जगी इस धरणी पर ।
है हम सब को गर्व आर्यजन की कथनी औ' करनी पर ।।
इस पृथ्वी पर आदि देव ने, विविध बार है जन्म लिया ।
सत्य प्रेम औ' धर्म न्याय से जन-मन सहसा मोह लिया ।।

सभी देश से देश हमारा सुनो बंधु, अति न्यारा है ।
इसी भूमि पर आदि पुरुष ने, बार बार पग धारा है ।।
उनकी शिक्षा ने मानव का ज्ञान, अंग परिपूर्ण किया ।
सत्य, धर्म, कर्तव्य, न्याय समता, औ' प्रेम-प्रवीण किया ।।

सतयुग में बाराह बने प्रभु, पृथ्वी की रक्षा के काज ।
देहूती से कपिल देव का जन्म, कथा प्रचलित है आज ।।
हुआ तभी से धर्म निरूपण है जो धरती पर जारी ।
सभी मार्ग की हुई व्यवस्था आश्रम और वर्ण चारी ।।

सांख्य शास्त्र जाना इस जग ने, द्वैत ज्ञान देने वाला।
प्रभु की माया का परिचायक, जगत ताप हरनेवाला ॥
मोक्ष प्राप्ति की महिमा जानी, जग ने भक्ति तत्व जाना।
उन्नति के पथ पर था बढ़ता, भारत सुख पा मन माना ॥

भक्ति भाव की शक्ति बताने, हरि ने नया रूप धारा।
नरसिंह रूप में प्रकट हुए औ' हिरणाकश्यप को मारा ॥
सुयश पताका प्रभु भक्तों की, फहरी युग तक इस भू पर।
जन-मन प्रिय प्रहलाद हुए थे, गर्व हमें उनके ऊपर ॥

महा प्रलय बेला में जब, श्री ब्रह्मा को थी नींद लगी।
सकल विदित है, वेद चुराने अश्वग्रीव की नियत डिगीं ॥
आती कथा पुराणों में यों हरि के उन अवतारों की।
मत्स्य बने हरि और रखी, मर्याद पूज्य श्रुति चारों की ॥

मंथन हुआ नीर निधि का जब, देव दनुज दोनों थे साथ।
मंद्राचल का भार उठाया, कच्छप बने जगत के नाथ ॥
चौदह रत्न मिले मंथन से, सुधा हेतु झगड़ा डाला।
बुद्धि हीन करने दैत्यों को बने नाथ सुन्दर बाला ॥

सुधापान कर देव सुखी थे, दैत्य वारुणी पा थे मस्त।
हरि की यह अवतार कथा है, प्रचलित सुनिये बन्धु समस्त ॥
और हेतु हरि अवतारों के, तुम्हें सुनाऊँगा मैं आज।
जिससे होगा सिद्ध जगतपति, रखते सदा भक्त की लाज ॥

भक्ति नहीं रहने पाती है वहाँ, अहं है जिस तन में ।
अहंकार का बीज न जमने देते हरि, निज जन मन में ॥
घोर तपस्या के कारण, नृप बलि ने अनुपम पद पाया ।
हुए सभी सुख प्राप्त, नृपति वह, दान शिरोमणि कहलाया ॥

नृप को था अभिमान कि, उसको मान मिला है मनमाना ।
उसका तपबल सकल विश्व ने, भली-भाँति है सनमाना ॥
धर वामन का रूप नृपति से, दान हेतु था प्रश्न किया ।
नन्हें तीन पगों में प्रभु ने, तीन लोक था नाप लिया ॥

यमदग्नीसुत वीर परषुधर रहे पिता आज्ञाकारी ।
छीना राज अनेक बार नृप गण से बन स्वेच्छाचारी ॥
बल पौरुष से क्षात्र-वंश का, इस धरती पर अंत किया ।
इक्किस बार द्विजों ने भोगा, राज इन्हीं का दान दिया ॥

प्रकटे फिर प्रिय अवधपुरी में, तेज पुंज प्रभु अविनाशी ।
जिनके गुण का गान करेंगे, युग-युग तक भारतवासी ॥
दशरथ कौशल्या सुखकारी मर्यादा रक्षक श्री राम—
जन्मे, उनके साथ पधारी, उनकी लीला ललित ललाम ॥

इन अवतारों ने ही भाई, धर्म ज्योती है चमकाई ।
वेदों और पुराणों ने है, इन सब की महिमा गाई ॥
जब मर्यादा पर संकट हो धर्म बिगड़ने लगता है ।
आदि पुरुष नाना रूपों में रक्षा के हित बढ़ता है" ॥

यही हेतु है बन्धु ! धर्म की सदा अचल गति होती है।
यथा फहरती धर्म-ध्वजा, जिससे धरणी सुख सोती है ॥
जब जब होती हानि धर्म की पाप-कृत्य बढ़ जाते हैं।
मानवता रक्षा हित श्रीपति भारत-भू पर आते हैं ॥"

सुनी सभी ने बात मुदित मन धर्मराज की यह उस काल।
बोली कृष्णा तभी विनय से महाराज हम हुए निहाल ॥
हे महीपकुल-छत्र, आर्यजन कभी न भूले यह मन में।
दर्प न आवे पास, किन्तु मर्यादा, मान सजे तन में ॥

"क्या रहस्य है इसमें भैया, हमें सहित विस्तार कहो।
क्या रुचि है कृष्णा की प्रभुवर, हम सब से स्पष्ट कहो" ॥
बिहँसे धर्म सुनी जैसे ही, भीमसेन की यह वाणी।
बोले "भइया द्रुपद सुता है, पुन्य प्रवाहिनि कल्याणी ॥

भारत का इतिहास पुरातन, देखो तो होता है ज्ञात।
मर्यादा से बँधे सदा थे, संध्या, प्रात, दिवस औ' रात ॥
था कर्तव्य सत्य आधारित, भाव सदा मर्यादित थे।
सुख की होती वृष्टि नेह के नीर, गगन अच्छादित थे ॥

था व्यवहार प्रेम का निश दिन, रहता था वचनों का मान।
किन्तु पराये हानि लाभ का, धर्म प्राण रखते थे ध्यान[1] ॥
उपकारी का आदर करते दानी का होता गुण गान।
सज्जन गुणी चतुर नर पाते नृप, धनाढ्य से प्रतिपल मान ॥

---

१. आत्मवत् सर्वभूतेषु

याद तुम्हें है हरिशचन्द्र, ने सत्य न छोड़ा था क्षण भर।
बिके नीच के हाथ, किन्तु थी ग्लानि नहीं उनके तन पर॥
उनकी भीषण सत्य तपस्या से, प्रभु का आसन डोला।
सब के सम्मुख, स्वयं धर्म भी, नृपवर की था जय बोला॥

सत्य स्वयं भगवान, सत्य ही पृथ्वी का आधार रहा।
सुनो ध्यान दे मैंने तुम से, अपना सत्य विचार कहा॥
मर्यादा है सत्य, जगत में शुभ आचरण न भूलें हम।
मर्यादा निर्माण हेतु तो, नभ गरिमा भी छूलें हम॥

× × × ×

बलि ने बचाई नीति औ' मर्याद की रक्षा करी।
जिसके गुणों पर हो गये थे मुग्ध श्री स्वामी हरी॥
निज वचन मर्यादा निभा सकते नहीं जो लोग हैं।
वे हर समय, हर जन्म में, करते दुखों के भोग हैं॥

है वचन का भी मूल्य जीवन में, वचन का ध्यान हो।
जो कुछ कहें उस पर सदा ही हम सभी को मान हो॥
पाकर अहं बलि मिट गये पर वचन प्रतिपालक रहे।
पाया न पद देवेश का, पाताल-पति, जाते कहे॥

यदि भूल से भी भूल हो, स्वीकार करनी चाहिए।
जो भी उचित हो मूल्य उसका, पूर्ण करना चाहिए॥
थी भूल शान्तनु भूप की, जो गंग से उनने कहा।
परिणाम में सुत वध हुए, पर वचन प-दृढ़ थे वे महा॥

सनकादि ऋषियों की कथा को, हैं सभी नर जानते ।
अपमान था उनका हुआ, दुर्भाग्य वश हैं मानते ॥
पर जय विजय ने था चुकाया, मूल्य उनके मान का ।
भोगा कठिनतम दंड जो उनको मिला अपमान का ॥

था तीन जन्मों में चुकाया, मूल्य कहते हैं यही—
बन कर असुर, इस भूमि पर, यों बात जाती है कही ॥
पर थे नहीं वे रोष लाये जानता संसार है ।
निज भूल को स्वीकार करने में बहुत ही सार है ॥

जय औ' विजय को तारने, जन्मे जगतपति थे कभी ।
इस विधि हुआ उनका यहाँ, अपमान में सम्मान भी ॥
निज जन-वचन के हेतु थी प्रभु ने सही तब यों व्यथा ।
सद्ग्रंथ गाते हैं युगों से इस तरह उनकी कथा ॥

जग में विदित है परम तप ध्रुव भक्त का इतिहास यों ।
रानी सुरुचि ने था किया, अभिमान वश उपहास ज्यों ॥
नृप गोद में हो लाल उसका ही, जिसे नृप मानते ।
पति की चहेती है सुहागन, नीति यह सब जानते ॥

अपमान की खा चोट ध्रुव ने बात यो माँ से कही ।
'नृप का तनय तो हूँ बता फिर स्नेह क्यों मुझ पर नहीं' ॥
उत्तर मिला माँ से कि, 'ले वरदान तू, भगवान से ।
पाया अचल पद, जानते सब, भक्त ने सम्मान से ॥

दी थी चुनौती जब वृतासुर ने, समर-हित इन्द्र को।
थी खलबलो सुरलोक में चिन्ता हुई देवेन्द्र को॥
तब दान अपने हाड का था, दे दिया उपकार में।
शुभ नाम अमर दधीचि का है, आज तक संसार में॥

थी धर्म की गति हीन होती, पाप के आघात से।
औ' जीत होती थी उन्हीं की, जो गिरे मर्याद से॥
आये स्वयं भगवान ले अवतार, इस संसार में।
कर धर्म की रक्षा सजाया ज्ञान उर-भंडार में॥

भगवान से होता सहन कब, गर्व नर या नारि का।
हो गर्व चाहे असुर का या पूज्यतम् असुरारि का॥
इस हेतु जो अभिमान-मद से झूमते संसार में।
इतिहास कहता फँस रहे वे, घोर पापाचार में॥

हैंद्वेष दूषित भाव जिन के हैं न जीवित जानिये।
उनका बिगड़ता लोक औ' परलोक दोनों मानिये॥
इस हेतु कुत्सित भावना, मन में न क्षण-भर लाइये।
हो विश्व का कल्याण, प्रतिपल गीत ऐसा गाइये॥

मिलती विभूति हमें सदा, निज कर्म के अनुसार से।
देता सभी कुछ ईश, मिलता कुछ नहीं संसार से॥
मिलती भलाई, कर भला, औ' नीच कृत से, नीचता।
मिलती अमरता पी सुधा, विष पान कर, तन छीजता॥

सम्मान मिलता शील से औ' क्रोध-फल अपमान है।
गौरव उन्हें मिलता न जिनमें घर किये अभिमान है॥
युग की कसौटी पर परख होती सभी की ध्यान से।
सम्मान या अपमान मिलता, ज्ञान या अज्ञान से॥

भृगु ने हनी थी लात हरि को एक दिन आवेश में।
जिसकी कथा है आज तक प्रचलित हमारे देश में॥
हरि की क्षमा, शृंगार बन बैठी सदा के वास्ते।
श्री-सिद्धि खोई द्विज महोदय ने, गये जिस रास्ते॥

गालव-नहुष का नाम भी, मिलता हमें इतिहास में।
भोगा उन्होंने कष्ट पड़ कर, गर्व-दुर्गुण-पाश में॥
आदर्श हो अपना यही, अभिमान से हम दूर हों।
पर स्वाभिमान बिसारने के हेतु क्यों मजबूर हों॥

भगवान करते न्याय हैं, इतिहास बतलाता यही।
अपराधियों को दण्ड देते न्याय सम्मत औ' सही॥
जो मोह में फँस कर न बातें न्याय सम्मत सोचते।
अपकीर्ति पाते औ' स्वयं निज कृत्य को हैं कोसते॥

अज्ञान के कारण नहीं नर न्याय निज-हित सोचते।
किस का अहित कैसे करें बस हैं यही नित सोचते॥
कीजे न पर अपकार वह तो धर्म के प्रतिकूल है।
है कार्य निन्दा योग, कब मर्याद के अनुकूल है?

चुगली बुराई जो किया करते, न यश पाते कभी ।
निर्लज्ज हैं वे लोग ऐसा भद्रजन कहते सभी ।।
वे दुर्व्यसन के कीच में, कीटाणु सम रहते सदा ।
उनका किया जो संग तो निश्चित मिलेगी आपदा ।।

वह कर्म करना चाहिए जो धर्म बतलाता सही ।
कीजे वही, जो बात सम्मत न्याय हो, सांची सही ।।
समझे बिना जो काम करते मान पाते हैं नहीं ।
अपमान के कारण न उठता शीश एसों का कहीं ।।

सुख प्राप्त होता है सदा, सीधे वचन-मन-कर्म से ।
मिलती निराशा ही सदा षड्यंत्रकारी मर्म से ।।
हो नम्रता अपने कथन में अर्थ में युग-श्रेय हो ।
जन-मन हृदय की वेदना खोना सदा ही ध्येय हो" ।।

सुन यह कथा नृप धर्म से, सुत पाण्डु के कृतकृत हुए ।
आभार कर स्वीकार सबने, प्रेमवश पद थे छुए ।।
बोले तभी युवराज पांचलदेश के महराज से—
"हम सब इसी पथ पर चलेंगे पूज्यवर ! बस आज से" ।।

ज्योंही समय आया, गये दरबार में पाँचों चतुर ।
बैठे जहाँ थे कार्य करते, वीर अर्जुन के स्वसुर ।।
महाराज ने उठकर किया स्वागत सभी का समय सम ।
जय जयति जय बोले तभी सामंत सारे, मुदित मन ।।

## उद्‌बोधन

किया एक दिन भोजन सबने मिल, माता की आज्ञा से।
तब बोली कुन्ती पुत्रों औ' पुत्र-वधू सौभाग्या से ॥
"सुनो सभी मुझको कहना है तुम से एक हृदय की बात।
आओ धर्म, भीम, माद्री-सुत, आओ पार्थ प्राणप्रिय तात" ॥

बैठी कुन्ती मध्य सभी के होकर सावधान बोली।
लगती बड़ी मनोहर थी यह धर्म-प्राण जन की टोली ॥
"यद्यपि हो सब धर्म परायण तथा सत्य-पथ के राही।
और सदा करते आये हो बातें मेरी मन चाही ॥

किन्तु आज अपने अनुभव की तुम्हें कहूंगी कुछ बातें।
जिससे होकर शक्तिवंत तुम, करो सहन जग की घातें ॥
आशा है, तुम सभी सुनोगे अपनाओगे जीवन में।
फल स्वरूप श्रीवृद्धि करोगे, सुख पाओगे निज मन में" ॥

× × ×

माँ ने कहा "सब भाइयों को भाग देना धर्म से—
है श्रेष्ठतम व्यवहार, सब के हित, वचन-मन-कर्म से ॥
यदि मोह में पड़ कर कभी हम न्याय करते हैं नहीं।
तो विघ्न आते हैं अनेकों, चित्त सुख पाता नहीं ॥

देते हमें हैं सीख अपने नीति-निष्ठित ग्रंथ भी।
अधिकार देने से सुरक्षित है प्रगति का पंथ भी ॥
यदि भाग सम मिलता नहीं तो वैर बढ़ जाता सदा।
कटुता समाती है हृदय में दुःख रहता सर्वदा ॥

यह भूलना मत, भाग सम देना प्रकृति अनुकूल है।
विपरीत इसके कर्म जो है वह हृदय का शूल है ॥
यदि अन्य का अधिकार छीनोगे, कभी अनजान में।
तो जानिये बट्टा लगेगा आर्यकुल की शान में ॥

× × ×

किन्तु एक छवि शेष और है, ऐसे ज्ञान-चित्र की भी।
निर्बलता साथी होती कब अपने इष्ठ मित्र की भी ॥
भय से अथवा बहकावे में निज अधिकार गवाँ देना।
धर्म नहीं है, कायरता है" था कुन्ती माँ का कहना ॥

पूछा तभी धर्म प्रतिपालक पाण्डु सुतों में अग्रज ने।
"माँ ! हमको कब मोहा बोलो राजपाट रथ या गज ने ॥
हमें विदित है खूब कि हमने, रखी नहीं औरों की वस्तु।
फिर भी हमें रुचिर लगती है वाणी तव, इस हेतु तथास्तु" ॥

"मां बोली, हो सत्य कह रहे, तुमने कब अधिकार रखा।
किन्तु दुःख है निज अधिकारों का न कभी है स्वाद चखा" ॥
दबा हँसी कृष्णा तब बोली मां से अति कोमल वाणी।
"क्षमा किया है नृप वर ने मां! क्षमा सदा है कल्याणी ॥"

कहा गरज कर तभी सिंहनी ने निज कुल की शोभा से।
"क्षमा अनीति करेंगे पल भर कहो न ऐसा योद्धा से ॥
निर्बल और निरीह जनों को क्षमा दान दें, है स्वीकार।
किन्तु दुराचारी को छोड़ें, इनके पौरुष को धिक्कार ॥"

मां ने देखा भीम हँस रहा लख कृष्णा की चतुराई ।
मन चाही निज बात चतुर ने माता से थी कहलाई ।।
कहा धर्म ने पुनः जननि से "मां ! कृष्णा की जीत हुई ।
कही बात इसकी मन चाही, तू मां इसकी मीत हुई ।।"

अब स्पष्ट दिखाई देती थी कृष्णा की चतुराई ।
उसने अपनी हँसी रोकने हित ज्योंहि ली जमुहाई ।।
मां भी मुस्काई यह कह कर, "कृष्णा युक्ति प्रवीणा है ।
सत्य समझना बेटी जीना मर्यादा का जीना है ।।

सुनो बहू मैं सदा साथ थी, क्षण हित विलग नहीं छोड़ा ।
इस विधि इन पाँचों को मैने, अब तक ममता से जोड़ा ।।
मेरा है विश्वास स्नेह-दृढ़, सुत मेरे हर क्षण होंगे ।
धर्म नीति रक्षा हित ये सब, एक किये निज मन होंगे ।

कहा विदुर जी ने इनसे है, अलग कभी तुम मत होना ।
किसी रूप में पाण्डु-वंश की, मान प्रतिष्ठा मत खोना ।।
अतः रहो तुम सावधान सब, कभी दाँव में ना आना ।
युग-इच्छा अनुरूप सदा तुम, सत्य धर्म को अपनाना ।।

रहे संगठित बंधु सभी तो नहीं कभी दुख पाओगे ।
आवे विपति अनेक मगर, सत्-पथ पर बढ़ते जाओगे ।।
शत्रु तुम्हारे युक्ति सोचते, तुम्हें विलग कर देने की ।
दाल न उनकी गलने देना, बात यही है कहने की ।।

यद्यपि अनजानी आशा को हृदय बसा मैं फूली हूँ।
किन्तु मृत्यु है सत्य तथ्य यह, मैं न एक क्षण भूली हूँ ।।
पल पल क्षण क्षण समय-सूचिका बतलाती घटता जीवन।
हुआ व्यर्थ ही जन्म सोच यह दुखी बहुत है मेरा मन ।।

मेरे बच्चों विष देना विश्वास कभी मत खो देना।
कहते है विश्वास-सहारे रहता है लेना देना ।।
अतः मुझे विश्वास दिलाये सभी संग मिल रहने का।
औ' कि सभी के लिए मूल्य होगा मेरे इस कहने का ।।

सोच रही हूँ कैसे बाँधू एक सूत्र में, मैं तुम को।
क्या संतोष मिलेगा मेरे चिंतित संतापित मन को ?
केवल यही एक चिन्ता है क्या होगा भविष्य बोलो।
कृष्णा बेटी तुम ही इस क्षण, अपनी जिह्वा को खोलो" ।।

## पुनीत निश्चय

होकर विनीत पुनीत कृष्णा ने कहा यों सास से।
"जग के सभी शुभ कर्म होते, माँ, सदा विश्वास से ।।
विश्वास देवें आपको, अग्रज बड़े नृप धर्म यों।
जैसा जहाँ आदेश होगा सब करेंगे कार्य त्यों ।।

मन-क्रम-वचन से माँ रहें अनुचर सभी नृप धर्म के।
वे श्रेष्ठ नीति-सुजान समझावें वचन सब मर्म के ।।
अग्रज कहें जो बात, माने अनुज सब संकोच तज।
नित नेह में डूबें, चढ़ाये शीश पर शुचि चरण-रज ।।

"मैं देता विश्वास तुम्हें मां निज कुल मान बढ़ाऊंगा।
अपने अनुज संग ले सत्वर पापाचार मिटाऊंगा" ॥
कहा धर्म ने "कृष्णा के संग माता तू सुख पायेगी।
सुदृढ़ संगठित शासन की शुचि राज मात कहलायेगी" ॥

मां बोली "है ठीक, किन्तु मैं वचन चाहती हूँ सबसे।
चिंता यही सताती मुझको, निकले हम बाहर जब से ॥
कभी द्वेष ना उपजे मन में, भाई के प्रति भाई का।
मिल कर पाँचों रहे साथ, ले लक्ष्य, नाश अतिताई का ॥

प्रेम भाव होवे पाँचों में, कभी नहीं मन में खीजें।
भूल अगर होवे छोटों से बड़े सदा उस पर रीझें" ॥
सरल चित्त से धर्म राज ने, कहा "मातृ हे कल्याणी।
तुमने पुनः कही मेरे हित, तात विदुर की शुभ वाणी ॥

केवल एक विदुर हो तो हैं कुल में हित चिन्तक अपने।
शेष सभी तो देख रहे हैं सर्वनाश के ही सपने ॥
सीख विदुर की स्वयं बहुत है इस पर माँ तेरा कहना।
सत्य शपथ अब बना लिया है मैंने यह अपना गहना ॥

दो माँ अब आदेश सत्य ही मैं तव वचन निभाऊँगा।
यदि न कर सका कहीं उसे तो स्वयं नष्ट हो जाऊँगा" ॥
यह सुन बोले सभी 'ठीक है माँ, भइया का यह निश्चय।
होंगे हम अनुगामी इनके, अतः रहो तुम पूर्ण अभय' ॥

कहा युधिष्ठर ने "माता तुम इस क्षण से निःचिंत रहो।
सेवक सब व्रत पूर्ण करेंगे, तुम निज मन में मोद भरो ॥
जननी की आज्ञा का पालन, परम धर्म कहलाता है।
सुख दाता हैं, यश दाता है, और मोक्ष का दाता है ॥

—

हम को सदा सुनाती रहना भाव भरो जो तुम मन में।
प्राप्त करेंगे हम सब भाई, जो चाहोगी जीवन में ॥
करना ना संकोच मातु हे यही सुतों की अभिलाषा।
माता की आज्ञा का पालन, ही है सुख की परिभाषा" ॥

यह सुन थी प्रसन्न मन माता, फिर गुन कर बोली यह बात।
"जो मैं तुमसे चाह रही थी, वह सब मुझे मिल गया तात ॥
सुनो युधिष्ठिर भीम माद्रि-सुत ! यह है मेरी अभिलाषा।
पार्थ-द्रौपदी ! सुनो पूर्ण करना मिलकर मेरी आशा ॥

यह तों सभी जानते है इस मृत्यु लोक के नरनारी।
सुख दुख भोग, भाग्य आधारित जाते है बारी बारी ॥
होता है आभास मुझे अब मेरी आयु खुटानी है।
किन्तु तुम्हारे यश गौरव की रचनी महा-कहानी है ॥

तुम मर्यादा के प्रतिपालक देश धर्म हितकारी हो।
इच्छा है मेरी इस भू पर सत्ता एक तुम्हारी हो ॥
मेरे इस विचार का पोषण कृष्णा सदा करेगी तात।
बस कह चुकी मुझे जो कहनी थी, अपनी मन चाही बात ॥

मैंने कृष्णा के परिणय के समय, कहा था जो तुम से ।
इच्छा है अब पुष्टि करो सब उसी बात की दृढ़ मन से ॥
यह कृष्णा गृह-स्वामिन बनकर रहे, पाण्डु कुलहित चिंतक ।
तथा आप सब रहो सदा ही इसके सभी भाँति रक्षक" ॥

"माँ !" बोले तब धर्म "नहीं क्या तुझको है हम पर विश्वास ।
बता भला क्यों तू सहती है, द्रुपद-सुता के कारण त्रास ॥
सभी भाँति यह संरक्षित है, सत्य मान मेरा कहना ।
जग-जीवन में इसका होगा, मर्यादा अनुपम गहना ॥

माँ मेरा विश्वास अडिग है, सभी बंधु हैं मेरे साथ ।
होगी कृष्णा पूर्ण सुरक्षित" बोले धर्म उठाकर हाथ ॥
"यही नहीं माँ हम सब की अब, एक प्रतिज्ञा यह होगी ।
क्रमशः लेंगे गोद पार्थ की, जो भी संताने होंगी ॥

गति पायेंगे हम उनसे ही, वे हम को तर्पण देंगे ।
कर्म अपत्य[१] सभी भाई हित, उनसे ही अर्पण होंगे ॥
इस विधि माता सुदृढ़ रहेंगी, ऐक्य भावना इस कुल में ।
प्रेम सुरक्षित सदा रहेगा, आती पीढ़ी के मन में ॥"

हो विनम्र नृप वंश जलज ने, कही बात यह हितकारी ।
सभी बंधुओं ने सुख पाया सुखी हुई माँ बेचारी ॥
किन्तु पार्थ ने कहा तभी, "माता ! मुझको वर दो इतना ।
पहिचाने मेरे सुबन्धु सब, सदा मुझे सेवक अपना ॥

---

१. पिता के लिए मृत्यु के उपरान्त किये जाने वाले कर्मादि ।

मेरे से दो बड़े, और दो हैं मुझ से भाई छोटे।
अतः सभी विधि ये मेरे सुख, औ' हित चिंतन को ओटे ॥
माँ ऐसा भी करो कि मेरी दो भाभी आये घर में।
अनुज-वधू दो फिरती देखूँ, मांग रहा हूँ यह वर मैं" ॥

—

माता हँसी तभी सुन ऐसी वीर धनंजय की वाणी।
बोली "बेटा एवमस्तु तव बात आज मैंने मानी ॥
किन्तु कहाँ है रचा स्वयंवर तनिक खबर में भी पाऊँ।
तेरे योग्य सुबन्धु तुरत ही प्रेम सहित मैं वर लाऊँ ?"

"क्या माँ सोच रही हो मन में रात गये दिन आता है।
पौरुष की ऊषा से माता भाग्य तिमिर मिट जाता है ॥
कुसमय है भइया फिरते जो अनजाने घर या वन में।
किन्तु उन्हें सम्राट कहेगा युग, यह सत्य जान मन में ॥

मेरे भइया की पद-रज सम, नहीं भूमि पर है कोई।
अभी कुछ दिनों से, हे माता है किस्मत अपनी सोई ॥
माँ तू पुनः राजमाता बन सादर पुण्य कमायेगी।
सत् पथ पर आरूढ़, हमारी श्री सम्पत्ति बढ़ायेगी ॥"

बोले धर्म-कथन अर्जुन सुन "भइया ये मन-मोदक हैं।
खाओ चाहे जब जितने पर नहीं तृप्ति के बोधक हैं" ॥
तभी भीम ने कहा कि "राजन सत्य कहा है अर्जुन ने"।
दिया कँपा सब को सहसा ही, महाभीम की गर्जन ने ॥

कहा तभी निर्भीक नकुल ने, औ' सहदेव सहोदर ने।
"होगा सत्य कहा है जो कुछ, अर्जुन और महोदर ने ॥
हमें संगठित होकर रहना औ' करना है भू-शासन।
अपने प्यारे भइया के हित भव्य बनाना सिंहासन" ॥

कुन्ती को आश्चर्य हुआ सुन अपने बच्चों की बातें।
यही सोचते तो काटीं थी उसने अनगिनती रातें ॥
किया विचार कि किसने इनमें नवपौरुष है जगा दिया।
किसने उसके बिखरे स्वप्नों को इस ढंग से सजा दिया ॥

हुई न देरी तनिक जानने में यह करतब किसका था।
जिसके कारण बदल गया व्यवहार, मंत्र यह किसका था ॥
कुछ न कहा उसने लड़कों से करी प्रशंसा कृष्णा की।
जिसके कारण शांति हो रही थी उन्नति-हित तृष्णा की ॥

कुन्ती ने तब कहा "धन्य हो कृष्णा ! यों तेरा साहस।
तेरे कृत्यों को लख सुन कर, मुझे बहुत आता है रस ॥
बेटी इतना याद रहे उद्यम ही सुख का स्वामी है।
जीवन भाग्य विधाता भी ता बल विक्रम अनुगामी है ॥

आलस या दुर्बलता मन की कभी न हित कर होती है।
निरुपायी निर्बल निरीह नर जन्म जननि भो रोती है ॥
अतः रखो यह याद लक्ष्मी नर-पौरुष की दासी है।
निज बल का उत्तम प्रयोग ही सभी समय सुखरासी है" ॥

कहा धर्म ने तभी जननि से "मां सचमुच मैं बड़भागी ।
मंत्री मुझे मिली है कृष्णासम देवी गुण-अनुरागी ॥
धृष्ठद्युम्नकी बहिन, द्रुपद की तनया, अर्जुन की भार्या ।
याज्ञसैनि है स्वयं, सत्य ही पाण्डव-कुल-भूषण आर्या" ॥

# खाण्डवप्रस्थ के महामहीप

और समय ने ली करवट लो शुभ प्रभात वेला आई।
कृष्णा बन साकार लक्ष्मी, पाण्डु-वंश हित यश लाई।।
जिनका था जीवन भिक्षा पर, दान शिरोमणि कहलाये।
नयन नीर पी जो जीते थे, गये क्षीर में नहलाये।।

समाचार यह फैला घर घर, पाण्डुपुत्र तो जीते हैं।
वास कर रहे द्रुपदपुरी में, स्नेह सुधा रस पीते हैं।।
पुनर्जन्म सुन पाण्डु सुतों का, इष्ट मित्र ने सुख पाया।
कर्ण और दुर्योधन की पर, लगी सूखने अब काया।।

मामा शकुनि दुशासन औ' अश्वत्थामा को चिन्ता थी।
दुष्ट पुरोचन[1] के कर्मों से क्षुब्ध राज्य की जनता थी।।
सब कहते थे दण्ड पुरोचन को, भीषण देना होगा।
हुई अनीति पाण्डवों के संग बदला तो लेना होगा।।

---

१. पुरोचन दुर्योधन का मन्त्री था जिसने पाण्डवों को जलाने के षडयंत्र में भाग लिया था।

कुछ कहते थे नहीं पुरोचन की, यह सूझ अन्य की है ।
जो कुछ उसने किया बात वह कौरव दिये अन्न की है ।।
समाचार ये सब पहुँचे जब महाराज धृतराष्ट्र समीप ।
सुन कर बोले "कौन न होगा श्रीयुत, पा पांचाल महीप ।।

अनुज पाण्डु के पुत्र सभी मुझको प्राणों से प्यारे हैं ।
अच्छे हों या बुरे, पाण्डुसुत आखिर बन्धु तुम्हारे है" ।।
बोले तभी विदुर जी "राजन ! धन्य आपका यों कहना ।
उत्तम होता है मिलजुल कर कुल-कुटुम्ब-जन में रहना" ।।

किन्तु सोचते युक्ति शकुनि औ' कर्ण–दुशासन बैठे साथ ।
चलें कौन सी चाल कि बाजी होवे दुर्योधन के हाथ ।।
सोचा उनने मनमुटाव हो कृष्णा के कारण ऐसा ।
तुच्छ भावना में पलने वालों में, हो जाता जैसा ।।

फिर सोचा वे करें भीम-वध छल करके चोरी चोरी ।
सुन यह कर्ण सूरमा ने भी तब मारी शेखी कोरी ।।
बनी न कोई बात ईर्षा ने, पर उस क्षण जन्म लिया ।
क्रोध सभी को आ जाता है, देख व्यर्थ सब कहा किया ।।

बैरी चाहे जो भी सोचे. अनभल तनिक न होता है ।
जब तक रक्षक परम हितैषी जगत पिता खुद होता है ।।
उसकी इच्छा से सुख दुख में, दुख सुख में बदला जाता ।
मानव चाहे जो सोचे पर मन चाही कब कर पाता ।।

बोले यों धृतराष्ट्र "सुयोधन ! भीष्म द्रोण को लेकर साथ।
सोचो कोई युक्ति कि जिससे कौरव औ' पाण्डव हों साथ ॥
कहा पितामह भीष्म श्रेष्ठ ने "सम मुझको दोनों भाई।
चाहे हो गाँधारी माता उनकी, या कुन्ती माई ॥

उचित नहीं हो अनभल इनका, किसी भाँति मेरे होते।
कुछ भी कहो पाण्डु सुत भी तो हैं मेरे प्यारे पोते ॥
उन वीरों से करो संधि दे पिता-पितामह का हिस्सा।
भरो मधुरता निज कुल में यों भूलो जो बीता किस्सा ॥

करो सुयोधन वही कर्म जो कुरु-कुल को शोभा देवे।
उचित वही है नीति जिसे जन मन होकर प्रसन्न सेवे" ॥
"अति उत्तम है" कहा द्रोण ने "भीष्म आपका यह कहना।
शोभा उन्हें नहीं देता है द्रुपद नृपति के घर रहना" ॥

कही कर्ण ने फिर ऐसी वैसी बातें क्रोधित होकर।
किन्तु बुलाना पाण्डु-सुतों को हुआ मान्य, शोधित होकर ॥
निश्चय हुआ विदुर जायेंगे उन्हें बुलाने सासम्मान।
कौरवपति का एक अनुग्रह[1] मैटेगा पिछला अपमान ॥

प्रमुदित आये बंधु पाण्डु-सुत, मिला राज्य का आधा भाग।
इस विधि किया द्रुपद तनया ने अपने पिता महल का त्याग ॥
राजमहल से निकल सुलोचनि राज महल में ही आई।
खाण्डवप्रस्थ पुनीत हुआ औ' इन्द्रप्रस्थ की बन आई ॥

---

१. धृतराष्ट्र की इच्छा से पाण्डवों को पुनः उनका राज्य दिया गया था अतः अनुग्रह माना गया।

कही एक दिन तब स्वामी से कृष्णा ने निज मन की बात ।
"महल यहाँ के हैं अनुपम पर अपने लिए नहीं पर्याप्त ।।
नाथ प्रजारंजन हित कीजे एक विशाल सभा निर्माण ।
बैठें जहाँ नृपतिवर सादर राज्य करें, जन पावें त्राण ।।

लगी पार्थ को बहुत श्रेयकर प्राणप्रिया की यह वाणी ।
बोले "ऐसा ही होगा अब, शीघ्र सुनो हे कल्याणी" ।।
आज्ञा दी 'मय' को यदुपति ने, अर्जुन की इच्छा लख कर ।
"करो सभा निर्माण अगर कहलाना है अर्जुन-किंकर ।।

ऐसी रचना करो जिसे लख, मानव बुद्धि विभोरित हो ।
जिसकी अनुकृति करने के हित सहज न कोई प्रेरित हो" ।।
मयदित के सुत को अर्जुन ने एक बार था अभय दिया ।
आभारी वह था अर्जुन का, उसने प्रत्युपकार किया ।।

लिये चतुरदश मास असुर ने सभा बनी लम्बी चौड़ी ।
जिसके सम्मुख देव सभा भी लगती थी थोड़ी थोड़ी ।।
देव-दनुज के अभिप्रायों से सभा सुशोभित थी ऐसी ।
मानव ने देखी न अभी तक रचना प्रिय उसके जैसी ।।

विधिवत किया प्रवेश युधिष्ठिर ने, पूरी कर तैयारी ।
जनपदेश, ऋषि-मुनि जो आये, लगी सभा सबको न्यारी ।।
सौ हजार गज का घेरा था, आठ सहस्त्र बने किंकर ।
अद्भुत रूपवती थी रचना, जिसे बनाया था द्रुततर ।।

इसमें, राजमहल की रानी कृष्णा समय बिताती थी।
निज कुटुम्ब की उन्नति के हित युक्ति नई चित लाती थी॥
यद्यपि उसका वैभव था अब, अधिक सभी नरपालों से।
राजसूय हो यज्ञ, चाहती थी वह निज महिपालों से॥

राजनीति ही नहीं रुचिर थी रखती थी वह घर का ध्यान।
सेवा करना पूज्य सास की, औ' अभ्यागत का सम्मान॥
घर के सभी टहल करती थी यद्यपि दासी दास अनेक—
रहते थे सेवा रत हर क्षण, राज महल की रखते टेक॥

सूर्य उदय के बहुत पूर्व ही कृष्णा तजती थी सैया।
नित्य कर्म उपरान्त सुमिरती प्रभु, जीवन का रखवैया॥
गृह-स्वामिनि की भाँति टहल वह, पाण्डु-सुतों की करती थी।
उपयोगी हर वस्तु यथा रूचि, उचित समय पर धरती थी॥

× × ×

थी वह स्वयं करती व्यवस्था, भोजनालय में सदा।
बनता रुचिर भोजन जिसे, पा सभी रहते मन-मुदा॥
थी पूजती वह देवताओं को, पकाये अन्न से।
पाते यथाविधि दान द्विज जन, पाण्डुकुल सम्पन्न से॥

वह ध्यान रखती थी सभी का, इस बड़े परिवार में।
थी अन्यतम क्षमता दिखाती, नित्य प्रति व्यवहार में॥
ना छोड़ती थी कार्य कोई दूसरे दिन के लिए।
थे, सर्वदा ही कार्य उसके, समय पर जाते किए॥

सेवक सदा सानन्द रहते थे, दया व्यवहार से ।
थी, पूज्यजन को मुदित रखती वह बहुत मनुहार से ।।
निश्चित किया करती सदा थी योजना निज कार्य की ।
समता नहीं मिलती हमें, उससे कुशल व्यवहार की ।।

निज रुचि रहे या ना रहे, परिवार की रुचि देख कर ।
करती प्रबन्ध सुबन्धु हित वह, नीति विद्, विज्ञा प्रवर ।।
लख कर कठिनतम वृत सभी, आशीष देते थे उसे ।
यों जा रही थी महातप से सतत् वह निज तन कसे ।।

सब में बढ़े कुल की प्रतिष्ठा प्रेम का संचार हो ।
कल्याणकारी कार्य हों, औ' सृष्टि का उपकार हो ।।
थी भावना रहती यही बस, द्रुपद-तनया की सदा ।
निज कंत से कहती यही थी समय मिल जाता यदा ।।

उसके महल के द्वार जनता के लिए रहते खुले ।
जो जब कभी चाहे, मुदित मन पार्थ-पत्नी से मिले ।।
वह थी स्वयं अपनी प्रजाहित लीन रहती सर्वदा ।
उनके दुखों औ' आपदाओं को सुना करती सदा ।।

## राज्य-लक्ष्मी

मानवता, समता समानता, का शुभ पाठ पढ़ाती थी ।
पिछड़े छूटे दीन जनों को, आगे सदा बढ़ाती थी ।।
प्रजा जनों के रंजन हित, जो कार्य किया आदर्श रहा ।
फल स्वरूप उस काल राष्ट्र का हुआ सतत् उत्कर्ष महा ।।

नारि धर्म क्या है कैसा है, रही सभी को सिखलाती।
पुण्यपुनीता, महासती, नारी की बातें बतलाती॥
उसकी निष्ठा भी उतनी थी, जितना था उपदेश मधुर।
लख जिसको सबजन देते थे आदर-सम्मान प्रचुर॥

धर्म कार्य में कभी न हटती पीछे, फिर चाहे जो हो।
करती हर दम न्याय सभी से, वादी प्रतिवादी जो हो॥
निज नियमों का पालन उसने परम धर्म स्वीकारा था।
होवे कुछ भी हानि, नीति-पथ उसने नहीं बिसारा था॥

उसके शुभ कर्मों का फल था सुखी नृपति, जन-मन संतुष्ट।
राज्य प्रणाली जन-गण प्रिय थी, और शास्त्र सम्मत संपुष्ट॥
प्राप्त लक्ष्मी थी नृप वर को, धर्म कार्य में भी रुचि थी।
सभी सुखों का भोग कर रहे थे, करनी अतिशय सुचि थी॥

पिता पितामह के युग सम हो, धर्म राज्य का सम्बल था।
ज्ञान और धन वृद्धि नित्य प्रति होती, सैना में बल था॥
ठीक तरह से समझ लिया था, संधि युद्ध या नीति विचार।
बने जलाशय, सेतु बँधे थे, होता था खुल कर व्यापार॥

दुर्गाध्यक्ष तथा बन रक्षक, धर्म-अज्ञय, कुलप्रोहित, दूत।
राज्य-ज्योतिषी, मिले साथ थे, शासन की जड़ थी मजबूत॥
धन से पूरे अधिकारी थे, व्यसनों पर आसक्ति न थी।
गुप्त मन्त्र को जो फैला दे, ऐसी कोई शक्ति न थी॥

अखिल राष्ट्र के अभ्योदय हित होते थे सब कार्य तुरन्त ।
राजा तथा राज्य सत्ता की, शक्ति अगम थी और अनन्त ।।
विनयी, बहुश्रुत, शास्त्रविज्ञ, का राज्य सभा में होता दल ।
छल छिद्रों से रहित श्रेष्ठ, विद्वानों का मन्त्रीमण्डल ।।

नृप न निरंकुशता से कोई दे पाते थे जन-आदेश ।
सेनापति थे सूर, मानमति, धारण किये सदा गण-वेश ।।
कृषि, वाणिज्य तथा पशुपालन का समुचित प्रबन्ध होता ।
उत्तम विधि से यथा समय पर संपादन कृषि का होता ।।

राजा की परिषद् में होता जन प्रतिनिधियों का सम्मान ।
धर्म, धरा, जन की उन्नति से बनती थी प्रिय प्रजा महान् ।।
प्रजा अनुग्रह से, शासन की होती हर क्षण, जय जयकार ।
सुखी संत जन रहते प्रतिपल, दुष्टों का होता संहार ।।

सभी भाँति धर्मज्ञ नृपति ने किया धर्म का प्रतिपालन ।
और राष्ट्र के हित आवश्यक शुभ कार्यों का संचालन ।।
हो न दुष्ट का साथ नीति नायक ऐसा ही कहते हैं ।
बड़े बड़े पौरुषधारी भी, यों कुसंग से डरते हैं ।

सभी भाँति सबका हित होवे, पाण्डु सुतों का था यह लक्ष्य ।
किन्तु हस्तिनापुर में आगे, बढ़ता जाता था प्रतिपक्ष ।।
जिससे शक्ति हीन हों पाण्डव, पुनः कहावें दीन-अनाथ ।
सदा कुमन्त्र सोचता ऐसे, दुर्योधन शकुनी के साथ ।।

## अन्तःपुर में

एक रात कृष्णा से पूछी अर्जुन ने हँस कर यह बात ।
"हो प्रसन्न, जिस नीति-धर्म से राज्य कर रहे हैं प्रिय तात ॥
जनता की सेवा में निशदिन रहते हैं खोये खोये ।
इन्द्रप्रस्थ के प्राणप्रिये अब जागे भाग्य युगों सोये ॥

सुख का है साम्राज शान्ति है अखिल राष्ट्र में चारों ओर ।
पुण्य पयोनिधि नृपति धर्म शशि, जन गण मन है, बना चकोर ॥
सभी भाँति कुल की सेवा का ध्यान तुम्हें रहता प्यारी ।
इसीलिए तो सुरभित है, यह सजनी ! अपनी फुलवारी ॥

मैं कृत कृत्य हुआ हे सुन्दरि ! पा तुमसा जीवन साथी ।
प्राण प्रिये ! देखो यह काया, अब क्या है, पहिले क्या थी ॥
रहा यही यदि हाल सुलोचनि, मुझे भीम समझेंगे सब" ।
अतिशय प्रेम देख स्वामी का कृष्णा बोली "बस चुप अब ॥

अपने मुंह अपना गुण गाना खूब पढ़ा है जी तुमने ।
इसका है जो हेतु प्राण, पहिचान लिया है अब हमने ॥
इच्छा क्या है आर्य ! बात अपने मन की कुछ तो बोलो ।
करने कार्य अनेक प्रातः उठ, इससे तनिक देर सो लो ॥"

"अच्छा जाओ करो शयन" यों कहा कंत ने हो अनमन ।
पूछा कृष्णा ने "तब बोलो चाह रहे क्या जीवन-धन ॥
सचमुच मति बौरा देते हो बड़े बड़ों की बातों में ।
किन्तु ना आते कभी भूल कर अन्य किसी की घातों में" ॥

यों कह बैठी मौन मानिनी अपने हृदय-नाथ के पास ।
प्राणनाथ ने दी फैला प्रिय बंधन हेतु तभी भुजपास ।।
थे करते यों युगल अन्यतम, यथा काम रुचि रूप विहार ।
और सुखद, दृढ़तर बनता था इनका प्रणय-प्रीति व्यवहार ।।

जो जग हित के हेतु जगत में आते उन्हें ध्यान रहता ।
क्या उनका अधिकार और कर्तव्य उन्हें क्या है कहता ।।
कहा पार्थ से कृष्णा ने "हैं कार्य नाथ अब भी बाकी ।
निज सीमा की शान्ति प्राण ! निश्चित समझें है एकाकी ।।

यह तो सच है हमने अपनी सीमा में सुख फैलाया ।
किन्तु हमारा अपना वैभव कब औरों को है भाया ।।
इससे निज अथवा जनगण का सुख लख' अधिक न फूलें आप।
रहिए सदा सतर्क हृदय-पति फैला है चहुँ दिश संताप ।।

हमें बहुत आवश्यक है अब औरों की इच्छा जानें ।
क्या समीप के राष्ट्र चाहते भली भाँति यह अनुमाने ।।
अतः नीति आधार यही है अपनी सीमा के उस पार ।
करे प्रयत्न यथेष्ठ कि जिससे सजे शान्ति-सुख का संसार ।।"

तनिक विहंस कर कहा पार्थ ने "खूब आज चर्चा छेड़ी ।
सच है प्राणप्रिये हो लाई बहुत दूर की तुम कौड़ी ।।
अच्छा हो मैं गुप्त रूप से करूँ बृहद्तम् सर्वेक्षण ।।
जान सकूँ किसका हमसे है, वैर भाव या आकर्षण ।

मर्म न जान सकें प्रिय भइया सदा गुप्त रखना यह बात ।
जान गये तो जा न सकूँगा ममता आर्द्र बहुत हैं तात" ।।
"चिन्ता है बस एक उन्हीं की और नहीं क्या मेरा ध्यान ?"
सुन कृष्णा की बात मर्मयुत कहा "प्रिये तुम हो मम प्राण ।।

कहीं आज जो तुमने मुझसे, अति रहस्य की बातें हैं ।
नहीं समझ सकते हम बैठे, कौन लगाये घातें हैं ।।
जब तक स्वयं समझ ना आऊँ, किसी बहाने से सब को
कृष्णा नहीं, तोष[1] हो सकता, किसी भाँति भी अब मुझको ।।

है अनुरोध आज यह मेरा कभी सुअवसर आने पर ।
करना यत्न कि जिससे पाऊँ ज्ञान तनिक बाहर जाकर ।।
प्राप्त करूंगा पूर्ण लक्ष मैं जो तुमने मन-धारा है ।
इस अभीष्ट के साधन में बस तेरा एक सहारा है" ।।

## नियम भंग

सभी सूचनायें मिलती थीं दुर्योधन की गति विधि की ।
किन्तु क्षमा आगार युधिष्ठिर ने न तनिक इसकी सुधि की ।।
था उनका विश्वास सदा ही क्षमा दया घृति याद रहे ।
चाहे जो हो हानि सुरक्षित सदा मान मर्याद रहे ।।

हुआ एक दिन धर्म विरोधी दल से द्विज पर अत्याचार ।
दीन हीन ने तुरत पार्थ से राज्यभवन में करी पुकार ।।
'श्रेष्ठ धनंजय ! मेरी गायें क्रूर लुटेरों ने लूटीं ।
चले जा रहे निर्भय होकर, राज्य दण्ड निष्ठा टूटी ।।

१. तोष = संतोष

गौश्रों की चोरी हो जाये राजन कीजे तनिक विचार।
पाण्डु वंश के केतु ! सहोगे तुम निर्बलों पर अत्याचार ?
क्यों होती अनीति कहो तो आज युधिष्ठिर हैं महाराज।
कुरु जन-पद में कहो दीन-रक्षक क्या है चोरों का काज ?

× × ×

अर्जुन ! तुम्हारे राज्य में अब हो रहा अन्याय है।
कर ले रहे रक्षा न करते, क्या यही शुचि न्याय है ?
है, पाप बढ़ता जा रहा राजन हमारे देश में।
हैं घूमते पापी लुटेरे भद्र जन के वेश में॥

जो कुछ अभी हो कार्य कर सकते धनंजय तुम करो।
दो दंड चोरों को तुरत औ' धेनु उनसे जा हरो॥
यदि हो न पाया यह सुनो, शासन निबल बन जायेगा।
रक्षा करो हे पाण्डु नन्दन ! राज्य-भय मिट जायेगा॥

"मेरा सभी धन लुट गया तुम को न आती है दया।
हे पाण्डु-सुत जल्दी करो तुम को कहो क्या हो गया॥
लगता सभी कुछ मान मेरा औ' तुम्हारा मिट गया।
हा ! आज मेरे बाल-बच्चों का सहारा लुट गया" ॥

रक्षा न करते हो अगर तुम विप्र की दुष्काल में।
तो शाप दूँगा याद रखिये दुखी हो तत्काल मैं" ॥
सुन पार्थ बोले "द्विज महोदय ! तनिक धीरज धारिये।
थी ज्यों प्रजा रक्षित, रहेगी, बात यह न विसारिये" ॥

संतोष द्विज को था न उस क्षरण वह रुदन करता रहा ।
पातक लगेगा पार्थ ने सोचा, समय था जा रहा—
संताप द्विज के हृदय का बढ़ता न जाये यो कहीं ।
दे दें मुझे अभिशाप औ' दारुण व्यथा भोगूं कहीं ।।

क्या लाभ होगा अन्त में गायें अगर मिल भी गईं ।
काया अगर द्विज की विशद् संताप में यों घुल गई ।।
अब चाहिये गायें छुड़ाना समय के रहते हुए ।
बीता समय इस भाँति तो फिर, प्राण प्रण दोनों गये ।।

पर थी बड़ी अड़चन कि कृष्णा थी युधिष्ठिर साथ में ।
यों धर्म की आज्ञा न पा सकते तुरन्त इस बात में ।।
औ' शस्त्र उनके द्रौपदी के पास थे भण्डार में ।
इससे लगे वे सोचने कुछ देर, समझें सार में ।।

× × ×

"धैर्य तनिक धरिये तो द्विजवर लो, मैं जाता हूँ तत्काल ।
धेनु छुड़ा कर सब लाता हूं" बोले अर्जुन वीर विशाल ।।
अभय मिला ब्राह्मण को क्षण हित, लगा मिटी विपदा सारी ।
लेने अपने शस्त्र महल में आये पार्थ धनुर्धारी ।।

जहाँ बैठकर धर्मराज थे करते उस क्षण आयोजन ।
राज्य-व्यवस्था, प्रजाजनों के हित का, था उनको चिन्तन ।।
विनिमय करने निज मंत्रों का, बैठी थी कृष्णा उस ठौर ।
थी गँभीर चिन्तना होती इससे वहां नहीं था और ।।

होकर उपस्थित धर्म सम्मुख पार्थ ने सत्वर कहा।
"दल तस्करों का विप्र की गायें हरे ले जा रहा॥
अब दीजिये आज्ञा मुझे उस ओर जाने को कहें।
गायें दिलाऊँ छीनकर, अपयश न हम जग में सहें" ॥

तब पार्थ ने आदेश कृष्णा को दिया तत्क्षण वहां।
"लाओ उठा सत्वर सभी आयुध धरे हों जो जहां" ॥
बोले युधिष्ठर से पुनः "यह कौरवों की चाल है।
जो ले गये यों चोर अपने विप्र का गो माल है" ॥

नृप ने कहा "प्रिय बंधु आज्ञा है तुरत ही जाइये।
वे क्रूर जन सम्मुख हमारे बाँध कर ले आइये ॥
जो नृप नहीं सुनता प्रजा की प्रार्थना दरबार में।
है योग्य शासन के नहीं वह पतित इस संसार में ॥"

लाकर दिये तब द्रौपदी ने अस्त्र अर्जुन को सभी।
बोले जिसे पा पार्थ "राजन आ रहा हूँ मैं अभी" ॥
गायें छुड़ा और कर व्यवस्था पार्थ नव उत्साह से ।
सादर मिले आकर तुरत ही धर्मधारी नाह से ॥

"महाराज तव आदेश का पालन किया मैंने सभी।
अब चल रहे हैं कार्य सारे राज्य के समुचित अभी॥
निज देश की जनता मुदित मन कर रही गुण गान है।
राजा तथा शासन प्रथा का हो रहा सम्मान है॥

कर्तव्य रहता शेष पर कृपया सुने मम बात को।
आशा मुझे है याद होगा नियम वह प्रिय तात को॥
की घृष्ठता मैंने दिया आदेश कृष्णा को वहाँ"।
जब कर रही थी कार्य वह सँग आपके बैठी तहाँ॥

सुन कर वचन यों पार्थ के नृप धर्म तनिक मलीन हो।
बोले "रहे प्रिय बन्धु तुम प्रतिपल नियम-जल मीन हो॥
इस हेतु आया ध्यान तुमको नियम का यह ठीक है।
पर धेय को पहिचानना भी न्याय की सुचि लीक है॥

अर्जुन नहीं अपराध तुमसे कुछ हुआ वह कार्य था।
ऐसे समय आना तुम्हें भाई बहुत अनिवार्य था॥
यदि हो गया है भ्रम तुम्हें, तुमने अनियमित बात की।
तो मैं बड़ा हूँ मानकर देता क्षमा अपराध की"॥

सहसा हुआ यह ध्यान कृष्णा को कि आया उचित क्षण।
अब कंत हों मेरे विदा लें पूर्ण कर सवेक्षण॥
यद्यपि गया उसका हृदय हिल, कर विरह की कल्पना।
पर हेतु लख कर राज्य हित, वह कष्ट पाई स्वल्पना॥

यों सोच कर बोली तभी नृप धर्म से अति नम्र हो।
"हैं नीतिविद महाराज दें आदेश जो शुभ कर्म हो॥
यदि नियम की निष्ठा स्वयं नृप यथा जाता भूल है।
तब मान्यता उनको प्रजा से प्राप्त हों यह भूल है॥

आशय प्रिया का जानकर मांगा तुरत प्रिय बंधु से—
आदेश जाने के लिए—तत्काल ममता-सिंधु से ॥
लखकर विवश यों स्वयं को आदेश देना ही पड़ा—
ममता विभोरित धर्म को, कर्त्तव्य हित, कर मन कड़ा ॥

निज राज्य औ' परिवार के सब भद्रजन से भेंट कर।
प्रस्थान अर्जुन ने किया, अनुकूल अवसर देखकर ॥
"बारह बरस को प्राण जाते हो सुतनु को त्याग कर।"
कह विरह व्याकुल द्रौपदी ने चरण पकड़े भाग कर ॥

थे पार्थ भी आकुल व्यथा सहलें न इतनी शक्ति थी।
कर्त्तव्य था उस ओर तो इस ओर कृष्णा-भक्ति थी ॥
तब स्वयं कृष्णा ने कहा "हे प्राणधन ! अब जाइये।
निज कार्य कीजे पूर्ण औ' निश्चित अवधि घर आइये ॥"

## अर्जुन वनवास

बारह वर्षों के हित् अर्जुन चले त्याग निज छाया को।
यों कि चलें ज्यों प्राण, बना निर्जीव मूकवत काया को ॥
जन साधारण को बस इतना विदित हुआ, इनको बनवास।
समय कटेगा पार्थ वीर का सभी पुण्य तीर्थों के पास ॥

प्रथम पार्थ ने पूर्व दिशा में नागराज से मेल किया।
उसकी कन्या से अनचाहे स्नेह-प्रेम का खेल किया ॥
तब आये मणलूर जहाँ की चित्रांगदा कुमारी थी।
वरा उसे सानन्द राज्य की सीमा यों विस्तारी थी ॥

दृढ़ कर उत्तर और पूर्व की सीमा पार्थ गये दक्षिण ।
पाया सभी नृपति को उनने अपनी और खड़ा उस क्षण ।।
अंधक और वृष्णियों की सेना विशाल बलशाली थी ।
जिसके बल पर पश्चिय में सत्ता उनने फैलाली थी ।।

कृष्णचन्द्र की बहिन शुभद्रा जो उस काल कुमारी थी ।
हुआ पार्थ को विदित हृदय से वह उन पर बलहारी थी ।।
सोच समझ कर हरी सुभद्रा वासुदेव की आज्ञा से ।
किया प्रणय व्यवाहर पार्थ ने इस विधि उस सौभाग्या से ।।

## पुनर्मिलन

इस भाँति बारह वर्ष घूमे पार्थ तज घरबार को ।
इस अवधि में जो कुछ हुआ है याद वह संसार को ।
सम्बन्ध नृप-कुल से बढ़ाया पार्थ ने सम्मान से ।।
औ' भेद भी जाना सभी का राजनैतिक ज्ञान से ।।

लौट स्नेह से मिले पार्थ निज माता और सहोदर से ।
बीत गया था पूरा युग ही निकले थे वे जब घर से ।।
देखा नहीं वहां कृष्णा को, मन में सोच हुआ भारी ।
क्यों न वहां आई मिलने बह विस्मित हुआ धनुर्धारी ।।

कुशल क्षेम पूछा कुल का औ' हाल स्ववं का बतलाया ।
जान सुखी सानन्द सभी को मन में प्रेम उमड़ आया ।।
"कृष्णा कहाँ" पार्थ ने पूछा नकुल नहीं वह क्यों आई ।
बोले "थी तो अभी महल में नहीं खबर होगी पाई" ।।

"हुई न उसको अभी सूचना" पूछा तभी धनंजय ने ।
थे सहदेव चाहते कहना, रोक दिया उनको भय ने ।।
समझ गये सब मर्म हृदय का आये जहाँ द्रौपदी थी ।
देखा है अत्यन्त अनमनी कोप-भवन में रोती थी ।।

"प्रिये ! प्राणाधार आ गया काम सभी पूरा करके—
था जिसका आदेश तुम्हारा" बोले पार्थ तनिक बढ़के ।।
किया विनम्र प्रणाम, चरण छू बात न कुछ वह कह पाई ।
झरने लगी अश्रु धारायें करुणा हृदय उमड़ आई ।।

सूखे उसके ओठ लटें बिखरी, मन धनी निराशा थी ।
बोली धैर्य्य प्रेम से सादर "नाथ न ऐसी आशा थी ।।
बारह जन्म समान बिताये मैंने ये वियोग के साल ।
किन्तु जान पड़ता है तुमने भुला दिया मुझको तत्काल ।।

कहाँ तुम्हारीं सभी प्रेयषी जो तुम पर बलिहारी हैं ।
जिनकी रूप मोहनी में फँस मेरी याद बिसारी है ।।
होती पहली गाँठ बांधकर दूजी अनजाने ढीली ।
नाथ दिया यह कष्ट" कहा कृष्णा ने कर आंखें गीली ।।

"जीवन धन मैं यही चाहती रखना मुझे चरण दासी ।
सेवा का अधिकार रहे बस नहीं और सुख की प्यासी ।।
मुझे भान यदि हो जाता प्रिय सुधि मेरी बिसरा दोगे ।
चाहूंगी चिर स्नेह प्राण ! तुम मुझे यथा ठुकरा दोगे ।।

तो कीजे विश्वास न मैं होने देती आँखों से दूर।
मेरी स्नेह डगर में स्वामी तुमने बोये क्रूर बबूर" ।।
रुंधा कण्ठ कृष्णा का तत्क्षण अधिक न वह कुछ कह पाई।
स्नेह आर्द्र हो तभी धनंजय की आंखें जल भर लाईं ।।

थी करुणा कृष्ण की दारुण पार्थ न कुछ थे कह पाते।
जितना करते यत्न सोचने का उतना ही दुख पाते ।।
"प्राण ! न मानो विलग" कहा यह "मेरी ओर निहारो तो।
समझो है कल्याण, बात जो बीती उसे विसारो तो" ।।

उसी समय नव वधू सुभद्रा को माता कुन्ती लाई।
छू कर चरण कहा कृष्णा से "सेवा हित दासी आई ।।"
वासुदेव की बहिन सुभद्रा खड़ी देख अपने सम्मुख।
उठी हृदय से लगा लिया उसको भूली सहपत्नी दुख ।।

## पारिवारिक सुख

कहते हैं, प्रभु दीनबंधु हैं और बड़े ही दानी हैं ।
जब देने को भुजा बढ़ाते करते तब मनमानी हैं ।।
राज्य मिला, सुख वैभव पाया औ' कुटुम्ब था श्रेष्ठ बना ।
सभी हितैषी और मित्र गण देते थे सम्मान घना ।।

पुनः देख सम्पन्न पाण्डु-सुत आये व्याह हेतु प्रस्ताव ।
धर्म, भीम, माद्री सुत दोनों, व्याहूँ था कुन्ती को चाव ।।
"व्याहे अब तक पार्थ-द्रौपदी और सभी तो क्वांरे हैं ।
योग्य व्याह के हेतु धर्म ये सारे बंधु तुम्हारे हैं ।।"

दिया उचित आदेश जननि ने, देश काल कुल रीति विचार ।
धर्म, भीम, सहदेव, नकुल, हित चुनी योग्यतम कन्या चार ।।
होता अति आनन्द नगर में नित नूतन उत्सव होता ।
पुत्र-स्नेह की उज्ज्वल धारा में कुन्ती लेती गोता ।।

सभी भाँति लख योग्य 'देविका' व्याही गई 'धर्म' के साथ ।
सुत जन्मा यौधेय रही थी कीर्ति-पताका जिसके हाथ ॥
महाभीम को, विधि विधान से, बलंधरा का दान हुआ ।
काशीपति की कन्या थी, जिससे 'सवर्ग' बलवान हुआ ॥

मिली 'करेणुमती' साथी बन 'नकुल' महा रणधारी से ।
जन्मा था 'निरमित्र' पुष्प सम इस सुन्दर फुलवारी से ॥
विजय समान मिली 'विजया" 'सहदेव' वीर को प्रिया-सुअंग ।
और 'सुहोत्र' रूप में जाना, जग ने इन दोनों का अंग ॥

एक ओर, था किया भीम ने ब्याह हिडम्बा से वन में ।
जन्मा वीर घटोत्कच जो रहा सदा मामा घर में ॥
गये राजनैतिक सर्वेक्षण हित जब पार्थ निकल घर से ।
किये उन्होंने तीन व्याह थे वहाँ नृपति-कन्याओं से ॥

चित्रांगदा उलूपी हर दम रही पिता के ही संग में ।
कभी नहीं अर्जुन को भूली वे अपने उस जीवन में ॥
भगिनी थी वह वसुदेव की, जिसे हरा अर्जुन इक दिन ।
नाम सुभद्रा अचल सुहागिन रही साथ उनके सब दिन ॥

पाँच सुतों की हुई सुमाता, कृष्णा भी धीरे धीरे ।
प्रतिविन्ध्य और सुत सोम तथा श्रुतिकीर्ति मिले मोती हीरे ॥
शतानीक, सुतसेन, सुसुन्दर, चमके जग में ज्यों तारे ।
ठुमुक ठुमुक चलते लघु बालक पैजनियाँ सब पग धारे ॥

देवि सुभद्रा से अभिमन्यु जन्मे, बाजी शहनाई ।
दिया नृपति ने दान प्रजा की सुख सम्पति थी अधिकाई ।।
राजभवन के नन्हे मुन्ने, सब का मन हर लेते थे ।
देख खेलते सभी बालकों को, पालक सुख लेते थे ।।

हुआ मुग्ध अति सब का तन मन, नित नवीन इन फूलों पर ।
कभी खिलाते, कभी बुलाते, कभी झुलाते झूलों पर ।।
कोई कन्धों पर ले उनको नाच-गान करने लगता ।
बाजा बजा बजा कर कोई बालक सब का मन हरता ।।

देख बाल क्रीड़ायें करते इन बच्चों को आँगन में ।
कृष्णा तथा अन्य मातायें, कुन्ती-संग खिलती मन में ।।
कभी दिखलाती चन्दा मामा कभी गिनाती तारों को ।
कह कर कभी कहानी सुन्दर दुलरातीं सब बारों को ।।

चहल पहल रहती महलों में, इन बच्चों से सदा बनी ।
सभी दास दासी ले उनको, करते क्रीड़ा नित्य घनी ।।
बना हुआ था महल स्वर्ग कृष्णा का, वह सुख पाती थी ।
खिला पिला कर उन्हें सदा अपने ही संग सुलाती थी ।।

× × ×

जैसे तनय सब द्रौपदी के, कृष्ण का भगिनेय भी ।
था माँ समझता द्रौपदी को, माँ न माँ मानी कभी ।।
धात्री समझता था सुभद्रा को न माँ समझी कभी ।
कहता "हमारी हो तती[१] मुझको मिथाई[२] दो अभी" ।।

१. चाची
२, मिठाई

पाता न जब वह कुछ कभी देता उन्हें था धमकियाँ।
करता शिकायत द्रौपदी से भर अनेकों सिसिकियाँ॥
औ' था गले से लिपट जाता देख कर उसको सदा।
था नयन तारा अति दुलारा सुख सहारा सर्वदा॥

तब द्रौपदी लेती लगा उसको गले अति प्यार से।
हँसतीं सभी जब पा मिठाई, रीझता मनुहार से॥
पर था न खाता वह अकेले भाग कर जाता वहाँ—
सब अन्य उसके बन्धु होते, साथ ले खाता तहाँ॥

निज गुरुजनों के मान का उसको सदा ही ध्यान था।
उठ कर सवेरे वह सदा करता विनम्र प्रणाम था॥
नृप चाहते थे जो कभी कहते कि ,मन्यू आ यहाँ।
जा कह अभी माँ से कि मुझको चाहिये क्या औ' कहाँ॥

था भाग कर जाता तथा मां के गले से लिपट कर।
कहता करो यह काम ताऊ ने कहा है, डाँट कर॥
यदि देर हो जाती कभी कुछ औ' न होता काम था।
रहता खड़ा कहता बराबर, दीखता अभिराम था॥

सब देख उसके रूप को थी मोह जाती प्रेम में।
औ' बोलतीं वे किस तरह रख ले उसे निज नयन में॥
तब द्रौपदी कहती 'सिपाही सख्त है, नटखट बड़ा।
इसको न राखो नयन में, शासन सदा करता कड़ा॥

यदि छिप गया यह नयन में बाहर निकल सकता नहीं ।
सब देखकर बातें हमारी कह न दे उनसे कहीं ॥
,मन्यू बता क्या तात से कहता हमारी बात है ।
है कौन अच्छा सच बता मैया कि तेरा तात है' ॥

मया न अच्छी तात हैं, हाँ तात अच्छे हैं नहीं ।
दोनों कभी अच्छे बताता और दोनों को नहीं ॥
सब देख उसकी यों चपलता प्रेम में लवलीन हो ।
करती विनोद सदा सभी, शिशु-प्रेम में तल्लीन हो ॥

कृष्णा मगन सारे सुतों के स्नेह में इस भाँति थी ।
वह जानती ना, दिन हुआ कब और कैसी रात थी ॥
कह तोतली वाणी सभी जाते लिपट उससे सदा ।
रहती उन्हीं के कार्य में रत, निश दिवस मंगल मुदा ॥

अभिमन्युयुत छः सुत स्वयं के, चार चारों शेष के ।
कृष्णा मगन रहती सदा यह बाग सुभित देख के ॥
ताली बजाता एक तो था दूसरा रोता खड़ा ।
था दौड़ता यदि एक तो दूजा हिंडोले में पड़ा ॥

नित गीत गाती वह नये उनको सुलाने के लिए ।
चुनती अनेकों नाम, रुचि कर जो, बुलाने के लिए ॥
बालक यही सब जानते बस मां सभी की एक थी ।
सबको समान सुनेह दे, यह द्रौपदी की टेक थी ॥

जब गोद में थी एक लेती, सरक पड़ता अन्य था।
कोई स्वयं चलता, पकड़ उंगली निकलता अन्य था।।
आकर तभी कहता बड़ा, मां भूख है मुझको लगी।
लख नींद में शिशु अन्य वह रहती खड़ी मानो ठगी।।

कहता न कोई देखकर हैं और मातायें यहाँ।
बालक वहाँ होते, कि होती द्रौपदी जिस क्षण जहाँ।।
कहती कथायें वह पुरातनकाल और पुराण की।
देती उन्हें शिक्षा करो रक्षा सदा सम्मान की।।

जब पठन-पाठन हेतु से, सारे सयाने हो गये—
विद्या उपार्जन के लिए, विद्या निकेतन में गये।।
पायी सभी शिक्षा कि जिसका धेय नव उत्कर्ष था।
करती निरीक्षण द्रौपदी, शिक्षण परम आदर्श था।।

विद्या विनय चातुर्य में था, एक दूजे से परे।
रण की कला में कुशाल सब थे, वीरता तन में भरे।।
यों देख उनकी शूरता औ' भद्रता व्यवहार में।
अत्यन्त थे पाण्डव सुखी–संतुष्ट हृदयागार में।।

कुन्ती सदा रहती मगन सुख देख कर परिवार का।
थे प्राप्त उसको सुख सभी व्यवहार जो संसार का।।
आदर सभी देते उसे आज्ञा सदा थे मानते।
संसार में बस मातृ को ही परम पूज्या जानते।।

इस भाँति श्री हरि की कृपा से स्नेहमय संसार था।
हर दृष्टि से सुख का यहाँ पर अन्यतम् भंडार था॥
परिवार था इतना बड़ा लेकिन न तनिक विरोध था।
सुख से समय था कट रहा किंचित नहीं, गतिरोध था॥

## रा्‌ य यज्ञ

अनुभव सुनाया था यथाविधि पार्थ ने नृप धर्म को।
विस्तार से ना गोप राखा आदि से गुह्य मर्म को॥
आग्रह किया विश्वास दे नृप राजसूय कराइये।
निज कीर्ति को सानन्द अब ब्रह्माण्ड में फैलाइये॥

सुनकर किया संकल्प राजा युधिष्ठिर ने उस समय।
विधिवत करूँगा यज्ञ यह उनने कहा होकर अभय॥
'होती प्रथम सीढ़ी प्रजारंजन सदा शुभ यज्ञ की।
वैरी विहीन नरेश सम हो ख्याति नृप धर्मज्ञ की'॥

दिग्-विजय की सब बन्धुओं ने कृष्ण के आदेश से।
होकर अजित लाये महाधन-द्रव्य कई नरेश से॥
थी उचित शासन की व्यवस्था पूर्ण जन पद था सुखी।
जब थे सुखी सब कर्मचारी, क्यों प्रजा होती दुखी॥

था शंक कंक तुषार [१] से सम्राट का आदर मिला।
कोठार थे परिपूर्ण 'वाल्हिक' चीन से जो धन मिला॥
सिंहल नृपति आये स्वयं उपहार में मोती लिए।
यों पाण्डु पुत्रों ने जगत के नृपति थे वश में किये॥

१. शंक कंक और तुषार भारत के बाहर रहने वाली जातियाँ थी।

अवसर उचित आया हुई अभिषेक की तैयारियाँ।
लख पाण्डुसुत–वैभव, सुयोधन को लगीं चिनगारियाँ॥
वह ड़ाह करने लग गया कारण बिना, महराज से।
औ' होगई ईर्षा उसे नृप—चक्रवर्ती साज से॥

## कपट द्यूत का खेल

अपमान औ' विपदा मिले इन पाण्डवों को भाव था।
लख सम्पदा उनकी दुखी था दुष्ट, क्रूर स्वभाव था॥
उन्नति सदा उसकी रहे, ना पाण्डवो की, लेखता।
था सूख जाता रक्त ज्योंहि पाण्डु-सुत-सुख देखता॥

यों देख निज सुत की दशा धृतराष्ट ने उससे कहा।
"परद्वेष कर्त्ता पुत्र! पाता मृत्यु जैसा दुख महा"॥
पर भी न माना दुष्ट अपने ही पिता की बातँ को।
जिस विधि मिले धन पाण्डवों का सोचता उस घात को॥

"सम्पत्ति सारी पाण्डवों की जीत मैं सकता अभी।
पाँसे बने जाली अगर, इसमें न संशय है कभी॥
मामा तुम्हारा मैं शकुनि हूँ द्यूत क्रीड़ा जानता।
लख पाण्डवों की शक्ति सम्पति हूँ महा दुख मानता"॥

व्याकुल बहुत था दुष्ट दुर्योधन इसी संताप से।
था चाहता धन लूटना छल से, कपट से, पाप से॥
सुन यह शकुनि की मंत्रणा संतोष कुछ उसको हुआ।
इस भाँति खोदा दुष्ट ने सबके लिए दुखप्रद कुँआ॥

विश्वास दे यों धर्म, को यह खेल केवल खेल है।
हैं खेलते परिवार के प्राणी न मन में मैल हैं॥
हो जीत अथवा हार कुछ गुरुता न मानी जायगी।
केवल क्षणिक अमोद की क्रीड़ा समझ ली जायगी॥

यह ग्रह कलह का मूल कपटी द्यूत खेला ही गया ।
इस भाँति सुख-आगार को दुख-सिन्धु में ठेला गया ।।
धर्मात्मा चाचा विदुर ने था उन्हे चेता दिया ।
भय था उन्हें मामा शकुनि, है चाहता अनभल किया ।।

बिलकुल न थे तैयार राजा धर्म जाने के लिए ।
अनुरोध था धृतराष्ट का यह बात चुभती थी हिए ।।
निज श्रेष्ठता की दी दुहाई शकुनि ने बढ़कर वहाँ ।
बोले युधिष्ठिर 'सहन की मैंने चुनौती कब कहाँ" ।।

पा यों नियंत्रण खेलने हित पाण्डु सुत आये वहाँ ।
करने कपट छल आदि बैठे थे लुटेरे खल जहाँ ।।
कर के विवश यों नृपति को खेला गया उस खेल को ।
शुचि धर्म के विपरीत था घातक बना जो मेल को ।।

खेला जुये का खेल जो अति कपट से परिपूर्ण था ।
पर कुछ न समझा धर्म ने यह खेल छल परिपूर्ण था ।।
हारे युधिष्ठिर राज्य-धन वैभव तथा सब सम्पदा ।
निज सहित हारे बन्धु चारों औ' बुलाई आपदा ।।

जब रह गया कुछ भी नहीं अवशेष आये दाँव पर ।
तब कुटिलतम् प्रस्ताव आया शकुनिका उस ठाँव पर ।।
नृपवर युधिष्ठिर आप हारे अनुज के संग दाँव पर ।
बोला 'अजी अब, द्रौपदी को भी लगाओ दाँव पर ।।

निश्चय तुम्हारी जीत होगी द्रौपदी के दाँव पर।
वह खे रही तुम पांच को निष्ठामयी निज नाँव पर॥
संदेह इसमें कुछ नहीं वह मुक्त तुम सब को करे।
सौभाग्य से उसके तुम्हारी सम्पदा वापिस फिरे॥

सुन तो लिया समझे नहीं कुछ धर्म उसकी चाल को।
वे थे पुजारी सत्य के कैसे समझते जाल को॥
यों दाँव अन्तिम भी लगाया और हारी द्रौपदी।
दुष्कर्म ने निश्चित सभी सम्बन्ध की जड़ खोद दी॥

यों द्रौपदी के हारने पर, दर्प दुष्ठों का बढ़ा।
अपमान करने के लिए यह जाल था उनने गढ़ा॥
बोला सुयोधन विदुर से "अब द्रौपदी को लाइये।
सेवा करे दासी सरिस मेरे महल में, जाइये॥"

सुन विदुर बोले "मूर्ख ! क्या तुमको विदित यह है नहीं।
है पाँचाली राज रानी, भूल मत जाना कहीं॥
दुर्बुद्धि होकर हरिण तू क्यों बाघ को यों छेड़ता।
क्यों नष्ट होना चाहता है स्वयं, कुल क्यों मेंटता ?

बलवान थी भावी, मिटे शुभ कर्म सब तत्काल ही।
था नाचता दुष्कर्मियों के शीश उनका काल ही॥
प्रतिकार कर चाचा विदुर का सुयोधन ने यों कहा।
"प्रतिकूलकामी ! जा अभी उस द्रौपदी को ला यहाँ॥

आदेश पा आया बुलाने दास कौरव का वहाँ।
हो ऋतुमती वह द्रौपदी, बैठी अलग, रहती जहाँ॥
वृतान्त सब उसने कहा ज्यों धर्म हारे, मीत से।
औ' शीघ्र चलने के लिए आग्रह किया, भयभीत से॥

सुन कर बचन उस समय बोली द्रौपदी यह धैर्य से।
"जीता नहीं मुझको किसी ने, न्याय अथवा शौर्य से॥
इस पर अभी हूँ ऋतुमती मैं जा नहीं सकती वहाँ—
यों एक वसना, गुरु तथा नर श्रेष्ठ बैठे हैं जहाँ॥

मैं बात फिर उनसे करूँगी न्याय के आधार पर।
करना सभा से प्रार्थना मेरी, नियम-व्यवहार पर"॥
सुन तर्क कौरव नृपति उस क्षण लाल पीला हो गया।
यह युक्ति सुनना सुयोधन को गरल पीना हो गया॥

बोलावच न यों वज्रसम "अब न्याय क्या? किस बात का?
दासी हमारी है उसे संकोच क्यों? किस बात का?
करना पड़ेगा सब उसे जैसा कहूँगा जब कभी।
आज्ञा उलंघन कर नहीं सकती उसे लाओ अभी॥

आदेश यदि सुनती नहीं तो पकड़ कर लाओ यहाँ।
वह कर रही अपमान, दुःशासन स्वयं जाओ वहाँ"॥
दुर्मति दुःशासन से दुखी हो द्रौपदी ने यों कहा।
"सर्वस्व मेरा लुट गया, मर्याद-धन केवल रहा॥

व्यवहार आर्योचित नहीं मर्याद के प्रतिकूल है।
क्या ऋतुमती का सभा में जाना कहो अनुकूल है" ?
माना नहीं वह नीच धक्का दे पकड़ कर हाथ को।
बोला तड़प कर "द्रौपदी क्यों है बढ़ती बात को ?"

चोटी पकड़ निज हाथ में वह निर्दयी चलने लगा।
लख द्रौपदी की वेदना पाषाण भी गलने लगा॥
थी दया कुरु-कुल में कहाँ वे अहं पर आसीन थे।
थे क्रोध में पागल सभी पाण्डव, मगर आधीन थे॥

लाया दु:शासन द्रौपदी को खींच कर दरबार में।
बैठे जहाँ थे भीष्म, द्रोण, विकर्ण सोच विचार में॥
फिर लागत मारी द्रौपदी को, दुष्ट ने आवेश में।
गिर पड़ी भू पर वह विचारी मुख छिपाये केश में॥

पा कर पराभव इस तरह क्रोधाग्नि में जलती हुई।
बोली सभा से 'क्षमा दें सब भूल यदि उससे हुई॥
जो शास्त्र का उपदेश करते हैं वही गुरुजन यहाँ।
हैं देखते मुझ एक वसना को विवश व्याकुल यहाँ'॥

पर दुष्ट दु:शासन बराबर दे रहा था गालियाँ।
'दासी खड़ी है' कह बजाते क्रूर कौरव तालियाँ॥
कौरव-प्रमुख, मामा शकुनि औ' कर्ण को तज, भद्र जन।
थे सिर झुकाये मौन औ' निःप्राण थे उनके बदन॥

की प्रार्थना उसने पितामह, द्रोण औ' धृतराष्ट्र से ।
वर श्रेष्ठ औ' विद्वान जनसे, जो हुये थे काष्ठ से ।।
'अपमान क्या होता नहीं निज संस्कृति का आज है ।
सारी सभा के देखते अब लुट रही मम लाज है' ।।

फिर फिर कहा उसने 'सभी गुरुजन विचारे तो सही ।
क्या पार्थ पत्नी को युधिष्ठिर हार सकते यों कहीं ?
इस पर बड़ी यह बात हारे थे स्वयं नृप धर्म भी ।
अधिकार क्या था शेष उनका, सोचिये यह मर्म भी ।।

अब न्याय होना चाहिये सब न्याय कर्त्ता आप है ।
अन्यायियों को दण्ड दे शुचि धर्म-धर्त्ता आप है ।'
बोला नहीं कोई, दुखी सुत पाण्डु के भी मौन थे ।
बैठे सभासद् सभी ज्ञानी धीर विज्ञ सुसौम्य थे ।।

फिर अंत में कुछ सोच कर केवल पितामह ने कहा ।
"सौभाग्य शीला ! धर्म की गति सूक्ष्म होती है महा ।।
यह सत्य है तुमको युधिष्ठिर दे न सकते दाँव पर ।
पर द्रौपदी तुम तो निछावर एकता के भाव पर" ।।

अस्पष्ट उत्तर भीष्म का सुन मौन सारे हो गये ।
इक साहसी नर से न ये दुख उस समय देखे गये ।।
बोले विकर्ण तभी सभा से "न्याय कहता है यही ।
व्यसनी नृपति की बात रखना क्या उचित होता कहीं ?

राजा युधिष्ठिर ने गवाँई द्रौपदी दुर्व्यसन में ।
दृढ़ सत्य है निश्चय समझिये द्रौपदी के कथन में ।।
है यह अजित अब भी अतः सम्मान उसका कीजिए ।
अन्याय इसके साथ क्यों हो ध्यान इस पर दीजिये ।।"

## चीर हरण

होनी बहुत बलवान होती है अतः वह ही हुआ—
जिस हेतु भारत में महाभारत सरीखा रण हुआ ।।
तब दुष्ट राजा कर्ण ने अति क्रोध में तप कर कहा ।
"लो छीन सारे पाण्डवों के वस्त्र दुःशासन यहाँ" ।।

सुन पाण्डवों ने वस्त्र अपने राजकीय उतार कर ।
औ' मुकुट भू पर रख दिये ज्यों नृपति रखते हार कर ।।
अब द्रौपदी के वस्त्र हरने को दुशासन बढ़ गया ।
था जान पड़ता पाप का घट मुंह तलक था भर गया ।।

"कीजे इसे भी नग्न, कृष्णा को बड़ा अभिमान है ।
दासी हमारी है मगर करती बड़ा अपमान है" ।।
यह क्रूरतम् आदेश राजा कर्ण ने उस क्षण दिया ।
जिसने सभी सद्भावना की भींत को था ढ़ा दिया ।।

अति दुष्ट था दुर्बुद्धि दुःशासन, न थी ममता हिये ।
साड़ी पकड़ ली नीच ने अपमान करने के लिये ।।
गह चीर कृष्णा हाथ में लज्जा बचाने के लिये—
रोकर बिलखकर टेर करती थी सहारे के लिये ।।

कोई न सुनता बात उसकी मूढ़सम बैठे रहे ।
पर धन्य पाण्डव धैर्य जो दुख विषम यों सहते रहें ।।
देने लगा झटके अनेकों दुशासन अति नीच था ।
उसको न लज्जा भय रहा था नीच आखिर नीच था ।।

"हे देव ! विपदा में सहायक अब बनो, रक्षा करो ।
आई भयानक आपदा मुझपर, जगतपति तुम हरो ।।
अब धर्म सारा मिट चुका है पाप में सब लीन हैं ।
ये धर्म प्राण सुआर्य जनमन, स्वार्थ जल की मीन हैं ।।

इन कौरवों के पाप से मैं आज दुख अति पा रही ।
निर्दोष अबला आज भगवन यों सताई जा रही ।।
प्रभु न्याय इसका आप ही अब कीजिए हे भगवते ।
जिसका नहीं रक्षक उसे तुम त्राण दो हे जगपते ।।

सारी सभा के सामने प्रभु नग्न मैं की जा रही ।
जो हैं तुम्हारे ही सहारे लाज उसकी जा रही ।।
कर्तव्य अपना भूल बैठे सब गुणी नर आज हैं ।
इन न्याय प्रिय विद्वान सम्मुख नष्ट होती लाज है ।।

पाण्डव ! तुम्हें क्या हो गया क्यों मौन साधे हो यहाँ ?
रक्षा न करते लाज की है सो गया पौरुष कहाँ ?
क्या प्रण न तुम सब ने किया था सह न पाओगे कभी ।
अपमान यदि मेरा हुआ, जाने अजाने में कभी ।।

तुम मौन हो निःचेष्ठ हो, अपमान होते देख कर।
यदि कुछ नही करते तुरत तो जग हँसेगा आप पर" ॥
सुन दीन वाणी द्रौपदी की भीम आकुल हो गये।
पर नयन के संकेत से नृप धर्म कुछ समझा गये ॥

लख यत्न सारे ही विफल, औ' समझ कर स्थिति सही।
बोली विकल हो दीन वह "क्यों तू न फट जाती मही ॥
देती न क्यों मुझको शरण, मेरा सहारा क्या रहा।
हा ! धर्म मानव मात्र का इस भाँति है जाता बहा ॥

हे कृष्ण ! अब तुम हो कहाँ, मेरी तुरत रक्षा करो।
मैं शरण आई हूँ तुम्हारी, भक्त वत्सल दुख हरो ॥
प्रभु लाज की रक्षा करो औ' बात आपनी राखिये।
कीजे प्रयत्न स्वयं न मुख इन पाँडवों का ताकिये" ॥

लख दुर्दशा अपनी निबल के होश अब उड़ने लगे।
बेहोश हो गिरने लगी औ' हाथ थे उठने लगे ॥
इस भाँति करती प्रार्थना वह लीन हरि में हो गई।
सारी सभा के देखते कुछ बात अद्भुत हो गई ॥

यह नीति है जब तक स्वयं का बल बहुत हम जानते।
औ' महा बलशाली परम प्रभु को सहायक मानते ॥
तब तक न प्रभु कौतुक रचाते भक्त के हित सत्य है।
पर जब भली विधि शरण आता, दौड़ते है, तथ्य है ॥

था खींचता वह दुष्ट साड़ी, द्रौपदी भू पर पड़ी।
करने न पाया वस्त्रहीना, शक्ति यद्यपि की बड़ी।
समझे न कोई मर्म को यद्यपि सभी का ध्यान था।।
जो शक्ति से था जूझता, वह निबल का भगवान था।

हारा दुःशासन अन्त में भागा न बल तन में रहा।
तब ध्यान आया सभा को है सती में क्षमता महा।।
आशा मिटी अभिमानियों की सिर झुका अपमान से।
चाहा सुयोधन ने करे कुछ और तब अभिमान से।।

पर भीम गर्जन से सभा में भय निराशा छा गई।
बोला कड़क कर वज्रसम, "जैसी अवज्ञा की गई।।
अब सहन हो सकती नहीं जैसे सही है सर्वदा।
सब जानलें इन कौरवों पर आ रही है आपदा।।

तोड़ी न यदि जंघा कभी मैंने गदा से दुष्ट की।
तो प्राण तज दूँगा स्वयं, करता शपथ निज इष्ट की।।
पाकर खबर तत्क्षण सभा में गान्धारी आ गई"।
धिक्कार कर बोली "सभी की बुद्धि है क्यों खो गई"।।

उसने कहा धृतराष्ट्र से "महराज यह क्या हो रहा।
कुरू वंश का शुचि ज्ञान-रवि क्यों अस्त सहसा हो रहा।।
यों हो रहा व्यवहार उलटा, धर्म न्याय न रह गया।
घट पाप का मानों भरा औ' पुन्य का जल बह गया।।

लौटाइये धन धान्य सारा मुक्त सब को कीजिए।
जो कुछ अनर्थ हुआ सभी मिल, पूर्ति उसकी कीजिए॥
अपमान पाण्डव-द्रौपदी का है किया सबने यहाँ।
उसके लिये सच मानिये महराज मुझको दुख महा" ॥

बोले तभी धृतराष्ट्र होकर क्रुद्ध जेठे पुत्र से।
"रे मंदमति तू कर रहा व्यवहार निज दुर्बुद्धि से॥
अबला, तथा फिर द्रौपदी, के साथ यह व्यवहार है।
पापी तुम्हारे कर्म पर सौ बार ही धिक्कार है" ॥

बोले पुनः वे द्रौपदी से "पुत्रि धीरज धार तू।
है श्रेष्ठतम् सम्पूर्ण बहुओं में, न तनिक विसार तू॥
हे पांचाली ! मांग अब वर चाहती जो मांग ले।
दूंगा सभी कुछ मैं तुझे यह बात पक्की जान ले" ॥

सुन पांचाली ने कहा "वरदान इतना दीजिए।
नृप धर्म को भगवन् ! अनुज सँग मुक्त केवल कीजिए" ॥
"भद्रे ! न यह पर्याप्त है वर और आगे माँग तू"।
धृतराष्ट्र ने सादर कहा "संशय न मन में आन तू" ॥

उत्तर दिया सुन द्रौपदी ने "धर्म नाशक लोभ है।
हूँ क्षात्रकुल-उत्पन्न इससे याचना हित क्षोभ है॥
यदि मुक्त होकर पाण्डु-सुत सद्कर्म करते जायेंगे।
तब सत्य मानो तात ये सम्पन्न फिर हो जायेंगे" ॥

थे चकित सुन निर्भीक वाणी द्रौपदी की भीष्म भी।
बोले कि "कृष्णा सम नहीं नारी सुनी देखी कभी॥
जब क्रोध में हों जल रहे सुत पाण्डु औ' धृतराष्ट्र के।
जब छा रहे हों युद्ध-घन चारों तरफ निज राष्ट्र के॥

बन शान्ति की प्रतिमूर्ति कृष्णा ने रखा आदर्श है।
सम्पूर्ण मानव जाति को इसने दिया उत्कर्ष है॥
यह दु.ख सागर पार करने हेतु नौका है बनी।
सच है कि कन्या द्रुपद की यह बुद्धि की सच्ची धनी"॥

मांगी विदा बोले तभी धृतराष्ट्र राजा धर्म से।
वे अति दुखी हैं निज सुतों के इस तरह के कर्म से॥
उनने कहा "बेटा युधिष्ठिर तुम जगत के मीत हो।
करना प्रयत्न यही कि जिससे भाइयों में प्रीत हो॥

हो भावना अब शान्ति की बेटा यही है याचना।
मुझको तथा इस सुबल-तनया[1] को कभी न विसारना॥
हे तात! दुर्योधन निठुर है तुम क्षमा आगार हो।
करना सदा वह यत्न जिससे चिर सुखी परिवार हो॥

मैंने उपेक्षा थी करी अब तक समझ कर खेल है।
सोचो मनोरंजन तथा दुर्भाव का क्या मेल है?
पर यह न समझा था तमाशा सत्य माना जायगा।
नाटक मनोरंजक न रहकर द्वेष बाधा लायगा"॥

१. गांधार देश के राजा सुबल की पुत्री—गांधारी

सुनकर वचन धृतराष्ट्र के सारी सभा को सुख हुआ।
बोले सभी 'भूलो नृपति जो कुछ अभी तक था हुआ' ॥
इस भाँति शिष्टाचार से प्रस्थान पाण्डव ने किया।
पर भाग्य तो था चाहता विध्वंश का ताण्डव किया ॥

## पुनः द्यूत

फिर कर्ण दुर्योधन शकुनि ने यों कहा धृतराष्ट्र से।
'होगी न अर्जुन भीम को अब शान्ति दुर्व्यवहार से ॥
इसमें नहीं संदेह वे वैरी रहेंगे सर्वदा।
बदला चुकाने के लिए कटिबद्ध होंगे वे सदा ॥

अब एक बाजी खेल की फिर और होनी चाहिए।
जिसकी कि केवल एक ही यह शर्त्त होनी चाहिए ॥
जो हार जाये वह रहे बारह बरस घर छोड़ कर।
सब भाइयों के साथ, नाता राज, धन से तोड़ कर ॥

फिर वर्ष यों मिलकर बितायें एक, सब अज्ञात में।
पूरी तरह हों गुप्त वे, धोका न हो इस बात में ॥
औ' यदि पता कुछ चल गया, रहना पड़ेगा फिर उन्हें।
इस शर्त के अनुसार तेरह वर्ष तक यों ही उन्हें' ॥

जागी पुनः दुर्बुद्धि यों कुरुराज को सुत हेतु से।
आये युधिष्ठिर खेलने फिर द्यूत शकुनी धूर्त से ॥
फेंका गया पासा तभी जीता शकुनि क्षण मात्र में।
बारह बरस बनवास आया पाण्डवों के हाथ में ॥

था वर्ष एक उन्हें बिताना दूर थल अज्ञात में।
यह सब अनर्थ हुआ वहाँ बस बात ही की बात में ॥
बन को सिधारे पाण्डु-सुत निज राज्य वैभव छोड़ कर।
औ' साथ हो ली द्रौपदी सुख से तभी मुख मोड़ कर ॥

कुन्ती विदुर के घर रहीं पर धौम्य पाण्डव साथ थे।
पहुँचे प्रजाजन सब वहीं जिस ठौर उनके नाथ थे ॥
अनुनय विनय नृप ने करी अब लौट घर सब जाइये।
मुझ भाग्य-पीड़ित के लिए यों व्यर्थ क्यों दुख पाइये ॥

कुछ लौट आये किन्तु जिनका था सहारा कुछ नहीं।
नृप धर्म ने उनसे ठहरने के लिए सादर कही ॥
वह साथ ही है साथ जो सब समय औ' सादर सधे।
सुख के हिंडोले में उड़े तो विपद रस्सी में बँधे ॥

दानी पुरुष का मान रखते हैं स्वयं भगवान ही।
उपकार जो करता किसी का पुण्य-फल लहता वही ॥
रवि-शक्ति नृप ने प्राप्त की थी प्राण रक्षा के लिए।
इस भाँति अर्जित अन्न से द्विज औ' सभी प्राणी जिए ॥

राजा युधिष्ठिर ने तभी से व्रत लिया इस बात का।
पोषण करेंगे वे प्रथम आश्रित तथा निज तात का ॥
उपरान्त इनके भी करेगी द्रौपदी भोजन सदा।
जो कुछ तथा जितना मिले संतुष्ठ हो कर मन मुदा ॥

इस भाँति वन में थी बिताती समय कृष्णा मुदित मन ।
सात्विक विचारों से सुशोभित हो रहा था तन सुमन ।।
थे नित्य होते अपशुकुन उन कौरवों के राज में ।
होने लगी प्रतिपल कमी थी राज के सब साज में ।।

## द्रौपदी करुणा और कृष्ण प्रतिज्ञा

फैली खबर चारों तरफ यों पाण्डु-सुत वनवास की ।
सबने करी अति घोर निन्दा कौरवों के घात की ।।
आये खबर सुन कर वहाँ पर वासुदेव मुकुन्द भी ।
दी सान्त्वना उनने सभी को, शान्ति औ' आनन्द भी ।।

"हे कृष्ण ! उस दिन असित देवल ने सिखाया था मुझे ।
नारद परशुधर ने बताई बात थी ऐसी मुझे ।।
फिर कथन कश्यप का प्रभो ! मैं मानती हूँ उचित है ।
जो कुछ धरा पर दीखता वह आप का ही रचित है ।।

तुम विष्णु हो, हो जगत तारन, ब्रह्म अक्षर आप हो ।
हो विभु प्रभू, स्वर्गात्मा, सब के सभी कुछ आप हो ।।
तुम यज्ञ हो, यज्ञनीय भी, यजमान भी हो आप ही ।
हो सृष्टि कर्त्ता औ' महेश्वर, परमगति हो आप ही ।।

इस हेतु जीवन-भेद मैं तुमसे नहीं रखती कभी।
औ' जानती हूँ तुम सखा हो भूल ना करती कभी॥
दुख में यथा सुख में सभी दिन याद रहते आप हैं।
फिर बोलिये मेरी दशा पर आप क्यों चुप चाप हैं?

हैं पार्थ मेरे पति तथा पाण्डव बने रक्षक सभी।
पर ये न रक्षा कर सके मेरी सुनो बातें सभी॥
प्रण था अवश्य कि मैं सुरक्षित रहूंगी कर्तव्य से।
होगा न मेरा अहित क्षण हित किसी भी मनतव्य से॥

हूँ याज्ञसैनी, धृष्टद्युम्न की भगनि, पत्नी पार्थ की।
लाई गई थी आर्त यों मैं, बात थी सब स्वार्थ की॥
मुझ एक वसना, ऋतुमती, को देख उनको सुख हुआ।
विहँसा शकुनि औ' कर्ण, माधव! बोलिए यह क्यों हुआ?

अपमान ज्यों मेरा हुआ अब सोचिये क्या तथ्य है।
क्या कुलबधू हूँ भीष्म की, धृतराष्ट्र की, यह सत्य है?
पुरुवंश का प्रत्येक नर अन्याय के सम्मुख हुआ।
पर मौन थे अर्जुन वहाँ, यदुनाथ यह क्यों कर हुआ?

हूँ कुल बधू मैं पाण्डु की तनया-द्रुपद इक मात्र हूं।
मैंने न सोचा था कभी यों दुर्दशा की पात्र हूँ॥
क्यों दुष्ट ने मुझको घसीटा उस सभा के बीच था।
कोई न करता कर्म वैसा, दुष्ट वह अति नीच था॥

प्रिय पार्थ के नाते सखी मुझको न हो क्या मानते ?
मेरी हुई जो दुर्दशा उसको न तुम क्या जानते ?
सब हर लिया है राज्य-वैभव कौरवों ने पाप से।
क्या बात, जो ऐसी छिपी है पापियों की, आप से ॥

हैं वीर पाण्डव-सुत सभी, यह मानता संसार है।
पर पाप क्यों कर सहन करते ? धर्म का क्या सार है ?
थी ऋतुमती, लाई गई उस दिन सभा में जब वहाँ।
चोटी पकड़ मेरी दुशासन ने घसीटा था जहाँ ॥

अतिरिक्त अर्जुन भीम के हैं वीर मैं कब मानती।
अन्याय के सम्मुख लड़ेंगे बात यह थी जानती ॥
धारे हुये गाण्डीव थे पर पार्थ कुछ बोले नहीं।
अपमान का विष पान कर भी ये तनिक डोले नहीं ॥

धिक्कार है गाण्डीव को धिक्कार जीवन पार्थ का।
रक्षा न मेरी कर सके लाभ क्या है पुरुषार्थ का ॥
इनको नहीं हैं याद वे दिन जब छिपे परदेश में।
माँ सहित अपना उदर भरते ब्राह्मणों के वेश में ॥

विष भी दिया था भीम को संहार करने के लिये।
तन बाँध डाला गंग में था क्रूरता भर निज हिये ॥
ये बच गये, थी आयु इनकी, क्या नहीं अन्याय है ?
है जानता इस बात को यह देश औ' समुदाय है ॥

क्या वारणावत नगर में इनको जलाया था नहीं ?
कुन्ती सती के साथ में सबको मिटाया था नहीं ?
धिक्कार यह जीवन, सभी इन पाण्डवों का आज है।
हँसता जगत सारा मगर आती न इनको लाज है ॥

हे कृष्ण, दुःशासन पकड़ चोटी सभा के बीच था—
अपमान करता जानकर, औ' मुदित होता नीच था ॥
पर देखते चुपचाप ये टुक टुक वहाँ सारे रहे।
मुख पर जड़े ताले सभी के मौन व्रत धारे रहे ॥

है अब भरोसा आप पर रक्षा हमारी कीजिये ।
हो निकट सम्बन्धी हितैषी ज्ञान इनको दीजिये ॥
मेरी व्यथा पर आप क्यों देते न अब तक ध्यान हैं।
हो जायगी अब लुप्त मानवता मुझे यह भान है

प्रभु आप पर सब दृष्टि से अधिकार हूँ मैं मानती
सम्पन्न हो, धर्मज्ञ हो, कर्मज्ञ हो पहिचानती ॥
इस हेतु है अनुरोध रक्षा अब हमारी कीजिए।
प्रतिशोध की इस अग्नि को प्रभु आप शीतल कीजिए" ॥

यों प्रार्थना कर दीनता से द्रौपदी चुप हो गई।
सुन कर जिसे क्रोधाग्नि प्रजलित कृष्ण उर में हो गई ॥
"बोले कि जिन पर कुपित हो उन कौरवों की नारियाँ।
धोकर रहेंगी एक दिन सिन्दूर की शुभ धारियाँ ॥

कट जायगा वह शीश जो अभिमान से ऊँचा उठा।
ज्यों ही धनुष-शर पार्थ ने रण हित लिया कर में उठा॥
मैं सत्य कहता हूँ बनोगी राजरानी द्रौपदी॥
औ' शीघ्र कौरव-नाश की सुनना कहानी द्रौपदी॥

यह व्योम फट जाये, हिमालय रेत की ढेरी बने।
सागर बने मरुभूमि या मरुभूमि ही सागर बने॥
होगा कहा पर सत्य मेरा, टल नहीं सकता कहीं।
तुम देख लेना द्रौपदी इसमें तनिक संशय नहीं"॥

पा सान्तवना यों 'तुष्ट होकर दृष्टि डाली पार्थ पर।
औ' दृष्टि मिलते ही युगल जोड़ी खिली मन हर्ष कर॥
बोले धनंजय "द्रौपदी अब दुःख करना छोड़ दो।
अपनी निराशा को प्रिये विश्वास पथ पर मोड़ दो॥

जो कृष्ण कहते हैं कभी उसको सदा सच मानना।
ये सत्य है, इनके वचन को सत्य ही तुम जानना॥
आता समय शुभ एक दिन सबका जगत आगार में।
सब का समान समय नहीं रहता सदा संसार में"॥

सुन द्रौपदी का बंधु बोला "जो जनार्दन कह रहे।
वह सत्य होगा, भावनाओं में नहीं वे बह रहे॥
विश्वास है मुझको विजय होती सदा ही सत्य की।
इस, हेतु मानो बात अर्जुन-कृष्ण की, है तथ्य की"॥

मैं द्रोण को, औ' कर्ण को अर्जुन बधेंगे, मान तू।
प्रिय भीम, दुर्योधन, शिखण्डी भीष्म को यह जान तू" ॥
यों सान्त्वना दे द्रौपदी को, सब पधारे धाम को।
पर द्रौपदी रखती सदा थी ध्यान में इस काम को ॥

*

## क्रोध और क्षमा
### धर्मराज द्रौपदी संवाद

जो राज महलों में पली बनवास थी वह भोगती ।
पर पाण्डवों को कर सदा सेवा सुश्रूषा शोभती ।
था लक्ष्य उसका पाण्डु सुत पायें न कष्ट वहाँ कही ।
औ' इष्ठ भी अपना यहाँ पर, भूल ये जायें नहीं ।।

थी देखती वह जब कभी, पाण्डव दुखी हैं विगत पर ।
तब वार्ता आरम्भ करती धर्मयुत औ' सुखदतर ।।
यों भूलते वे विगत को कर्तव्य-पथ पर लीन हो ।
निष्काम कर्मों में लगन रखते यथा तल्लीन हो ।।

नित नित नई बातें सही सम्बन्ध जिनका कर्म से ।
कर्तव्य अपना मान कर थी पूँछती नृप धर्म से ।।
क्या सत्य है, है धर्म क्या, शुभ कर्म क्या, संसार में ?
क्या है उचित, अनुचित कहाता कौन ? विश्वागार में ।।

थे धर्म बतलाते सदा, सुनते सभी थे संग में।
उत्कृष्ट होती भावना उत्साह बढ़ता अंग में॥
मन में न उनके द्वेष की इच्छा तनिक होती कभी।
होतीं निरन्तर मनन से मन भावनायें शुभ सभी॥

दिन एक दुखद प्रसंग कौरव कर्म का था चल गया।
अन्याय पाण्डव-संग हुआ वह द्रौपदी को खल गया॥
बोली "बडे ही क्रूर है कौरव तरस खाते नहीं।
होती हमारी दुर्दशा नित दिन बुरे जाते नहीं॥

"मैं जानती थी चन्द्रमा से शान्ति लेनी चाहिए।
जल से जगत हित सीख, भू सम भार सहना चाहिए'।
रवि से मिले नित तेज, वायु सुशक्ति की दाता बने।
इस भाँति तप बल पर मनुज निज भाग्य निर्माता बने॥

संसार के सब प्राणियों से आत्म सम्बल प्राप्त हो।
निज दुःख हो सीमित सदा पर सुख जगत में व्याप्त हो॥
सम्पूर्ण प्राणी मात्र की सेवा परम सुख जानना।
जो कष्ट आये मनुज सेवा में उसे सुख मानना॥

हूँ पूँछती महराज मैं क्या श्रेष्ठ है बतलाइये।
प्रतिशोध करना या क्षमा का भाव अब समझाइये॥
थी जानती व्यवहार में दोनों सहज अनिवार्य हैं।
जिनमें न दोनों हैं सदा उनके बिगड़ते कार्य हैं॥

यदि है क्षमा ही उचित मानव के लिए सब काल ही ॥
तो जानिये मिट जायगी मर्याद-जन तत्काल ही ॥
हो पुत्र, पत्नो, मित्र, भाई, सुजन. सेवक जानिये ।
करता अनीति अगर कहीं तो शत्रु ही बस मानिये ।

अपमान करते है सदा देते दुसह दुख ताप जो ।
सब कुछ पराया हड़प भी, करते न तनिक विशाद जो ॥
सद्धर्म न्याय न जानते करते अनेकों पाप हैं ।
बोते कलह के बीज गुन अतिशय सुज्ञानी आप हैं ॥

जो क्रोध करते हैं सदा वे धर्म कब पहिचानते ।
निज स्वार्थ में लवलीन रहते, सत्य को कब जानते ॥
सोचे विचारे बिन किया करते सभी जो कर्म हैं ।
अन्याय करते हैं समझते कुछ न वे, क्या धर्म हैं ॥

उनसे न मिलता मान, पर अपमान होता सर्वदा ।
औ' हानि होती है सुनिश्चित, नष्ट होती सम्पदा ॥
संताप बढ़ता है हृदय का, द्वेष बढ़ता भाव में ।
जल-ईर्ष्या का सतत् बढ़ता, जीवनी की नाव में ॥

जो भ्रष्ट हैं उनकी जगत में वृद्धि होती है बड़ी ।
औ' मिल रही धर्मात्माओं को सजा, दिन-दिन कड़ी ॥
विपरीत होता क्यों जगत में कार्य राजन् आज है ।
मद में हुआ क्यों धन, धरा, के अन्ध आज समाज है" ॥

बोले युधिष्ठिर "युक्तियाँ देवी तुम्हारी प्रबल हैं।
पर क्रोध का आधार ले चलते वही जो निबल हैं॥
हैं पाप जितने भी जगत के क्रोध उनका मूल है।
यह क्रोध ही सद्भावना के मार्ग का दुख-शूल है॥

हो क्रोध के वश में पुरुष, करता अनेकों भूल है।
इस हेतु करना क्रोध सारे संकटों का मूल है॥
करता विनाश सुकार्य का पीड़ा बढ़ा तन में महा।
यह क्रोध सब कुछ क्षार करता, धर्म, यश, धन-बल यहाँ॥

क्रोधी समझता कुछ नहीं, अनजान है वह अन्त से।
सब कर्म करता मूढ़सम रह दूर उत्तम पंथ से॥
जो धुन समाई हृदय में बस डूबता उस भाव में।
कब सोचता फल प्राप्ति की वह, कर्म करता ताव में॥

यह जानकर सब तत्वदर्शी क्रोध से रहते परे।
सद्कर्म ही अधिकार है, इस बात को मन में धरे॥
होता उन्हें है राग द्वेष न तनिक ऐसा जान तू।
होती क्षमा की जीत प्रतिपल सत्य यह पहिचान तू॥

× × ×

क्षमा धर्म है, क्षमा यज्ञ है, क्षमा वेद स्वाध्याय है।
क्षमा ब्रह्म है, क्षमा सत्य है, क्षमा काल-अभिप्राय है॥
क्षमा स्वच्छता और शीलता, क्षमा विश्व धारण करता।
क्षमा बिना संसार न होता, बिना क्षमा सब कुछ रीता॥

सर्वोत्कृष्ट महान् गुरण जो नर क्षमा का जानते।
हैं कर वही सकते क्षमा, संशय न हम हैं मानते॥
जो लोक मिलते याज्ञनिक को, है परे उससे कहीं—
निर्वाण पद, मिलता क्षमा-आगार को, संशय नहीं॥

सब वेद-ज्ञाता तत्वदर्शी, कर्मनिष्टों को सदा।
मिलते अनेकों दूसरे ही लोक, कृष्णा सर्वदा॥
पर ब्रह्म लोक मिला उन्हें जो श्रेष्ठ यों माने गये।
सब देश काल तथा परिस्थिति में सुदृढ़ जाने गये॥

× × ×

भरे नहीं जो सद् भावों से क्रोध सदा भरते तन में।
सत्य-धर्म युत कार्य न करते, द्वेष भाव रखते मन में॥
हत् भागी तुम उन्हें समझना उन्हें ज्ञान कब होता है।
कष्ट सुजन उनसे पाते हैं, लाभ न उनको होता है॥

क्षमा भाव रखना निज मन में द्वेष नहीं मन में लाना।
सत्य धर्म कर्तव्य न्याय की मर्यादा पर मिट जाना॥
क्रोध कभी करना मत सीखो मान करो हर प्राणी का।
उंच्च भावना, सरल रहन, बस ध्यान यही है ज्ञानी का"॥

× × ×

सुनकर वचन यों धर्म के उसको प्रबोध नहीं हुआ।
मन में लगी वह सोचने हे दैव! इनको क्या हुआ॥
साहस बटोरा तुरत उसने और फिर कहने लगी।
मानोकि होकर विवश वह आवेश में बहने लगी॥

"राजलक्ष्मी कभी नहीं टिकती मैंने अनुमाना है—
केवल दया क्षमा से राजन ! तत्व, सभी का जाना है ।।
सरल भाव औ' सत्य नीति का दुर उपयोग हुआ करता ।
अनाचारियों के सँग राजन् भय बिन प्रेम नहीं सरता ।।

सब गुण से सम्पन्न आप हैं, धर्म-भाव रखते मन में ।
दया क्षमा औ' सत्य सरलता युक्त नियम सजते तन में ।।
आज्ञाकारी अनुज सभी हैं जिनके बल की थाह नहीं ।
सत्य धर्म कर्तव्य परायण है ये, रखते दाह नहीं ।।

हैं धर्मज्ञ, आपको कहती दुनिया बात सही जानी ।
धर्म प्राण हैं, धर्म ईश हैं, धर्म धीरता, भी मानी ।।
कहते हैं दुर्लभ निधि जग की याग्य सहोदर होता है ।
आप त्याग कर सकते उसका यदि न धर्मचर होता है ।।

जैसे रहती छाया आकृति संग धर्म ले रहते आप ।
कितनी भी अमूल्य निधि होवे, धर्म नाम पर तजते आप ।।
कभी नहीं द्वारे से लौटे योगी साधू संन्यासी ।
सबको तृप्त किया है सब विधि, खूब जानते जगवासी ।।

देव पितर अभ्यागत ब्राह्मण सबके प्रति हैं आप उदार ।
छोड़ा अक्षय राज्य आपने छोड़ा नहीं धर्म व्यवहार ।।
पर न समझने पाती हूँ मैं कैसे कपटी द्यूत हुआ ।
ठोकर खाई किन्तु न राजन् दूर जुए का भूत हुआ ।।

क्यों थी उल्टी बुद्धि उस घड़ी सभी जुए में था हारा।
अनुज और मुझको भी खोया राज-पाट खोकर सारा॥
देख दशा इस भाँति आपकी यही समझ में आता है।
विधि करता वह कार्य सदा जो उसके मन को भाता है॥

रक्षा जो स्वधर्म की करते, रक्षा करते वे अपनी।
रहे बताते सदा विद्वजन, थिर जब से है यह धरनी॥
पर मैं देख रही हूँ अपनी, धर्म नहीं रक्षा करता।
मुझे जान पड़ता है वह तो स्वयं पाप से है डरता॥

धागे से बांधे पक्षी या नाथे हुए बैल जैसे।
करते मानव कार्य सभी रुचिकर होते विधि को जैसे॥
बीच धार में पड़ा वृक्ष ज्यों कई थपेड़ें खाता है।
उसी भाँति मानव जीवन में निश्चित सुख-दुख आता है॥

राजन् सोचो आप तनिक तो दुर्योधन के सारे काम।
अवगुण सभी मिलेंगे उसमें किन्तु प्राप्त उसको धन धाम॥
होती उसकी जीत सदा ही इच्छा उसकी है रहती।
भय से या कर्तव्य भाव से दुनिया उससे है डरती॥

माता पिता और गुरु-पूर्वज उसके प्रति क्या कहते हैं?
उसके बुरे कर्म के कारण कष्ट नहीं क्या सहते हैं?
दया क्षमा संतोष आदि गुण वह कब निज मन में गुनता।
सदा उसे परद्रोह सुहाता बात किसी की कब सुनता?

लगता है ईश्वर नट सम है यह जग एक तमाशा है।
नित नव खेल करे मानव सँग यह उसको अभिलाषा है॥
दुनिया नाच रही है ऐसे कठपुतली नचती जैसे।
कहने को सारे स्वतंत्र पर पंख कटे पक्षी जैसे॥

कार्य और कारण निश्चित कर जग को दोषी ठहराता।
क्या करना है और नहीं क्या, कोई समझ नहीं पाता॥
माता पिता समान हृदय कोमल, ब्रह्मा का नहीं रहा।
भीषण उसका यह प्रहार मुझसे तो जाता नहीं सहा" ॥

× × ×

हत् प्रभ लखी यों द्रौपदी राजा युधिष्ठिर ने कहा।
"शिव शिव कहो, शिव शिव कहो, शंका हुई तुमको महा॥
है क्षणिक दुख-सुख जगत के आवेश में आना मना।
तुमने कहा जो कुछ, लिए है नास्तिक की भावना॥

× × ×

करता हूँ कर्तव्य समझ में धर्म कर्म जप तप औ' दान।
दुह लूँ इन्हे लाभ हित अपने ऐसा कभी न आया ध्यान॥
फल पाने की आशा से कर्तव्य न होता सुखकारी।
इसीलिए निष्काम भक्ति की कही गई महिमा भारी॥

केवल कर्म करो अपना औ' करो न फल की कुछ आशा।
मन से बचन कर्म से ऊँचा रहना सुख की परिभाषा॥
तुम्हें ज्ञात है मुनि वशिष्ठ, औ' व्यास शुक्र लोमस सारे।
नारद औ' मैत्रेय आदि के धर्म कर्म जग में न्यारे॥

हैं सम्पन्न सभी इतने वरदान शाप दे सकते हैं।
तीन काल की बात जानते दिव्य दृष्टि सुख लहते हैं।।
देवों से हैं श्रेष्ठ सभी, स्थान सभो का है ऊँचा।
शास्त्र रचे है रुचिर इन्होंने, धर्म भावना को सींचा।।

जो न बात ऋषियों की गुनता, पालन धर्म नहीं करता।
करता वेद शास्त्र की निन्दा धर्म मार्ग तज कर चलता।।
जन्म-जन्म तक शान्ति न पाता, उन्नति कभी न कर पाता।
सारे जीवन भर दुख पाता अन्त नरक को ही जाता।।

रजोगुणा ! आक्षेप न करना ब्रह्मा और धर्म ऊपर।
यदि कुतर्क हम करें धर्म पर तो प्रमाण क्या हो भू पर।।
निष्फल हो यदि धर्म कर्म तो घोर अँधेरा छा जाये।
प्रलयंकर आँधी सम अवगुण को भू का, मानव पाये।।

शाश्वत है यह नियम कर्म का फल मिलना आवश्यक है।
इसलिये निज धर्म कर्म का पालन ही सुख वर्धक है।।
ब्रह्मचर्य स्वाध्याय यज्ञ जप दान सहज फलदायी हैं।
तज दो नास्तिक भाव द्रौपदी ! हम सद् चित् अनुयायी हैं।।

अपने और बन्धु के उद्भव की गाथा को याद करो।
धर्म यज्ञ से तुम प्रकटी थीं पिछली बातें ध्यान करो।।
लाभ प्राप्त के हेतु कार्य हों नहीं सिखाता धर्म कभी।
यद्यपि लाभ धर्म ही से है, यश-धन देता धर्म सभी।।

यह मानो विश्वास धर्म कृत निश्चय शुभ फल दाता है ।
जला न पाती अग्नि उसे सागर कब उसे डुबाता है ॥
पाता आदर मान धर्म कृत चाहे यत्न करो काई ।
जो डाला है बीज खेत में उपजेगा फल बन सोई" ॥

ठिठकी नहीं द्रौपदी यह सुन बोली फिर साहस करके ।
थी गंभीर मुखाकृति उसकी याद दुखों की कर करके ॥
'हे नृपकुल में श्रेष्ठ आस्ता ईश्वर पर मेरी अविचल ।
देख आपको दुखी हुई थी मैं पागल हूँ, या विह्वल ॥

फिर भी है अनुरोध आपसे सुनें तनिक विनती मेरी ।
करना है जो कार्य करें हम तुरत, लगावें क्यों देरी ?
बीत चुका है वर्ष एक औ' काम न कुछ कर पाये हम ।
उद्यम का है मान, करें हम इसके लिए प्रयत्न न कम ॥

क्षमा धर्म औ' धैर्य वीरता मन निग्रह शुभकृत मानो ।
उचित दण्ड पापी को देना, तथा पराक्रम भी जानो ॥
नीति विनय औ' दण्ड अनुग्रह राज धर्म कहलाता है ।
मिलें न ये गुण जिस राजा में सदा कष्ट वह पाता है ॥

जिसने लेकर जन्म मातृ स्तन का पान किया होगा ।
है मेरा विश्वास कर्म हित उसने ध्यान दिया होगा ॥
अपना पापाचार पाप है, केवल यही न हम माने ।
उसका लखना, सुनना, अथवा, सहना सदा पाप जाने ॥

तिल में रहता तेल काष्ट में अग्नि समाई रहती है।
बिना किये उद्योग हमें यह नहीं दिखाई देती है॥
हठ स्वभाव वश अथवा कहिये दैव योग से पाया फल।
कीर्ति नहीं जग में फैलाता करता है निश्चत निर्बल॥

करते जो नर कर्म वही फल पाते बात पुरानी है।
करते रहना कर्म प्रगति की केवल मात्र निशानी है॥
मन में निश्चिय कार्य सिद्धि हित, वल पौरुष का परिचायक।
रण में धनुष न रक्षक होता यदि न चढ़े उस पर सायक॥

देख दुष्ट का पाप अगर है कोई ध्यान नहीं देता।
पाता है अपकीर्ति सदा उसको युग मान नहीं देता॥
दुष्टों का उन्माद विश्व में दिन-दिन बढ़ता जाता है।
धर्म मार्ग का अवलम्बी नर कष्ट घोरतम् पाता है॥

अतः कीजिए कार्य दण्ड पावे अन्यायी नर जिससे।
होगा जग उपकार साथ ही हित होता अपना इससे॥
कर संदेह सफलता पर अपनी यदि बैठें हम निःचेष्ठ।
उचित न देंगे मान हमें जग के समस्त ज्ञानी नर श्रेष्ठ॥

होता साद्य, असाद्य कर्म भी, यदि साधा जावे श्रम से।
मैंने जैसी सुनी वृहस्पति-नीति, निवेदन की तुम से"॥
मौन हुई यह कह कर कृष्णा कहा भीम ने यों तत्काल।
"करें चढ़ाई हम कौरव पर लेकर सैना एक विशाल॥

करते है सत्पुरुष राज्य ज्यों वैसे राज्य करो भैया।
अर्थ धर्म औ' काम बिना चलती न कभी जीवन नैया॥
कौरव बल से जीत न पाये छला हमें पाँसे लेकर।
मैं तो कभी न शान्ति पा सकूँगा यों क्षमा उन्हें देकर॥"

किन्तु युधिष्ठिर ने समझाया "करी प्रतिज्ञा है मैंने।
एक वर्ष अज्ञात, वर्ष बाहर, बन-जीवन के सहने॥
कोई आवे कष्ठ प्रतिज्ञा भंग नहीं होने देंगे।
कर व्यतीत यह काल राज्य हम नियम निष्ठ बन कर लेंगे।"

पुनः कहा यों भीमसेन ने "जिसकी होवे आयु अनन्त।
सोचे वह इस भाँति या कि सोचे वह, जो हो द्विज या संत॥"
कही तभी महाराज युधिष्ठिर ने निराश होकर यह बात।
"कौरव दल पर विजय प्राप्त करना है कठिन बहुत ही तात॥"

## अस्त्रादि-हित यत्न

आये तब तक व्यास वहाँ पर और धर्म को समझाया।
"भीष्म, द्रोण औ' कर्ण आदि का व्यर्थ आप पर भय छाया॥"
गये लिवा एकान्त क्षेत्र में दिया धर्म को साहस दान।
'प्रति स्मृति' नामक विद्या का ऋषि ने उन्हें कराया ज्ञान॥

"मंत्र सिखाना यह अर्जुन को" दिया व्यास ने फिर आदेश।
देंगे उनको अस्त्र वरुण, यम, रुद्र, कुबेर और देवेश॥
अनुष्ठान के योग्य पार्थ है अतः वे करें यत्न अभी।
इस प्रकार तप से तुम सबकी होंगी बाधा दूर सभी"॥

हुआ सभी भ्रम दूर धर्म का और पार्थ से यह वृतान्त।
कहा बहुत समझाकर उनने काम्यक वन में पा एकान्त॥
" तात मंत्र यह व्यास दे गये मुझको, अति हितकारी है।
हुआ सिद्ध यदि कार्य समझ लो, सुधरी दशा हमारी है॥"

•

"भाई का आदेश और फिर सेवा सब अपने जन को।
तुरत करूँगा कार्य लगा कर बाजी अपने तन मन की" ॥
सुनी युधिष्ठिर ने प्रसन्न हो अपने भाई की बातें।
कृष्णा के नयनों में उमड़ी प्रिय वियोग की बरसातें॥

"प्राण ! हृदयपति !! निज चरणों की रेणु त्यागकर जाओगे ?
विपदा की मारी बेचारी को यह दु:ख दर्शाओगे॥
मैंने अब तक सभी दु:ख-कष्टों को हँस स्वीकारा है।
मुझे तुम्हारे साथ नाथ, विष भी अमृत की धारा है॥"

"प्राणवल्लभे, भूल न पाऊँगा अनुराग तुम्हारा मैं।
इस जीवन में, जीवन-धन समझो हूँ सदा तुम्हारा मैं॥
कोई भी मुझ से ले सकता प्रेयसि ध्यान नहीं तेरा।"
पिछली भूलों के कारण, हो दीन पार्थ ने, था हेरा॥

कहा पुनः अर्जुन ने कृष्णा से "मैं भूल न पाया हूँ।
तेरे अपमानों का बदला नहीं चुकाने पाया हूँ॥
मान हानि हित, मन भरने, औ' राज्य-पाट धन पाने को।
ऋषि आज्ञा से चला सुलोचनि द्विव्य-अस्त्र सब पाने को॥

मैं पाऊँगा अस्त्र, सुमुखि सब बिगड़े कार्य बनाना है।
अतः विदा दो हो प्रसन्न, मुझको निश्चय ही जाना है।।"
सुनी कंत की बात, कहा कृष्णा ने हृदय बना पाषाण।
"प्रियतम भुजबल बढ़े, यही हो सदा आपका धेय-विधान।।

क्षात्र वंश की शोभा तो बस राज्य-शक्ति से होती है।
स्वामी निर्बल, निरंकुश नर की कीर्ति नहीं कुछ होती है।।
केवल यही विचार शेष रख लूंगी ये विरहाकुल प्राण।
अपमानों का बोझ उतर जायेगा, जन पायेंगे त्राण।।"

वीर धनंजय गये हिमालय इन्द्रकील पर्वत ऊपर।
मिला एक तपसी तेजस्वी बैठा था उस क्षण भू पर।।
साहस निष्ठा से अर्जुन की हो प्रसन्न बोला तत्काल।
'स्वयं इन्द्र मैं हूं प्रसन्न तुम पर, अब शंकर करो दयाल'।।

तब अर्जुन ने किया मंत्र जप शिव का अस्त्र हेतु उस क्षण।
और प्राप्त की सिद्धि कि जिससे जीता उनने भीषण रण।।
शिव ने पशुपति अस्त्र दिया समझाये उसके भेद सभी।
हो कृतज्ञ अर्जुन ने पूजे शिव के पावन पद्म तभी।।

अन्तर्ध्यान हुए शिव शंकर औ' अर्जुन के मन भाया।
शेष अभी है कार्य कि जिसके हेतु यहाँ मैं हूं आया।।
प्राप्त किया यम-दंड, वरुण ने शक्ति-पाश भी दे डाला।
दिव्य अस्त्र पाया कुबेर से दिखने औ' छिपने वाला।।

---

अर्जुन को कुबेर ने अन्तर्ध्यान और प्रस्थापन कराने वाला दिव्य अस्त्र दिया था।

मातिल ने तब किया निवेदित देवराज का वह आदेश।
बुलवाया है इन्द्रदेव ने अर्जुन को अपने ही देश ॥
इन्द्र लोक पहुँचे यों अर्जुन करी इन्द्र ने अगवानी।
वहाँ पार्थ ने नृत्य-गीत की कला भली विधि पहिचानी ॥

## विरहाकुल कृष्णा

यद्यपि विदा किया कृष्णा ने स्वयं प्राण पति को निज हेतु।
किन्तु बहुत विपलव लाता था मन में प्रिय वियोग का सेतु ॥
क्षीण हो रही थी दिन प्रतिदिन उसकी गठी हुई काया।
लख थे दुखी सुबन्धु, धौम्य ने तभी धर्म को समझाया ॥

"भावुक कृष्णा का मन व्याकुल कंत विरह में है रोता।
तात मनुज अस्तित्व, भावना पर आधारित होता ॥
यद्यपि त्याग कष्ट की गाथा ही है भारत की नारी।
रह स्वामी के संग सहज सह लेती वह विपदा सारी ॥

पति वियोग में स्वर्ग सम्पदा भी उनको कब भाती है।
पति मुखचन्द्र चकोर बनी रहना ही उसकी थाती है ॥
इसीलिए महराज दुखित कृष्णा का मन बहलाने को।
सोचो किसी उपाय, कर्म या, सोचो किसी बहाने को" ॥

नृपति युधिष्ठिर मौन हो गये सुनी पुरोहित की जब बात।
व्याकुल होकर गिरे भूमि पर, पार्थ! पार्थ!! कहकर प्रिय तात ॥
"मैं हत् भागी भीषण दुख का कारण बना अरे भगवान।
सभी जानकर भी तो मैं हूँ अब तक बैठा बना अजान" ॥

व्याकुल थे यों धर्म मीन रहती जैसे जल के बाहर।
कौन बँधाये धीर उन्हें थे स्वयं उदात्तधीर नागर ।।
उनकी आकुलता लख कृष्णा ने ली छिपा स्वयं की पीर।
और धौम्य ने बहुत प्रेम से कहा "नृपति मत बनो अधीर" ।।

सम्मति दी नृप को सब मिल कर तीर्थों का स्नान करें।
महा ज्ञानधारी जन के संग बैठ सकल अज्ञान हरें ।।
पहुंचे पुण्य प्रयाग जहाँ पर बहती जगत तारनी गंग।
देखा पुष्कर औ' अवंतिका, कनखल तथा विदित भृगुतुंग ।।

पैदल हो जाते थे सारे साथ-साथ कृष्णा जाती।
करती सारी टहल खिला कर सबको तब थी वह खाती ।।
चलती इतनी दूर भूमि पर, यह अभ्यास न था उसको।
जो सोती थी सुमन सेज पर भू का शयन मिला उसको ।।

कभी सहन करती आँधी को कभी कड़ाके की गर्मी।
उसका यह तप देख चकित थे विप्र, सभी तपसी धर्मी ।।
थक कर चूर हो गई कृष्णा गिरी, गन्धमादन गिरि पास।
था भीषण तूफान शीत से लगी उखड़ने उसकी स्वाँस ।।

धर्मराज से कहा नकुल ने "कृष्णा का मुख हुआ मलीन।
भैया पार्थ विरह में इसकी दशा हुई है इतनी दीन।
आकुल है अब यह मिलने को अतः करो वह यत्न सभी।
जिससे धीरज बँधे याज्ञसैनी का औ' हों सुखी सभी ।।

तभी हुआ कुछ होश द्रौपदी को उसने धर धीर कहा ।
"महाराज मुझ हत्‌भाग्या के हेतु आपको खेद महा ।।
मेरे ही कारण यह विपदा आज आपको प्राप्त हुई ।
दुख तो यह है, दुखद कहानी अब तक भी न समाप्त हुई" ।।

बोले तब नृप धर्म "राजपुत्री क्या दोष तुम्हारा है ?
सच पूँछो तो तुमने सोया क्षात्र तेज ललकारा है ।।
तुम हो सबल चेतना कुल की, तुम ही युग की द्रष्ठा हो ।
लगता है अनिष्ठ नाशक कर्मों की तुम ही सृष्टा हो" ।।

यह कह उठे युधिष्ठिर सत्वर की चलने की तैयारी ।
लगे सोचने सब क्या चल पायेगी कृष्णा बेचारी ।।
कहा भीम ने "सभी जनों को स्वयं लाद सकता राजन ।
सोच लोक व्यवहार कर रहा हूँ मैं, निज सुत से याचन ।।

वह कृष्णा का भार उठाये और चलें हम उसके साथ ।
आशा है प्रस्ताव सुलभ यह स्वीकारेंगे कुल के नाथ" ।।
उचित यही है जान धर्म ने कहा 'हिडम्ब-पुत्र हेरो ।
लोक लाज मर्यादा के हित भीम पुत्र अपना टेरो' ।।

रहता वहीं कहीं बन में था वीर घटोत्कच बलवान ।
अपने पूज्य पिता का उसने लिया इस तरह सुन आह्वान ।।
माता सरिस द्रौपदी को उसने कंधे पर बैठाया ।
औ' आकाश मार्ग से नभचर बद्री आश्रम में आया ।।

---

बनवास के समय पाण्डव किसी की सहायता न लें ऐसी मान्यता थी अतः घटोत्कच को बुलाने के लिए भीम ने अपने भाई से अनुमति माँगी ।

लोमश ऋषि ने बड़े चाव से कथा पुरातन तब गाई।
जो रुचिकर थी धर्मराज को औ' कृष्णा को भी भाई॥
मिले व्यास भी तीर्थ राज पर बोले होकर प्रेम मगन।
"शुद्ध मानुषी वृत से कृष्णा, तुमने किया नियम पालन॥

जिस निष्ठा से तुमने अब तक निज कर्तव्य निभाया है।
उसका यश बेटी सुन लो इस भारत भर में छाया है॥
अपनी त्याग तपस्या के कारण तुम सबको भाओगी।
गाँठ बाँधलो बात शीघ्र तुम निज वैभव को पाओगी"॥

× × ×

उस ओर राजा इन्द्र से लेकर विदा अर्जुन चले।
अपने हितैषी इष्ठ मित्रों से मुदित मन आ मिले॥
की वन्दना कुल विप्र को औ' धर्म भीम चरण गहे।
भेंटे नकुल सहदेव से जिनने चरण उनके गहे॥

सब परम हर्षित हुए पाई द्रौपदी ने सान्त्वना।
फिर पार्थ ने सब से कहा जिस विधि करी थी याचना॥
आये वहाँ पर इन्द्र देने धर्म को आदर महा।
आशीष दे 'वन काम्यक में जाइये' इनसे कहा॥

आये तभी श्री कृष्ण मिलने सखा अर्जुन से यहाँ।
लख कर जिन्हें सब पाण्डु पुत्रों को हुआ था सुख महा॥
उनने सुनाया किस तरह शिक्षण सभी सुत का हुआ।
अभिमन्यु औ' अन्यान्य के सुन कर्म सबको सुख हुआ॥

ऋषि मार्कण्डेय थे वहाँ आये खबर सुन पार्थ की ।
उनने सुनाई मुदित मन गाथा वहाँ परमार्थ की ।
मुनि थे परम ज्ञानी, बिहंस बोले सभी से उस घड़ी ।
"निज शक्ति मद में धर्म तजना भूल होती है बड़ी ।।

बल प्राप्त करना ही न अपना धर्म होना चाहिए ।
नृप वर अलर्क महान की गाथा समझनी चाहिए ।।
हे पाण्डु कुल भूषण ! न टिकता है अधर्म कभी सदा ।
विश्वास है मुझको मिलेगी तुम्हें सब, श्री-सम्पदा ।।"।

उपदेश यों मुनि ने किया तब पांचाली ने कहा ।
'ऋषिराज शिक्षा आपकी है श्रेयकर निश्चित महा ।।
पर क्या न दें हम ध्यान हो अन्याय यदि भू पर कहीं' ?
हंस कर कहा ऋषि ने तभी 'बिलकुल नहीं, बिलकुल नहीं' ।।

## द्रौपदी-सत्यभामा संवाद

कहते सभी वह स्वर्ग है रहते जहाँ धर्मात्मा।
औ' नर्क थल उसको बताते हैं जहाँ दुष्टात्मा।।
मिलती न जब तक शान्ति, सुख भी मिल कभी सकता नहीं।
सुख से रहित जीवन नरक माना गया है सब कहीं।।

था स्वर्ग समही दीखना, काम्यक विपिन सब दिन तहाँ।
जब से सहित सब पाण्डवों के द्रौपदी रहती वहाँ।।
आते अनेकों थे वहाँ पर, ऋषि यती योगी सदा।
औ' दूर करते तम, हृदय का ज्ञान रवि से सर्वदा।।

आते रहे सब पाण्डवों के मित्र सम्बन्धी सगे।
दे सान्त्वना सुख हित वचन थे बोलते ममता पगे।।
प्रभु देवकीनन्दन पुनः फिर एक दिन आये वहाँ।
मिलकर उपस्थित व्यक्तियों से हर्ष-मन लाये तहाँ।।

थी सत्यभामा धर्मपत्नी श्रीकृष्ण की आई वहाँ ।
लिपटा लिया जिसको हृदय से, द्रौपदी ने चट तहाँ ॥
करने प्रफुल्लित मन गई वे बैठ तब एकान्त में ।
कुछ वार्ता के हेतु से, आवाभगत-उपरान्त में ॥

वे कुरु तथा यदुवंशियों की बात कर हँसने लगीं ।
कर एक दूजे को मगन आनन्द मन भरने लगीं ॥
फिर सत्यभामा ने चलाई बात ऐसे मर्म की ।
उत्तर बता जिसका बनी कृष्णा विदूषी कर्म की ॥

"सखि पूछती हूँ बात मैं, तुमसे तुम्हारे कर्म की ।
किस भाँति करती हो सुरक्षा तुम, तुम्हारे धर्म की ॥
ये लोक पालक वीर योधा, पाण्डु-सुत मुँह ताकते ।
करते जहाँ जो कार्य हैं, सम्मति तुम्हारी माँगते ॥

तुम पर कुपित कोई कभी मैं देखती होता नहीं ।
करते सभी सम प्रेम हैं अंतर न कुछ मिलता कहीं ॥
रहते सदा वश में तुम्हारे बात सब कुछ मानते ।
तुम हो बड़ी सौभाग्यशालिन प्राण सम हैं जानते ॥

लख कर तुम्हारा मान आदर है मुझे लगता यही ।
तुम सम न कोई और अबला विश्व में होगी कहीं ॥
तुम को मिला होकर बहू अधिकार कैसे सास का ?
रखना न मुझसे कुछ छिपा कर मान रिश्ता पास का ॥

स्नान, वृत, जप, तंत्र, औषधि, होम बूटी या जड़ी ।
जो हो कहो मुझ से करूंगी साधना मैं भी कड़ी ।।
है भेद इसमें क्या छिपा, क्या तुम बता सकतीं मुझे ।
पतिदेव मेरे कृष्ण भो यों मानते अतिशय तुझे ।।

वश में रहें ज्यों श्यामसुन्दर, मान मेरा वे करें ।
अवगुण बुराई दोष मेरे पति नहीं मन में धरें" ।।
कह सत्यभामा हो गई चुप, सोचने मन में लगी ।
मन-भावना उसकी समझ कर द्रोपदी कहने लगी ।।

"सत्ये ! न तुमने बात पूँछी, आचरण की आज है ।
यों पतिव्रताओं को न कुछ भी सोचने का काज है ।।
तुमने कुटिल नारी-विषय की बात पूँछी आज क्यों ?
शंका हुई किस बात पर क्यों भाव आया आज यों ।।

जिन नारियों का आचरण यों पतित-दूषित हो महा ।
उनके विषय में सत्यभामा ! जान मैं सकती कहा ।
यों प्रश्न या, शंका तुम्हें करना उचित लगता नहीं ।
हो पट्ट महिषी कृष्ण की तुम योग्य भार्या हो सही ।।

यदि स्वप्न में भी भान हो जाये कि औषधि, मंत्र से ।
है स्ववश करना चाहती पति को, यथा षड़यन्त्र से ।।
वह दूर कर देगा सहज उत्पन्न अपने दर्प से—
निज संगिनी को या अथवा डरेगा वह यथा डर सर्प से ।।

घर में नहीं है शाँति यदि पति-प्रेम, पत्नी में नहीं ।
फिर सुख भला कैसे मिलेगा, दुःख होगा सब कहीं ।।
इस कर्म से पति, नारि के वश में न हो सकता कभी ।
औ' शांति जीवन में न उसको प्राप्त हो सकती कभी ।।

होते अनेक अनर्थ ऐसे दुश्चरित आचरण से ।
औ' कष्ट पाती है सदा वे धूर्तता-अनुसरण से ।।
जन्तर तथा मन्तर बता, करते बहुत जप, योग हैं ।
औ' अंत में इस कर्म से उत्पन्न होते रोग हैं ।।

पुरुषत्व खो पति प्राप्त होते हैं बुढ़ापे को जभी ।
औ' रोग होते हैं जलोधर, कोढ़, जड़ता के सभी ।।
पत्नी पतित सब मान कर, खल, धूर्त, शठ की बात को ।
रहतीं सताती रात दिन निज प्राण-प्रिय के गात को ।।

पति सम नहीं है देवता सखि ! लोक या परलोक में ।
निर्णय सही मिलता यही है ज्ञान के आलोक में ।।
संतुष्ट है यदि देवता मिलती सदा सुख शांति है ।
विपरीत इसके दुःख है, होती नरक की प्राप्ति है ।।

सुख प्राप्त होता है नहीं, सुख से अटल सिद्धान्त है ।
सुख-साधना में दुःख है, सुख दुःख के उपरान्त है ।।
है स्त्रियों को सुख सदा केवल इसी मन्तव्य में ।
हों प्रेम, परिचर्या-सरलता औ' कुशल, कर्तव्य में ।।

पति जब पधारे गेह में प्रस्तुत रहे स्वागत करे।
सत्कार कर जल और आसन दे, मधुर भाषण करे॥
कर्कश वचन बोले नहीं ना क्रोध उपजाये कभी।
पालन करे आज्ञा स्वयं उठ, हर्ष दरसाये सभी॥

जो गुप्त बातें पति कहें सर्वत्र उसका ध्यान हो।
औ' प्रकट उसको दूसरों से ना करे यह ज्ञान हो॥
निज सुहृद्, प्रेमी, प्रिय, हितेषी पति जिन्हें हो जानते।
सम्मान दे उनको कि जिनको स्वयम् पति हों मानते॥

पति से सदा जो द्वेष रखते कपट भावों से भरे।
व्यवहार करते शत्रु-सम, शुभ-कामनाओं से परे॥
जो हों लगे अपमान निन्दा और पति क्षिति-धात में।
उनसे सदा ही दूर रहना चाहिए हर बात में॥

एकान्त में परपुरुष के संग में न बैठे वह कभी।
हो क्यों न विश्वासी महा, कहते विचारक यह सभी॥
व्यवहार अथवा स्नेह करना चाहिए उनसे सदा।
हों दोष रहित, कुलीन, पावन, सत्यभाषी सर्वदा॥

जो हों लड़ाकू, चोर, दुष्टा, क्रूर, पेटू, चंचला।
सर्वत्र उनसे दूर रखना चाहिए निज शृंखला॥
पति-मान द्वारा ही सदा सब नारियों की वृद्धि है।
सौभाग्य, यश, सम्मान मिलता, प्राप्त होती सिद्धि है॥

ज्यों आचरण करती स्वयं मैं, पाण्डवों के साथ में।
उसको बताती हूँ तुम्हें कह, भाव जो निज नाथ में॥
अनुराग होता है जिसे, पति के चरण में आदि से।
वह शृंखला कब टूट सकती, भावना-व्याधादि से॥

अर्धांगिनी हूँ पार्थ की मैं, जानता संसार है।
पर सास ने सौंपा मुझे सब पाण्डवों का भार है॥
मैं जानती हूँ नारियों का सुख सुरक्षित है तभी।
यदि स्वयं के सुख की न वे, चिन्ता किया करतीं कभी॥

मुझको मिला जो कर्म है निज पूज्यनीया सास से।
मैं पालती उसको सदा ही, मान से, विश्वास से॥
सेवा सदा सम पाण्डवों की सासु-शुचि मन्तव्य है।
जिसको निभाती मैं सदा ही मान यह कर्तव्य है॥

रवि, वैश्वानर, सोम सम, बलवीर, पति को मानती।
गन्धर्व, मानव, देव से, सुन्दर उन्हें हूं जानती॥
आसन बिछा स्वागत किया मैंने सदा ही गेह में।
बोली मधुरतम् वचन औ' डूबी उन्हीं के स्नेह में॥

छोड़ा प्रथम मैंनें सखी अपने हृदय का बेहम है।
फिर कामना औ' क्रोध छोड़ा त्याग जिसका विसम है॥
तज कर सहज अभिमान सेवा भाव में रखती सदा।
हँस कर सभी कुछ भोगती पति संग, दुख, सुख, आपदा॥

व्याही गई जब, तब मिला आदेश मुझको था यही ।
सब कार्य सम्पादित करूँ मैं, सास जो करतीं रहीं ।।
रख कर सुरक्षित एकता गृह की करूँ सब कार्य मैं ।
अब तक उठाये इसलिये गार्हास्थ्य का सब भार मैं ।।

कुल के सभी नर-नारि का मुझ पर सहज विश्वास है ।
इस हेतु सब सान्नंद हैं सब में नया उल्लास है ।।
सेवा समझ कर धर्म, करती आत्मजन की सर्वदा ।
इससे न आती पाण्डु-कुल में, विषमता की आपदा ।।

मैं ईर्ष्या से दूर रहती और सेवा भाव से ।
मन को सदा काबू किये रहती टहल की चाव से ।।
रखती प्रसन्न सुपाण्डवों को, गर्व ना करती कभी ।
औ' कटु वचन ना बोलती ना खिन्न करती हूँ कभी ।।

सब पाण्डवों की और उनकी स्त्रियों की मैं सदा ।
सेवा किया करती लगन से, हर्ष-युत हो, सर्वदा ।।
होता नहीं मुझको कभी मद, काम-क्रोध न लेश है ।
कर्तव्य, सेवा धर्म से, मिलता मुझे सन्तोष है ।।

मैं तुच्छ बातों पर कभी कुछ ध्यान ही देती नहीं ।
उनको न करती रुष्ट मैं व्यवहार अपने में कहीं ।।
दूषित न कोई आचरण मैं ग्रहण करती हूँ कभी ।
अनुचित किसी स्थान पर मैं बैठती भी ना कभी ।।

संकेत का अनुसरण करती भाव उनका जान कर।
विपरीत ना जाती कभी निज ज्ञान का आधार कर ॥
ना बैठती स्नान करती, अन्न भी खाती नहीं।
जब तक स्वयं पति को सभी विधि तुष्ट कर पाती सही ॥

करती सदा हूँ अन्न संचय स्वच्छ रखती गृह सदा।
रूचिकर तथा पौष्टिक सुपच भोजन कराती सर्वदा ॥
कुटिला रमणियों के न संग सँखि बैठती हूँ मैं कभी।
कर्तव्य में लवलीन हो, आलस्य तज देती सभी ॥

पति-देव से रहना विलग क्षण भर मुझे भाता नहीं।
मन मधुर मेरा चरण पंकज तज नहीं जाता कहीं ॥
रहती सदा व्रत नियम से तज कर सहज श्रृङ्गार को।
सेवें न वे जिसको उसे तजती, विदित संसार को ॥

निज सास-आज्ञा मान कर सारे नियम, त्योहार को।
करती समझकर धर्म अथवा लोक जन व्यवहार को ॥
नित दान देना, श्राद्ध करना, जो बतातीं धर्म है।
हूं पालती विश्वास-श्रद्धा से सदा, कह कर्म है ॥

सत्कार करना गुरु जनों का, कर्म मम हित विहित है।
करती ग्रहण वह आचरण जो दोष-कृत से रहित है ॥
सेवा, विनय औ' नियम का, रहता मुझे अति ध्यान है।

राजा युधिष्ठिर के महल में, एक दिन था जब कभी ।
लाखों यती औ' ब्राह्मणों को अन्न-धन मिलता सभी ।।
शुचि स्वर्ण पात्रों में सदा मिलता उन्हें वह अन्न था ।
सब वस्तुओं से भवन उनका सर्वदा सम्पन्न था ।।

थे सहस अट्ठासी गृहीथ औ' स्नातकों को पालते ।
उनका सदा वे ध्यान रखते और थे अति मानते ।।
रहती हजारों दासियाँ सब मणि जड़ित औ' स्वर्ण के—
आभूषणों को ग्रहण कर, करती टहल थीं, धर्म के ।।

क्या नाम था, क्या रूप था, उनका मुझे सब ज्ञान था ।
क्या काम करती हैं, किया या ना, मुझे सब ध्यान था ।।
भोजन कराती हाथ में शुचि थाल ले ये दासियाँ ।
सब अतिथियों को—सत्य युत रखती सुरक्षित थातियाँ ।।

सखि उन दिनों में जब युधिष्ठिर, राज्य करते थे कभी ।
थे लाख घोड़े गज तथा गौ जानवर उनके सभी ।।
उनके निरीक्षण और गणना में सखी मम हाथ था ।
सम्बन्ध सारे सेवकों का यों लगा मम साथ था ।।

रखती रही मैं आय-व्यय औ' बचत का विवरण सभी ।
वे लीन रहते पाठ-पूजा, अतिथि-सेवा में सभी ।।
भर पूर्ण था उनका खजाना, वरुण का भंडार ज्यों ।
मैंने संभाला छोड़ सुख सब था उन्हें विश्वास यों ।

सखि भूख अथवा प्यास का, रहता न मुझको ध्यान था।
सब पाण्डवों की रात दिन, सेवा सदा मम काम था॥
थे निश दिवस, मेरे लिये, दोनों बराबर एक से।
हैं मानते इस हेतु सब, ना मंत्र तप या योग से॥

विश्वास है मुझको सनातन धर्म नारी के लिए।
पति के सदा आधीन रखता, हर दशा में सुख लिये॥
है देवता पति नारियों का, सिद्ध, आश्रय, इष्ट है।
यह देह औ' सुख, सम्पदा उसके बिना सब विष्ट है॥

मैं वस्त्र भोजन और आभूषण ग्रहण करती नहीं।
पति की अपेक्षा उच्च लगता देखने में यदि कहीं॥
अपने बड़ों से बहस अथवा तर्क मैं करती नहीं।
औ' भूल कर अवहेलना, उनकी न हो पाती कहीं॥"

सुन इस तरह की मर्म भेदी वचन रचना उस घड़ी।
थी कृष्ण-भार्या सत्यभामा, हो गई लज्जित बड़ी॥
अवसर मिला बोली पुनः "मैं हो गई कृत कृत्य अब।
यह पतिव्रता के हित तुम्हारा कथन हे सखि सत्य सब॥"

भर अंक भेंटी द्रौपदी को औ' कहा अनुराग से।
"सखि सत्य मानो श्रेष्ठ हो तुम इस तरह के त्याग से॥
विश्वास है मेरा छटेगी दुःख की काली घटा।
अब दिन नहीं वे दूर जब सुख-चन्द्र की लखना छटा॥

हैं देव सम पाण्डव सभी, मैंने सुनी सब बात है।
है दुःख अँधेरा चार दिन का फिर उजेली रात है ॥
सखि कौरवों को मार कर राजा युधिष्ठिर एक दिन।
इस धरा का सुख राज्य भोगेंगे, सुनो प्रत्येक दिन ॥

पांचों तुम्हारे वीर सुत, अभिमन्यु के सँग में वहाँ।
सानन्द हैं, सब हैं सुखी, देवी सुभद्रा हैं जहाँ ॥
है मानती अभिमन्यु सम, सब को सदा हैं पालती।
ज्यों पालती थी तुम सदा औ' कष्ट उनका टालती ॥

प्रद्युम्न की माँ रुक्मिणी अति प्यार करती हैं उन्हें।
और मानते है श्याम सुन्दर, भानु आदिक सम तिन्हें ॥
उनके लिये सुख, वस्त्र, भोजन की व्यवस्था प्राप्त है।
वसुदेव मेरे ससुर जी करते स्वयं निज हाथ हैं ॥

सब वृष्णि वंशी और अन्धक, द्वारिकावासी वहाँ।
बलराम यादव ध्यान रखते, है सभी सुविधा तहाँ ॥
प्रद्युम्न सम ही जानते हैं, भेद कुछ रखते नहीं।
चिन्ता किसी भी बात की, उनके लिये करना नहीं ॥"

कर ध्यान अपने बालकों का, मगन कृष्णा हो गई।
मूँदे तुरन्त निज नयन, मानो जान पड़ती सो गई ॥
सुत-स्नेह में व्याकुल हुई, ज्यों धेनु होती बच्छ तज।
आये उमड़ जल स्नेह से अब द्रोपदी के द्रग-जलज ॥

रथ पर सुशोभित कृष्ण ने तब सत्यभामा से कहा।
'अब हो गया है समय चलने का, विलम्ब न हो महा॥
आई विदा बेला "बिदा दो" सत्यभामा ने कहा।
"कैसे कहूँ जाओ भला, जाता वियोग न है सहा॥"

सब भाँति से दे सांत्वना फिर फिर गले से मिल तथा—
परिक्रमण करती द्रौपदी थी रोक आंसू औ' व्यथा॥
जा कृष्ण के सँग बैठ रथ पर, किया सबको शुभ नमन।
ममता कथित प्रिय द्रौपदी की सजग थी करुणा गहन॥

हँस कर कहा श्री कृष्ण ने "वे दिन नहीं अब दूर हैं।
धारण करो तुम धैर्य कृष्णा, ध्यान मुझको पूर्ण है"॥
लेकर विदा सब पाण्डवों से, रथ चलाने को कहा।
पर द्रौपदी का दुःख दारुण, सोच मन दहता रहा॥

# दुर्वासा आतिथ्य

थी कौरवों को जलन होती खबर सुनते जब कभी ।
बन में भटकते पाण्डवों को प्राप्त सुख-सुविधा सभी ।।
रहते वहां सम्मान से उनको न कुछ भी क्लेश है ।
निज भोग अथवा दान के हित अन्न धन सब शेष है ।।

करते व्यतीत प्रसन्न मन वे अवधि के दिन रह वहाँ ।
है बाट उनकी जोहती जनता हुई आकुल यहाँ ।।
चिंतित अधिक धृतराष्ट्र-सुत की मंडली थी रट रही ।
बारह बरस की अवधि तो सुख-शाँति से है कट रही ।।

उस काल होकर अतिथि आये पूज्य दुर्वासा वहाँ ।
था साथ उनके शिष्यदल, लख कर सुयोधन ने कहा ।।
स्वागत करूंगा अधिकतम अनुराग से मुनि देव का ।
मैं जानता हूँ है भयंकर शाप इस महिदेव का ।।

भय वश किये सब कार्य जिससे दल अतिथि संतुष्ठ हो।
परिणाम डर से ही रहा यजमान, प्रति क्षण शिष्ठ हो॥
ऋषि स्वयं औ' सब शिष्य थे अनुकूल इस व्यवहार से।
वर माँगने की प्रेरणा दी बहुत ही मनुहार से॥

था प्राप्त सब कुछ कौरवों को राज्य-सुख-सुत-सम्पदा।
वे चाहते वरदान पावें पाण्डु-सुत-हित आपदा॥
है अब उचित अवसर समझ कर हृदय में बोले यही।
'शुभ कामना से आपकी प्रभु है सभी धन, जन, मही॥

जो कुछ हमारे पास है प्रभु आप ही की देन है।
मिलते रहें दर्शन यथा विधि दास को सुख-चैन है॥
फिर भी अगर प्रभु चाहते हैं आप तो वरदान दें।
बन में बसे भाई युधिष्ठिर को दरस-सम्मान दें॥

अब दीजिए दर्शन तुरत सँग शिष्यदल, को नाथ ले।
सेवा करें वे भक्तजन भी द्रौपदी को साथ ले॥
क्षमता बड़ी है धर्म की, स्वागत करें निज ढंग का।
महराज दीजे लाभ उनको शीघ्र निज सतसंग का'॥

इस भाँति सुनकर वचन रचना श्रेष्ठ मुनि को यों लगा।
वन में युधिष्ठिर के हृदय में गर्व धन का है जगा॥
सोचा न कुछ भी और उनने चट सुयोधन से कहा।
'मेरी व्यवस्था ना हुई तो दुःख पायेंगे महा'॥

अभिमान है धन का उन्हें लूंगा परीक्षा जा अभी।
बस अब मुझे दे दो विदा पहुँचूं लिये निज दल सभी' ॥
थी बात मन की और, बोला और ही वह पातकी ।
जो बन गई कारण भयंकर क्रोध औ' प्रतिघात की ॥

"मुनिनाथ है अभिमान झूठा धर्म का मत मानिये।
भोजन कराते नित्य लाखों को इसे सच जानिये ॥
है प्राप्त की रवि-शक्ति उनने बल उसी का अतुल है।
इस हेतु पाण्डव वंश में हर दृष्टि से ही कुशल है" ॥

करते सहन क्यों बात ऐसी मुनि किसी के दम्भ की।
प्रस्थान सत्वर कर दिया कर घोषणा 'हर-बम्ब' की ॥
"निज शक्ति का परिचय मुझे दे पाण्डु सुत" मुनि ने कहा ॥
आये युधिष्ठिर गेह थे यों क्रोध में जलते महा ॥

उस दुष्ट ने सोचा हुई चाही हमारी आज है।
सौभाग्यशाली हैं बड़े बनता सभी अब काज है ॥
जो चाहना की हृदय में पूरी हुई तत्काल ही।
होती हमारी जीत है सब दिन सदा सब काल ही ॥

× × ×

था सूर्य पश्चिम को झुका, कर पूर्ण दिन की यात्रा।
थे विप्र आश्रित कर चुके भोजन यथा रुचि मात्रा ॥
भोजन किया राजा युधिष्ठिर ने अनुज संग ले सभी।
गृहस्वामिनी ने था किया भोजन तनिक पहिले अभी ॥

ऋषि आगमन की खबर पाई धर्म नृप ने जिस घड़ी।
स्वागत किया अति स्नेह से मन में लिये श्रद्धा बड़ी॥
ऋषि ने कहा "हैं क्षुधित राजन् शिष्य ये मेरे सभी।
कीजे यथेष्ठ प्रबन्ध भोजन का सभी के हित अभी॥"

नृप धर्म ने सादर कहा "आदेश पालूंगा सभी।
स्नान-संध्या कीजिए भोजन जुटाता हूं अभी॥
मुनिदल सहित पहुँचे तुरत सर पर नहाने के लिए।
चिन्तित बड़ी थी द्रौपदी, उस काल, भोजन के लिए॥

सोचा बहुत उसने मगर कुछ ध्यान में आया नहीं।
मुनि का निमंत्रण इस स्वीकारना भाया नहीं॥
पर अब समय था कुछ न बाकी सोचती थी वह यही।
भोजन न पाया तो मिलेगा शाप है सांची सही॥

मुनि शाप से भी अधिक भय था भंग होती रीति का।
आतिथ्य बहुश्रुत धर्म है अथवा वचन है नीति का॥
था याद गृहणी का नियम उसको सदा इस भाँति का।
प्रतिपाल क्षत्रिय वंश हो विद्वान् ब्राह्मण जाति का॥

क्या करे औ' क्या नहीं उसको था न कुछ लगता पता।
किस भाँति होगा अतिथि का सत्कार मन था खोजता॥
उस पतिव्रता को जगतपति भगवान पर विश्वास था।
इस हेतु उसको ही पुकारा जो सदा ही पास था॥

हे कृष्ण ! यदुनन्दन, मुरारे, देवकी-नन्दन हरे।
जनदुःख हारी वासुदेव मुकुन्द प्रभु जगपति हरे।।
प्रभु भक्तवत्सल कृष्ण मेरे मान की रक्षा करो।
आतिथ्य धर्म महान के, सम्मान की रक्षा करो ।।

निज सुध भुला, कृष्णा तभी भगवान चरणों में पड़ी।
बहते नयन से अश्रु विपदा थी सती पर यह बड़ी ।।
विश्वास औ' निष्ठा बढ़ाती है सदा ही आत्मबल।
जिस के सहारे से सबल बनते जगत के जन निबल ।।

कृष्णा हुई तल्लीन हरि में, जान पड़ती सो गई।
कुछ पाण्डवों को था पता ना, द्रौपदी यों खो गई ।।
प्रभु ध्यान में तल्लीन कृष्णा को हुआ आभास यों।
हैं कृष्ण भोजन मांगते, उसके खड़े हो पास ज्यों ।।

'अत्यन्त कृष्णे, थक गया हूं है क्षुधा मुझको लगी।
भोजन कराओ तुम मुझे, क्यों दीखती हो ज्यों ठगी ।।
तुम क्यों खड़ी हो मूढ़ सी औ' बोलती कुछ भी नहीं।
क्या राह में तुमको मिला था आज दुर्योधन कहीं ?'

सुन कर जनार्दन के वचन यों हो गई लज्जित महा।
औ' बात ना कुछ बोल पाई, क्या खिलाने को रहा ।।
फिर धैर्य धर कर मधुर वाणी में कहा भगवान से।
'वह पात्र जो मुझ को मिला है, सूर्य के वरदान से ।।

परिपूर्ण रहता है तभी जब तक न मैं भोजन करूँ।
पर पा लिया है आज मैंने—बोलिये अब क्या करूँ॥
'मुझको लगी है भूख अति तुम कर रही हो क्यों हँसी।
है आज क्यों तेरे हृदय में ना खिलाने की बसी॥

ला कर दिखाओ पात्र मुझको, देखकर संतोष हो।
यदि शेष है उसमें अभी कुछ पा उसे परितोष हो॥
तब सामने भगवान के ला रख दिया उस पात्र को।
देखा उसे अति ध्यान से, चिपका लखा लघु पात को॥

झट पा लिया भगवान ने उसको बहुत अनुराग से।
औ' फिर कहा 'संतुष्ट हो जाओ सभी इस साग से॥
सम्पूर्ण जग की आत्मा औ' यज्ञ भोक्ता आज यों—
इक बून्द से ही स्वाति की होता पपीहा तुष्ट, ज्यों॥

सहदेव को भेजा गया ऋषि को बुलाने के लिये।
'सादर कहो महाराज आयें अन्न पाने के लिये॥
तत्पर हुए सहदेव जाने को तभी आदेश ले।
अधमर्षण थे कर रहे ऋषि, संग सारे शिष्य ले॥

पर थी क्षुधा सहसा सभी की, तृप्ति जैसे हो गई।
मानो सभी हों पा चुके रुचिकर अधिक भोजन कहीं॥
आने लगीं उनको डकारें, अब बराबर अन्न की।
चिन्तित हुआ मन सोच कर बातें सहज सौजन्य की॥

सब की अवस्था हो गई थी, एक सी उस काल में।
औ' सोचने सब लग गये, क्या मर्म था उस ताल में॥
जाकर कही सब शिष्य ने, गुरुदेव से सारी कथा।
नृप धर्म का भोजन बनाया जायगा सारा वृथा॥

गुरु ने दिया आदेश था सत्वर बनायें अन्न को।
सोचा नहीं क्षण-हेतु भी सद्धर्म औ' सौजन्य को॥
होगा भला क्या सोचिये, बोले सभी हो अनमने।
हम इस परीक्षा के लिये, अपमान पायेंगे घने॥

अपराध जो हमसे हुआ है, कौन कर सकता क्षमा।
हैं पाण्डुसुत धर्मज्ञ सारे द्रौपदी, खुद है रमा॥
सुधिकर कथा अम्बरीष की ऋषि को बहुत ही खेद था।
समझे न वे पल हेतु आखिर बात का, क्या भेद था॥

है डर बना रहता मुझे भगवान के हर भक्त से।
कोई नहीं बलवान पाये पार जो अनुरक्त से॥
हैं पाण्डुसुत विद्वान व्रतधारी तपस्वी शूर सब।
दानी सदाचारी कपट छल से सहज ही दूर सब॥

करते भजन पूजन दिवस-निशि, बुद्धिवर छल हीन हैं।
करते अतिथि सेवा लगन से, धर्म-पथ आसीन हैं॥
जैसे रूई के ढेर को सकता जला कण आग का।
वैसे मिटा सकता हमें तप तेज पाण्डव-त्याग का॥

कल्याण केवल दीखता है, भाग जाने में अभी।
मानी न इस क्षण बात तो बस दण्ड पायेंगे सभी' ॥
यों प्राण ले भागे तुरत सब, मान ऋषि की बात को।
था सूझता नहिं पंथ उनको तम सघन था रात को ॥

किस मार्ग से वे सब चले उस क्षण न कुछ अनुमान था।
जिसको जहाँ मौका मिला भागा यही बस ध्यान था ॥
सहदेव को चिन्ता हुई देखा न मुनियों को वहाँ।
खोजा उन्हें चारों तरफ, पर वे उन्हें मिलते कहाँ ॥

प्रिय बन्धु को उन ने सुनाई, मुनि गमन की यह कथा।
मुख पर निराशा छा गई, मन में हुई भारी व्यथा ॥
करते रहे उनकी प्रतीक्षा, रात को वे देर तक।
'भगवान का यह कोप है' उनको हुआ संदेह तक ॥

उद्धार अब किस भाँति होगा, सोचने मन में लगे।
उच्छ्वास लेते थे बराबर धर्मरत, निष्ठा पगे ॥
जागृत हुई तब द्रौपदी औ' खोल दृग देखा वहाँ।
पाया नहीं श्री कृष्ण को पर दुखित थे पाण्डव महा ॥

देखा कि चिन्ता में पड़े अति, मौन हैं व्याकुल सभी।
इस भाँति व्याकुल पाण्डवों को था नहीं देखा कभी ॥
नृप ने बताई बात सब, सुन द्रौपदी हर्षित हुई।
औ' सोच प्रभु की अतुल महिमा चरण में अर्पित हुई ॥

फिर अन्त में उसने बताई स्वप्न की बातें सभी।
आश्चर्य में सब पड़ गये, ऐसा न जाना था कभी॥
भगवान जिसको सुयश देवें, मेट सकता कौन है।
लख भक्त आश्रित ईश के, यमराज होता मौन है॥

विश्वास था श्री कृष्ण पर अति द्रौपदी को सत्य है।
विश्वास से मिलता सदा फल, इस कथन में तथ्य है॥
थी मानती वह कृष्ण को भगवान मन से सर्वदा।
भगवान भी उस रूप में दे दर्श हरते आपदा॥

## जयद्रथ द्वारा द्रौपदी हरण

कहते सभी संसार के ज्ञानी, वही नर श्रेष्ठ हैं।
जो कर्म करते हैं सदा सबके लिए, निर्हेतु हैं।।
कुछ वे न अन्तर मानते हैं, शत्रु हो या मित्र हो।
सद्भाव उपजाते सभी-उर में सहज दृढ़ चित्त हो।।

निज लाभ के हित से करे जो यत्न वह सानन्द हो।
जो अहित याचक है हमारा, नव उसे आनन्द हो।
मानव बनाया ईश ने, दानव अहित कर कर्म ने।
इस भाँति सोचा बीतरागी, विश्व प्रेमी, धर्म ने।।

सब भाइयों के साथ शोभा प्रकृति लखने के लिये।
राजा युधिष्ठिर थे गये होकर मगन हुलसित हिये।।
थी आश्रम में उस समय कृष्णा अकेली रह गई।
थे पास ही में धौम्य मुनि औ सांझ बेला हो गई।।

खोई हुई थी उस घड़ी कर्तव्य सुख के मोद में।
वस रूप गुण की खान तिस पर थी प्रकृति की गोद में॥
थी पार्श्व में प्राकृतिक सुषमा, अधिक उसके शोभती।
औ सींचती बगिया मनोहर थी कुटी, की द्रौपदी॥

बहती मधुरतम गन्ध लेकर, वायु जीवन दायनी।
जिस बाटिका में थी सुशोभित पार्थ की वह भामिनी॥
वह देवकन्या सम मनोहर चपल जैसे रोहणी।
थी विश्व में अत्यन्त सुन्दर और माया-मोहनी॥

संयोग वश उस काल सिन्धु नरेश जयद्रथ आ गया।
लख इस अनिंद्य सुसुन्दरी को धूर्त वह ललचा गया॥
था जा रहा वह शाल्व को, सेना सहित अति ठाठ से।
औ दृष्टि कृष्णा पर पड़ी जाते हुए उस बाट से।

था व्याह उसका हो गया शुचि, दुःशला के संग में।
पर वह महाकामुक रहा, थिर था न उसके अंग में॥
जाते हुए मग में सहज ही दृष्टि कृष्णा पर पड़ी।
निज मित्र कोटिक कास्य से, पूछा कौन है वह खड़ी॥

ऐसी न अनुपम सुन्दरी देखी कहीं पर और है।
आसक्त हूँ अत्यन्त इस पर ज्यों कमल पर भौर है॥
काया गठीली, साँवली, सूरत, मनोहर, गात है।
क्यों कर अकेली फिर रही है, समझने की बात है॥

कोटिक पता ले आइये, यह सुन्दरी सर्वाङ्ग है।
है नारि यह किसकी तथा अब कौन इसके संग है ॥
यदि यह किसी भी भाँति से मम प्रेम को स्वीकार ले।
हो जायगी यह राज रानी मित्र ! निश्चित मान ले ॥

यह कौन है आई कहाँ से चाहती क्या बात है।
औ' इन कटीले जंगलों में क्यों बिताती रात है ॥
कृत कृत्य मेरा जन्म होगा, मानती यदि बात है।
अति रूप सुन्दर देख कर होता न थिर मम गात है ॥

था कोटि कास्य विचारता परिणाम के दुख, दण्ड सब।
साहस न होता था कि सहसा बात यों ले पूँछ तब ॥
पर भय उसे था मित्र का भी जो महा शठ क्रूर था।
इस हेतु, आगे को बढ़ा वह सहज ही मजबूर था ॥

थे काँपते सब अंग अति भय से न मुख आता बचन।
साहस बटोरा और बोला हाथ ले सुरभित सुमन ॥
हे देववाले अंग शोभा से लुटाती नेह नव।
हे रूप नभ की चाँदनी, हे विश्व की माया विभव ॥

हो कौन तुम, हो साथ किसके, इस विजन में बोलिये।
परिचय कराने हित अतिथि को अधर पट तो खोलिये ॥
क्या डर नहीं लगता तुम्हें ऐसे भयानक देश में।
किसके सहारे घूमती हो, तुम कहो इस वेश में ॥

हो नाग कन्या, अप्सरा । धर्मपत्नी इन्द्र को ।
चन्द्रमा, यमराज की या वरुण, विष्णु मुकुन्द की ।।
ज्यों सिंह पत्नी से कभी डर बात करता स्यार है ।
था बात त्यों वह कर रहा, मन मान कर, लाचार है ।।

मुझको सुनो बनवासिनी सब सुरथ सुत कह जानते ।
प्रिय कोटि कास्य सुमित्र कह, जयद्रथ मुझे सम्मानते ।।
वह देखिए वे हैं खड़े अब सामने ही राह में ।
है प्रेम तुमसे हो गया अब, हैं तुम्हारी चाह में ।

"परिचय तुम्हारा जान कर मुझ को हुआ नृप हर्ष है ।
पर बात करना पर पुरुष से नारियों को व्यर्थ है ।।
कोई पुरुष इस आश्रम में अब उपस्थित है नहीं ।
जो दे सके उत्तर तुम्हारी बात का कोटिक सही ।।

फिर भी समय को देख कर औ अतिथि आया द्वार पर ।
है वाध्य होना पड़ रहा कर्तव्य गृहणी मान कर ।।"
तब आदि से ले अन्त तक परिचय दिया अपना उसे ।
"हूँ विश्व विजयी पार्थ-पत्नी जानते होंगे जिसे ।।

राजा द्रुपद की हूँ सुता औ बहिन मैं धृष्टद्युम्न की ।
नृप पाण्डु की मैं हूँ वधू, मर्याद बनिता-धर्म की ।।
अब बैठिये बाहर वहाँ आते सभी होंगे अभी ।
जो और कुछ भी पूछना हो, पूछना उनसे सभी ।।

उत्तर तुम्हारी और बातों का अभी मिल जायगा।
जो कुछ तुम्हारे हृदय में है, प्राप्त फल हो जायगा॥
है देर आने में नहीं अब समय उनका हो गया।
होंगे सभी वे राह में अब बैठिये कर के दया॥"

कह बात इतनी द्रौपदी निज पर्ण कुटिया में गई।
मानो बनाई धूल में रेखा, हवा से मिट गई॥
कोटिक बताया बात सारी मित्र जयद्रथ को वहाँ।
सुन कर न आया ज्ञान उसको, ज्ञान उसमें था कहाँ॥

कामान्ध था वह दुष्ट अति सोचा न नारी धर्म को।
सोचा न मर्यादा रही क्या, औ सती के मर्म को॥
था पाप जयद्रथ के हृदय में बुद्धि उसकी भ्रष्ट थी।
सब जान कर अनजान था यह बात अति सुस्पष्ट थी॥

सब भूल मानवता अधम जा द्रौपदी के पास में।
दुष्कामना मन में लिये, दुर्वासना की प्यास में॥
उस पर्ण कुटिया में जहाँ पर थी अकेली शोभती।
कर्तव्य पथ में लीन हो, औ राह पति की जोहती॥

"मैं सिन्धु पति हूँ सुन्दरी, परिचय दिया अपना कहा।
है नाम जयद्रथ और व्याकुल हूँ तुम्हारे हित महा॥"
विदुषी महा थी द्रौपदी, अत्यन्त साहस, ज्ञान था।
क्या चाहिये करना उसे ऐसे समय में, ध्यान था॥

बातें बदल स्वागत किया, देकर उसे ग्रासन कहा।
"हे सिन्धु पति जयद्रथ तुम्हारा कर रही स्वागत महा ।।
कहिये कुशल तो है प्रजा सारी, उपजता ग्रन्न है।
परिवार नृप वर ग्रापका, सुख-सम्पदा सम्पन्न है ।।

पतिदेव मेरे वीर ग्रर्जुन, ग्रनुज ग्रग्रज हैं कुशल।
सब धीर ग्रब भी हैं नियत कर्तव्य के पथ पर ग्रटल ।।
कुछ हस्तिनापुर की खबर है, ग्राप को बतलाइये।
सब को प्रणाम सप्रेम दीजे, ग्रब वहाँ जब जाइये ।।

ग्रब तक न भूली मैं सरल चित, पितृवत् धृतराष्ट्र को।
उनका सहारा है बड़ा ग्रपने महत्तम राष्ट्र को ।।
ग्रब लीजिये जल पैर धोने के लिये तैयार है।"
जलपान करने को कहा जैसा जगत व्यवहार है ।।

यह कह पुनः बोली "तनिक ही दूर सर है जाइये।
सुस्नान कीजे ग्रौ' यथा रुचि ग्रन्न-फल कुछ खाइये ।।"
वह कुछ समय ऐसे बिताना चाहती थी बात में।
पाण्डव न जब तक लौट ग्रायें, थी इसी वह घात में ।।

यों तो न डरना चाहिये था दुष्ट से यह सत्य है।
फिर भी भभकती ग्रग्नि में, गिरना नहीं ही तथ्य है ।।
पर टेरने वह फिर लगा ग्रपनी ग्ररुचि कर बात को।
थी लग रही जो तीर सदृश्य द्रौपदी के गात को ।।

सब कुछ कुशल है द्रौपदी औ हो चुका जल पान है।
आया यहाँ क्यों जानिये, होता समय व्यवधान है॥
जो राज महलों में पली उसके लिये क्यों आज वन।
तुम आज वन-वन भटकती हो रात दिन सह कष्ट घन॥

अब धन नहीं कुछ रह गया है पाण्डवों के पास में।
हो राज्य वंचित काटते अपने दिवस वनवास में॥
संसार में अनुराग अब उनसे तुम्हारा व्यर्थ है।
तब झेलने का, कष्ट इनके संग में, क्या अर्थ है॥

अब छोड़ कर इन पाण्डवों को, प्रेम मुझ से तुम करो।
पत्नी बनो मेरी प्रिये! जीवन सफल अपना करो॥
तुम सिन्धु औ सौ वीर की रानी बनोगी मानिये।
इस बात में ही है निहित कल्याण कृष्णा जानिये॥

वह राज्य-श्री जो पाण्डवों की थी न उनके पास है।
आगे करेंगे प्राप्त उसको क्या तुम्हें विश्वास है?
इससे उठाओ यों न दुख समझो समय की मांग को।
बन कर विदूषी, तुम उतारो भावना की मांग को॥"

अत्यन्त क्रोधित हो गई अब द्रौपदी इस बात पर।
पीछे खिसक अति कड़क बोली, नीच पापी, डाँट कर॥
जैसा कहा वैसा कहीं कहना न अब आगे कभी।
तू देख ले वे वीर पाण्डव आ रहे हैं अब सभी॥

हा ! क्यों न आई लाज तुझको डूब पानी में मरा ।
सोची हृदय में बात जब ऐसी न क्यों उस क्षण जरा ।।
पाण्डव यशस्वी हैं सभी औ धर्म-पथ लवलीन हैं ।
है बाहु-बल में शक्ति अति कर्तव्य-पथ आसीन हैं ।।

सन्मुख सदा हैं युद्ध करते, भय न पाते हैं कभी ।
ये देव, दानव को जयद्रथ ! जीत सकते हैं सभी ।।
यह बात तू कैसे कही, मर्याद के विपरीत है ।
इन पाण्डवों से इन्द्र भी, सकता न लड़ कर जीत है ।।

धिक्कार है तुझको महा, माँ-बाप को धिक्कार है ।
जिन ने तुझे दे जन्म, जग का यो किया अपकार है ।।
ज्यों केकड़े की मां सभी निज मौत पाने के लिये- ।
करती सदा है गर्भ धारण, नीच गुन तू निज हिये ।।

अपहरण करना चाहता है, मृत्यु पाने के लिये ।
अब हैं नहीं मर्याद कुछ भी बेच खाने के लिये ।।
जा भाग जा तू सामने से मुँह दिखाना अब नहीं ।
इस पाप का अब दण्ड तुझको, भोगना होगा सही ।।

विचलित न होते युद्ध से, सुत पाण्डु के रणधीर है ।
उनका करे जो सामना, बोलो कहाँ वे वीर हैं ।।
हा ! क्यों न रसना गिर गई जिससे वचन तूने कहे ।
आँखे न क्यों फूटी तुम्हारी वे न जो लज्जा गहे ।।

तू बच न पायेगा किसी भी कंदरा या खोह में ।
लख कर भगेगा पार्थ के शर, मूर्ख जीवन मोह में ॥
धिक ! जन्म पाकर नृपति कुल में बुद्धि तेरी नीच है ।
लगती बहुत ही पास आई कुटिल तेरी मीच है ॥

रहता न तन में ज्ञान है, जब कामना होती सबल ।
मिटता विवेक, विचार सारा और तन बनता निबल ॥
मानी न उसने बात कुछ भी, दुष्ट बोला उस घड़ी ।
हे सुन्दरी आगे न अब बातें करो मुझ से बड़ी ॥

ऐसे कभी मैं डर न सकता हूँ तुम्हारी बात से ।
मैंने कही हित की मगर तुम हो समझती घात से ॥
मैं जानता हूँ पाण्डवों की शक्ति औ' बातें सभी ।
तुमको पता लग जायगा हैं वीर कितने वे अभी ॥

दो प्रश्न हैं अब सामने औ' गौर से तुम सोच लो ।
है एक मेरे संग चलना मृत्यु दूजा मान लो ॥
स्वीकार यदि है प्रश्न पहिला, तुरत रथ में बैठ कर ।
अब संग में मेरे चलो बोलो न इस विधि ऐंठ कर ॥

मुझमें सती-बल-शक्ति है, निज पर मुझे विश्वास है ।
निर्बल समझ कर स्वयं का करता पतित उपहास है ॥
यों विवश करने से न भय या मोह हो सकता मुझे ।
कोई परिस्थिति हो न मैं स्वीकार कर सकती तुझे ॥

है इन्द्र भी मेरा कभी अपहरण कर सकता नहीं।
हस्ती तुम्हारी है भला क्या बाध्य जो कर दे कहीं ॥
श्री कृष्ण, अर्जुन संग में रथरूढ़ होकर जब कभी।
मेरी करेंगे खोज, शेखी भूल जायेगी सभी ॥

गाण्डीव की टंकार सुन कर तू ठहर सकता नहीं।
रे भाग जा दुर्बुद्ध वरना प्राण बच सकता नहीं ॥
संहार वीरों का कराता है भला तू मूर्ख क्यों ?
तू तो स्वयं मिट जायगा, उनको मिटाता दुष्ट क्यों ?

गाण्डीव के बल का न तुझको मूर्ख क्या कुछ ज्ञान है।
जो देखता अर्जुन भुजायें भूलता निज ध्यान है ॥
संधान कर गाण्डीव से जब बाण हैं वे छोड़ते।
तब प्राण ले, भयभीत हो, रण से सभी मुख मोड़ते ॥

है चक्र जब श्रीकृष्ण का चलता कभी अति क्रोध से।
लाखों धड़ों से मुण्ड कटते रुण्ड गिरते लोथ से ॥
वे पापियों के शत्रु हैं औ' पाप हित अंगार हैं।
रहते जलाते रात दिन, उनको कि जो भू-भार हैं ॥

जब भीम की पड़ती गदायें टूटती हैं हड्डियाँ।
तन में न रहते प्राण हैं, देते उड़ा वे धज्जियाँ ॥
जब क्रोध करके नकुल औ' सहदेव करते वार हैं।
तब एक संग में सैकड़ों को मार करते पार हैं ॥

सब जानता यह बात तू अब क्यों बुलाता मौत है।
होता कहीं क्या सूर्य सम खद्योत का लघु द्योत है॥
अति तुच्छ है तू पाण्डवों के सामने सब दृष्टि से।
है मिट गया यह जान ले तू नीच अब इस सृष्टि से॥

पतिव्रत सुरक्षित है सदा से टूट वह सकता नहीं।
मन भ्रमर मेरा पति चरण तज अन्य थल रमता नहीं॥
इस सत्य के सामर्थ्य से मैं आज देखूँगी यहाँ।
पाण्डव तुम्हें करके पराजित, दण्ड देते हैं महा॥

कामांध है तू जानती मैं, खींच कर ले जायगा।
फिर भी न चिन्ता है मुझे तू स्वयं ही पछतायगा॥
देकर तुझे अति दण्ड इसका, वीर पाण्डव छीन कर।
मुझको छुड़ा लेंगे, तुम्हारा गर्व सारा हीन कर॥

जब द्रौपदी ने यों लखा उठ कर पकड़ने आ रहा।
फटकार कर बोली तुरत छूना न हे पापी महा॥
भयभीत हो उसने पुकारा धौम्य मुनि को जोर से।
रक्षा करो मेरी, बचाओ मुनि तुरत-बरजोर से॥

फिर भी झपट कर छोर साड़ी का पकड़ उसने लिया।
तब द्रौपदी ने क्रोध में भर जोर से धक्का दिया॥
खाकर पछाड़ गिरा तुरत वहं ज्यों गिरे तरु भूमि पर।
पर झट खड़ा फिर हो गया वह द्वार का मग रोंध कर॥

अब छोर सारी का पकड़ वह खींचने फिर से लगा।
उच्छ्वास वह लेने लगी औ' तर्क तब मन में जगा॥
ज्योंही कहा लो आ गये पाण्डव तजा त्यों छोर को।
भयभीत होकर सिन्धु पति ने दृष्टि की उस ओर को॥

पाकर सुअवसर द्रौपदी जा धौम्य मुनि के पास में।
मस्तक नवाया और रथ पर चढ़ गई विश्वास में॥
लेंगे छुड़ा मुझ को धनुर्धर पार्थ क्यों संदेह हो।
कर मान मर्दन दुष्ट का औ' पीस ज्यों अवलेह हो॥

यों देख कर वृतान्त सारा, धौम्य क्रोधित हो महा।
बोले कड़क कर दुष्ट जयद्रथ पाप क्यों तू कर रहा॥
है क्षात्र कुल में जन्म पाया, सोच कुल-आदर्श को।
अपने नहीं तो पूर्वजों के मान औ' उत्कर्ष को॥

यों द्रौपदी का हरण जो मर्याद सम्मत है नहीं।
जब तक विजय तुम पाण्डवों पर युद्ध कर, पाते नहीं॥
होगी जहाँ मुठ भेड़ अर्जुन से पता चल जायगा।
इसमें नहीं संदेह है तू जन्म भर पछतायगा॥

समझा रहे थे मुनि उसे उपदेश दे विधि सृष्टि की।
पर कौन सुनता था वहाँ कामान्ध था वह पातकी॥
सेना चली उसकी, विवश हो चल रहे मुनि साथ में।
थी मूक बैठी द्रौपदी रख ध्यान दीना नाथ में॥

जब निज कुटी की ओर पाण्डव लौटते थे आ रहे।
होते अनेकों अपशकुन, थे देख अति दुख पा रहे॥
जान पड़ता है मुझे कुछ द्रौपदी को 'हो गया।
बोले युधिष्ठिर अनमने हो दुःख मुख पर छा गया॥

थे घोर चिन्ता में सभी स्तब्धता थी छा गई।
कोई समझ पाये नहीं, विपदा पुनः क्या आ गई॥
अब शीघ्रता से ले चलो रथ सारथी से यों कहा।
तब भीम ने कर में पकड़ ली निज गदा तत्क्षण वहाँ॥

पहुँचे सभी अपनी कुटी में देखते क्या बात है।
धात्रेयिका रोती तथा करती महा संताप है॥
रथ से उतर कर सारथी लेने खबर उस थल गया।
पूछा पड़ी क्यों भूमि पर बोलो तुम्हें क्या हो गया॥

क्या निर्दयी औ' क्रूर कौरव का हुआ उत्पात है।
कर द्रौपदी का हरण यों सबको दिया संताप है॥
बोली तुरत दासी कि जयद्रथ मान वह बलवान है।
हा! इन्द्र सम सुचि पाण्डवों का, कर रहा अपमान है॥

कर द्रौपदी का हरण पापी ले गया है जाइये।
सब पाण्डवों के संग में सत्वर छुड़ा कर लाइये॥
होगा गया कुछ दूर ही अब और देर न कीजिये।
रथ-सैनिकों के चिन्ह का, आश्रय तुरत अब लीजिये॥

फुंकार कर ज्यों सर्प व्याकुल, दुष्ट का पीछा किया।
टंकार कर निज धनुष को सुत-पाण्डु ने, पीछा किया ॥
देखा कि संग में धौम्य मुनि भी सैनिकों के जा रहे।
औ' नाम लेकर पाण्डवों का, जोर से चिल्ला रहे ॥

थे भीम को मुनि टेरते औ' थे बुलाते पार्थ को।
कहते दिखाओ शीघ्र अब वीरत्व औ' पुरुषार्थ को ॥
सुन कर पुकार मुनीश की पाण्डव वहाँ पर आ गये।
लख द्रौपदी की विवशता थे नेत्र जल से छा गये ॥

क्रोधाग्नि में संतप्त हो ललकार कर बोले तभी।
यों भाग कर हे नीच जयद्रथ बच नहीं सकते कभी ॥
था प्रथम तुमको उचित यह संग्राम करते हो खड़े।
यदि लेखते हो तुम स्वयं को युद्ध में सबसे बड़े ॥

टंकार सुन गाण्डीव की औ' घोर पाण्डव गर्जना।
छाया तुरत ही सैनिकों पर मृत्यु का भय था घना ॥
हथियार डाले सैकड़ों ने तुरत शरणागत हुए।
जो भी अड़े मैदान में सारे हताहत हो गये ॥

अतिशय अंधेरा छा गया था बाण वर्षा से वहाँ।
दिखता न कोई व्यक्ति को थे सिन्धु पति लड़ते कहाँ ॥
निज सैन्य को होते पराजित देख जयद्रथ ने कहा।
सब मर मिटो, साहस न छोड़ो वीर हो तुम सब महा ॥

होने लगा घनघोर रण कट-कट सभी गिरने लगे।
सुधि कर सगे सम्बन्धियों को प्राण थे तजने लगे॥
जब रह गया सैनिक न कोई भी खड़ा मैदान में।
औ' लग गया बट्टा तभी उस सिन्धु पति की शान में॥

टोली नरेशों की उसी क्षण पाण्डवों से भिड़ गई।
राजा त्रिगत से धर्म-नृप की प्राण बाजी छिड़ गई॥
नृप धर्म के घोड़े मरे उसकी गदा की मार से।
मारा उसे तब धर्म ने ही अर्ध चन्द्राकार से॥

जब भीम ने देखा कि आता मारने कोटिक उन्हें।
इस भाँति काटा सारथी का धड़ न सुधि आई तिन्हें॥
रण भूमि से निज अश्व उसने भागते देखे वहाँ।
पर प्रास नामक शस्त्र से कोटिफ गया मारा तहाँ॥

काटे धनुष से शीश तब थे पार्थ ने सौ वीर के।
बारह नरेशों के सहित, इक्षाक शिबि कुल वीर के॥
यों सिन्ध और त्रिगर्त के महिपाल सब संहार कर।
लौटे धनंजय सिन्धुपति की ओर धनु टंकार कर॥

देखा हताहत हो गये सब सिन्धुपति के वीर हैं।
उसके लिये गाण्डीव पर अर्जुन चढ़ाये तीर हैं॥
रथ से उतारा द्रौपदी को प्राण रक्षा के लिये।
भयभीत हो भागा तुरन्त बिन युद्ध अर्जुन से किये॥

देखा युधिष्ठिर ने कि कृष्णा धौम्य को आगे किये ।
है आ रही पैदल चली निज हृदय में करुणा लिये ॥
लाओ चढ़ा रथ पर उसे सहदेव, बोले धर्म यों ।
सैनिक विपक्षी के हते हमने, मिटे दुष्कर्म ज्यों ॥

कृष्णा नकुल सहदेव वा मुनि संग नृप वर जाइये—
निज आश्रम को, पार्थ केवल आप आगे आइये ॥
यों भीम बोले उस घड़ी सबको सुनाकर गौर से ।
मैं नीच जयद्रथ को हनूंगा निज गदा के जोर से ॥

हो सत्य कहते भीम तुम वह नीच पापी है महा ।
फिर भी हमें अति ध्यान रखना है युधिष्ठिर ने कहा ॥
माता पुनीता गांधारी, दुःशला-सौभाग्य का ।
है ध्यान रखना भीम हमको बहिन के अनुराग का ॥

दे सान्त्वना आदेश समुचित भीम अर्जुन को तभी ।
नृप धर्म लौटे आश्रम को संग ले निज जन सभी ॥
मुनि मार्कण्डेय ब्राह्मण, ऋषि द्रौपदी के शोक में ।
बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे सब वहाँ, आलोक में ॥

हारे सभी सौ वीर योधा जीत पाण्डव की हुई ।
संग देख कृष्णा आ रही है हर्ष की ध्वनि छा गई ॥
जब भीम अर्जुन थे गये उस ओर रथ को हांकते ।
कुछ दूर से देखा जयद्रथ जा रहा था भागते ॥

कौशल दिखाया पार्थ ने अद्भुत अनेकों मार शर ।
खा वाण अभिमंत्रित, गिरे उसके सभी हय चीख कर ।।
यों देख अर्जुन का पराक्रम, धैर्य उसका जा रहा ।
अतिरिक्त छिपने के न उसको और कुछ चारा रहा ।।

अब देख उसकी यह दशा हँस पार्थ बोले आइये ।
क्यों भागते हैं इस तरह से शौर्य्य निज दिखलाइये ।।
सुन पार्थ की यों व्यंग वाणी दुष्ट भागा जोर से ।
पर क्यों पिछड़ते भीम ऐसे क्रूर कामी चोर से ।।

अति वेग से दौड़े तथा चोटी पकड़ ली नीच की ।
औ क्रोध से ऊपर उठा पटका, दशा सम मीचु की ।।
मारी चपत बहु खींचकर चोटी पकड़ उसकी वहाँ ।
जब यत्न करता बैठने का धर पटकते फिर तहाँ ।।

यों भीम ने उसका कचूमर मार घूसों लात से—
ऐसा निकाला रो पड़ा वह वज्रवत आघात से ।।
यों मार, घुटने टेक दोनों, बैठ छाती पर गये ।
फिर मारने मुक्के लगे, तब होश उसके उड़ गये ।।

मुख से बही तब रक्त धारा, ओष्ठ उसका फट गया ।
अति क्रोध में हैं भीम, लखकर पार्थ को आई दया ।।
वैधव्य का क्या ख्याल तुमको दुःशला का है नहीं ।
नृप धर्म की आज्ञा उलंघन यों न हो जाये कहीं ।।

इसने दिया है क्लेश कृष्णा को, जिसे अति कष्ट है।
इस हेतु से जीवित इसे, रखना न मेरा इष्ट है ॥
राजा युधिष्ठिर की दया से मैं सदा लाचार हूँ।
उनमें क्षमा का भाव है, मैं क्रोध का आगार हूँ ॥

तब बाण लेकर अर्ध चन्द्राकार काटे बाल सब।
रख पाँच सिर में चोटियाँ उसको किया बेहाल तब ॥
बोले पुनः यदि दान जीवन का यहाँ तू चाहता।
तो आज से नृप की सभा में, मान पाण्डव दासता ॥

यदि शर्त यह स्वीकार है तब प्राण बच सकते यहाँ।
वरना अभी तू जायगा, पापी नरक होता जहाँ ॥
था चोट से अत्यन्त व्याकुल, चेतना थी कुछ नहीं।
मानी तुरत शर्तें सभी, भय था न फिर मारें कहीं ॥

लाये महा बलि भीम तब उसको युधिष्ठर के निकट।
तन रस्सियों से बाँध कर औ रूप कर अद्भुत विकट ॥
आई युधिष्ठिर को हँसी लख सिन्धुपति की यह दशा।
पर शीघ्र ही उनके हृदय में भाव करुणा का बसा ॥

बोले दया सागर दया कर, भीम इसको छोड़ दो।
रुख देख बोली द्रौपदी अब दास का मुख मोड़ दो ॥
जाये नगर अपने समझ यह मृतक सिन्धु नरेश है।
है पाण्डवों का दास पर धारे हुए नृप वेश है ॥

स्वीकार की फिर दासता उसने सभी के सामने ।
छोड़ा उसे तब भीम ने होकर बहुत ही अनमने ।।
कुछ याचना सुन धर्म को आई दया बोले तभी ।
करता तुम्हें हूँ मुक्त पर ऐसा न फिर करना कभी ।।

थी नीज की संगत अतः फल में मिला अज्ञान यह ।
आशा मुझे है आज से तुझको रहेगा ध्यान यह ।।
अपमान जो करते सती का, फल यथा मिलता उन्हें ।
उनसे न यों व्यवहार करना पूज्य जग कहता जिन्हें ।।

जिन नारियों का पति-चरण-रत ही महत्तम धर्म है ।
जिन शुद्ध हृदया का सदा कुल की शुश्रूषा कर्म है ।।
है नारि ऐसी द्रौपदी, मन इन्द्रियाँ उसकी स्ववश ।
अपमान उसका कर तुम्हें, जयद्रथ मिला सब विधि अयश ।।

इस हेतु छोड़ कुकर्म अब तुम प्रेम ईश्वर से करो ।
अपने सुबद्ध समाज में निर्दिष्ट कृत पर मन धरो ।।
कीजे प्रयत्न वही कि जिससे, धर्म कार्य महान हो ।
प्रभु दे सुबुद्धि तुम्हें, तुम्हारा सब तरह कल्याण हो ।।

नत् माथ जयद्रथ ने करे स्वीकार तब सारे वचन ।
लेकर विदा वह चल दिया अपमान भूषित खिन्न मन ।।
अत्यन्त पाण्डव थे दुखी लख जो हुआ उस काल था ।
पर समझ धीरज था धरा दुर्भाग्य का वह जाल था ।।

अत्यन्त लज्जित हो गया वह, सिर किये नीचे चला ।
सच है कुसंग मिले न जग में, है नरक उससे भला ॥
उस आततायी को तजा जीवित न अच्छी बात थी ।
पर दुःशला के संग में करनी न यों दुर्घात थी ॥

यह जान कर सद् भावना सबकी वहाँ पर द्रौपदी ।
थी पी गई सबसे बड़ी संतोष की शुचि औषधी ॥
सब रुचि रहे जिस भाँति पाण्डव की उसे स्वीकार था ।
सद्धर्म वादिन द्रौपदी का यह सदा व्यवहार था ॥

पर नीति कहती है पिलाओ दूध जितना सर्प को ।
वह त्याग सकता है नहीं अपने सहज विष दर्प को ॥
गृह त्याग कर हरिद्वार आया शक्ति पाने के लिये ।
की भक्ति उसने शम्भु की बदला चुकाने के लिये ॥

शिव रूप में आये महात्मा एक औ' उससे कहा ।
जो माँगना हो माँग ले सम्पत्ति सुख वैभव महा ॥
माँगा न उसने और कुछ बोला मुझे वर दीजिये ।
रण में पराजित पाण्डु सुत हों, शरण मेरे कीजिये ॥

उत्तर मिला उसको कि ऐसा हो कभी सकता नहीं ।
पाना विजय रण में कभी इन पर न सम्भव है कहीं ॥
पर युद्ध में तुम एक· दिन इक छोड़ केवल पार्थ को ।
हो अन्य को पीछे हटा सकते दिखा पुरुषार्थ को ।

कृष्णा सती जब तक रहेगी, संग में उनके यहाँ।
उसके प्रबल शुचि सत्य से, कोई न टिक सकता वहाँ॥
अत्यन्त पार्थ अजेय हैं, उनको नहीं रण में कभी।
हैं देवता भी जीत सकते, यदि लड़ें मिलकर सभी॥

शिव-दिव्यशर वह पाशुपात भी आज उनको प्राप्त है।
हैं जो अजेय अखंड सारे विश्व में, विख्यात है॥
हैं लोक पालों से मिले कुछ अस्त्र ऐसे और भी।
जिससे पराजित युद्ध में अब वे न हो सकते कभी॥

पाना विजय होगा न सम्भव कृष्ण जिसके साथ है।
संहार होगा पापियों का सोचने की बात है॥
कह बात यों शिव रूप मुनि तब चल दिये कैलाश को।
औ' मूढ़ जयद्रथ भी गया घर प्राप्त हो नैराश्य को॥

## द्रौपदी पाण्डवों के साथ विराट नगर में

बारह बरस बीते यथा विधि, धर्म ने सब से कहा।
'अज्ञात का यह वर्ष आया, कष्टदायी है महा॥
सोचो जहाँ रहकर बितायें, समय उस सुस्थान को।
पूरी करें हम शर्त औ' लें, राज्य, सुख-सम्मान को'॥

पहिले विचार हुआ कि सब मिल कन्दराओं में रहें।
तपसी व मुनि, योगी, सरिस, सह कष्ट, तप सारे सहें॥
पर भय वहाँ था यह कि वे सब सहज जाने जायेंगे।
औ' खुल गया यदि भेद तो निश्चित महा दुख पायेंगे॥

प्रस्ताव आया पार्थ का, जो जानते सब की दशा।
'रहना विराट प्रदेश में' यह मंत्र सबके उर-बसा॥
यह मत्स्य का अधिराज अतिशय धर्म रत और वृद्ध है।
हम पाण्डवों में प्रीति उसकी अन्यथा भी सिद्ध है॥

यह तो सरल है हम रहें छिप कर नगर में भी कहीं।
पर द्रौपदी के विषय में यह बात कब होगी सही ॥
घटना हुई यदि हाल की सी, कष्ट पायेगी घना।
इस भाँति कृष्णा की सुरक्षा के लिये है डर बना' ॥

यह कह हुये वे मौन सहसा शेष धैर्य न कुछ रहा।
'हा कर सकेगी कार्य कब वह अन्य के, दुख है महा' ॥
जिस पुण्य प्रतिमा के सहारे से सदा आश्रित जिये।
चिन्तित खड़े थे पार्थ उसके ही सहारे के लिये ॥

चिन्ता प्रकट थी पार्थ की, लख द्रौपदी बोली तभी।
'मेरे लिए क्यों हो रहे हैं प्राणप्रिय, चिन्तित अभी ॥
जो योग्य होगा कार्य मेरे, मैं उसे स्वीकार कर—
करती रहूँगी अवधि भर, कर्त्तव्य-समय विचार कर' ॥

होकर निराश तभी कहा नृप धर्म ने, "सब जानते।
पांसे घुमाने में मुझे सब श्रेष्ठ कह सम्मानते ॥
शिक्षक रहूँगा इस कला का, विप्र बन कर मैं वहाँ।
औ कंक होगा नाम मेरा ईश हो रक्षक तहाँ" ॥

तब भीम बोले "नाम बल्लव बदल कर अपना सुनो।
नृप-पाकशाला में सदा भोजन बनाऊँगा गुनो ॥
भोजन बनाने की कला में हूँ निपुण सब मानते।
रुचिकर अधिक भोजन किया करता सभी यह जानते ॥

यो स्वयं का भोजन बनाया नित्य प्रति पाकर वहाँ।
मैं रह सकूँगा गुप्त इसमें शेष संशय है कहाँ॥
है अन्यथा संदेह कोई देख कर खाते कभी।
यों कह न दें हूँ भीम मैं औ' भेद खुल जाये सभी"॥

फिर पार्थ बोले 'द्रौपदी दुख से सताई संग है।
चिंतित रहा करती सदा ज्यों नारियों का ढंग है॥
इसक लिये मैं सोचता हूँ उचित भी लगता यही।
कुछ कार्य ऐसा मैं करूँ ज्यों रह सकूँ संग में वहीं॥

धर वेश सुन्दर नारि का, वेणी सजा निजबाल की—
कर में पहिन कर चूडियाँ बिंदी लगाकर भाल की—
घोषित करूँगा, मैं वहाँ मेरा बृहन्नुला नाम है।
बाजा बजाना, नाचना-गाना सिखाना, काम है"॥

रह द्रौपदी के संग में शिक्षक रहूँ संगीत का।
समझे मुझे दुनिया नपंसुक वचन यह है नीति का॥
देता रहूँगा सान्त्वना मैं द्रौपदी को नित तहाँ।
इस विधि न होगा दुःख कुछ भी द्रौपदी को अब वहाँ"॥

बोले नकुल "है ज्ञान मुझको अश्व-विद्या का महा।
मैं कार्य माँगूँगा नृपति से अश्व-पालन हित तहाँ॥
हूँ जानता करना दवा औ' चाल सिखलाना सभी।
है नाम ग्रन्थिक, मैं कहूँगा याद यह रखिये सभी"

सुन कर सभी की बात यों सहदेव भी बोले तभी ।
"गौ पालना करता रहूँगा बात यह समझें सभी ।।
इस कार्य का मुझको बहुत अनुभव तथा दृढ़ ज्ञान है ।
बस याद रखना आज से मम तन्तिपाल सुनाम है" ।।

"सेवा स्वजन की औ' अतिथि सत्कार अब तक है किया ।
कुल मान मर्यादा रखी उसको कहाँ गिरने दिया ?
पर देख अवसर आज अपना कुछ न मुझको शोक है ।
मैं कार्य कर सकती मिले जो भी मुझे संतोष है ।।

हो जानते सैरन्ध्रियाँ रहतीं सदा रनिवास में ।
मैं भी रहूँगी अब अवधि भर सुदेष्णा के पास में ।।
सैरन्ध्रियों का काम होता केश के शृंगार का ।
यह काम मैं हूँ जानती, बस यत्न यह उद्धार का ।।

रानी विराट नरेश की कोमल हृदय औ' सरल हैं ।
सेवक सभी संतुष्ट हैं करते महल में टहल हैं ।।
मुझको वहाँ रहते हुये सब भाँति रक्षित जानिये ।
होगा सहज यह कार्य मेरे हित इसे सच मानिये" ।।

इस योजना अनुसार था प्रस्थान मत्स्य प्रदेश को ।
थी ग्लानि अति संकोच भी पर, पाण्डु-वंश दिनेश को ।।
पथ कंकरीला था तथा पढ़ती चढ़ाई थी खड़ी ।
अभ्यस्त थी कृष्णा न पथ की हो गई थक कर खड़ी ।।

है श्रमित कृष्णा जान कर राजा युधिष्ठिर ने कहा ।
सुनिये धनंजय द्रौपदी को कष्ट होता है महा ।।
इस हेतु अपनी धर्म पत्नी को सहारा दीजिये ।
है समय थोड़ा, दूर जाना है, विलम्ब न कीजिये ।।

आदेश पाकर पार्थ ने निज पीठ पर बैठा लिया ।
इस भाँति कृष्णा ने सहारा पार्थ का था पा लिया ।।
पहुँचे नगर के पास देखी भूमि जो श्मशान थी ।
वट वृक्ष पर आयुध रखे सब यह बड़ी पहिचान थी ।।

आये नगर के पास जब सब, था समय वह रात का ।
अब हो विलग चलने लगे भय था न कोई बात का ।।
मंदिर जहाँ पर मातु गोरी की सजी थी आरती ।
पहुँची अकेली ही वहाँ पर पार्थ-पत्नी भारती ।।

नत माथ, उसने करुण स्वर में अर्चना मां की करी ।
'उज्ज्वल रहे कर्त्तव्य मम निकलूँ तपस्या में खरी' ।।
हे मातु आई है निबल तव द्वार पर, रक्षा करो ।
पति की, सहित सब बन्धुओं के, दुःख बाधायें हरो ।।

देखा पुजारी ने कि देवी तुल्य है कोई खड़ी ।
है वस्त्र साधारण बहुत, मुख पर निराशा की लड़ी ।।
आ वृद्ध ने पूँछा कि "बेटी तुम अकेली कौन हो ।
क्या दुःख है, मुझ से कहो, क्यों इस तरह बेचैन हो ?

धोखा कभी ये दे न सकते नेत्र मेरे जानिये ।
लक्षरण तुम्हारा है महारानी सरिस सच मानिये ॥
तुम में महत्ता के सभी गुरण हैं छिपे मैं देखता ।
तुम लग रही जैसी, नहीं वैसी तुम्हें मैं लेखता" ॥

थी मौन अब तक द्रौपदी बोली नवाकर माथ यों ।
'मुझ भाग्यहीना पर पिता सम आपका अनुराग क्यों ?
मैं सेविका थी एक, राजा धर्म के रनिवास की ।
उनका गया लुट राज, चिन्ता है मुझे आवास की ॥

वह वृद्ध सहसा ठिठक कर बोला कि देवी भाग्य है ।
तुम देवतुल्य महीप सेवा में रहीं सौभाग्य है ॥
राजा तथा रानी हमारे हैं हितैषी धर्म के ।
गौ विप्र के प्रतिपाल है, मर्मज्ञ है सत्कर्म के ॥

चलिये अभी रनिवास में रानी सुदेष्णा हैं जहाँ ।
उपयुक्त जो हो कार्य कीजै रह सुरक्षित अति वहाँ" ॥
यों संग में लेकर पुरोहित को गई रनिवास में ।
लख द्रौपदी को शीघ्र रानी ने बुलाया पास में ॥

बोली महारानी सरल-चित 'देवि परिचय दीजिये ।
औ' कार्य जो तुम जानती हो, भार उसका लीजिये' ॥
सादर प्रणाम किया तभी बोली विनीता द्रौपदी ।
'हे महारानी ! नियति ने दुख-व्याधि मुझको सौंप दी ॥

मैं थी सजाती केश सब के, पाण्डु-सुत-रनिवास में।
उजड़ा जभी से इन्द्रप्रस्थ न है सहारा पास में ॥
यदि आप निज शृंगार का सब सौंप मुझको भार दो।
सेवा करूँगी मैं यहाँ रह, बस यही उपकार दो ॥

"देवी" कहा यों फिर सुदेष्णा ने, 'न यह कहना कभी।
तुम लक्ष्मी साकार हो, आदर मिलेगा वह सभी ॥
मुँह पर छलकता स्वाभिमान स्वरूप अनुपम दीखता।
अन जान भी व्यवहार का यह भेद रखना सीखता" ॥

'जिस काम को थी चाहती लगता न वह मिल पायगा'।
मनतव्य उनका दीखता था व्यर्थ सारा जायगा ॥
फिर सोच मन में लक्ष्य को बोली पुनः वह नम्र हो।
"सच हैं महारानी, प्रजापालक तुम्हीं बस नम्र हो ॥

जिनको न नृप के राजमद में, प्रिय प्रजा का ध्यान हो।
उनको न मिलती लोक प्रियता, आपको यह ज्ञान हो ॥
मैं धन्य समझूँगी स्वयं को यदि सहारा दो मुझे।
जो दीप आशा का जलाया था न वह पल को बुझे ॥

साहस न पड़ता था सुदेष्णा का करे स्वीकार वह।
सैरन्ध्रि का दे कार्य, उसको थी न यह कुछ बात सह ॥
कृष्णा गई चट ताड़ ईर्ष्या रूप की वह कर रही।
भयभीत हो रानी इसी से भाव उलटे भर रही ॥

बोली कि रानी सेविका जो स्वामिनी के संग में।
करती कभी भी भूल कर विश्वासघात उमंग में॥
उसको अनेकों जन्म तक मिलता नरक का वास है।
इसका मुझे है ज्ञान सब, मुझ पर मुझे विश्वास है॥

हैं पाँच मेरे अति सबल, गंधर्व रक्षक साथ में।
औ' प्राण भी मेरे सदा, रहते रमे निज नाथ में॥
मेरी सभी वे धर्म युत रक्षा सदा करते किया।
देते कठिनतम दण्ड दुष्टों को बुझाते कुल दिया।

देता न जूठन जो मुझे औ' पैर धुलवाता नहीं।
रक्षक सभी रहते प्रसन्न सदा न संशय है कहीं॥
पर जो समझ अबला मुझे अति निबल साधारण कहीं।
हैं चाहते अपमान करना, बच नहीं पाते सही॥

पहिचान कर उसको सदाचारिन सुदेष्णा ने कहा।
देवी तुम्हारी बात से शंका न भय कुछ भी रहा॥
बातें रहेगी ध्यान मुझको, जो अभी हितकर कहीं।
आदेश मेरा है रहो, मेरे महल में अब यहीं॥

उस ओर पाँचों भाइयों की योजना अनुसार से।
था कार्य समुचित मिल गया नृप के सुहृद व्यवहार से॥
सबने सम्भाला कार्य अपना अवधि-दिन कटने लगे।
कोई न पाया जान उनको, अलग सब रहने लगे॥

## राजवसति धर्म

राजा युधिष्ठिर से, हुए थे जिस घड़ी आश्रित विदा ।
मुनि धौम्य ने साहस दिलाया, कह कि 'यह भी था बदा' ।।
सम्बोध कर तब पाण्डु वशज कहा "यह सब मानना ।
आश्रित नृपति के रह बिताना समय, दुष्कर जानना ।।

व्यवहार नृप से, मानना है, सर्प-क्रीड़ा सम कठिन ।
सहना तुम्हें होगी कभी कुछ ग्लानि की पीड़ा, कठिन ।।
यों कार्य कीजे राजभृत्यो ! नृपति आश्रय पा यदा ।
खोने न पाओ बंधु तुम सब, मान की प्रिय सम्पदा ।।

कहते यही है जन सभी यदि भूप का आश्रय मिले ।
तो मानिये हैं भाग्य के उत्तम कुसुम सत्वर खिले ।।
पर नीति कहती है कि राजा का न कुछ विश्वास हो ।
जो आज पाया है वही अपना, न कल की आस हो ।।

सोचो न मन में 'मैं परम प्रिय नृपति का हूँ' भूल से।
रजकण समझते नृपति गिरि को, सुरभि गहते धूल से॥
पूछे बिना शुभ मंत्रणा भी नृपति को मत दीजिए।
विश्वास हो दृढ़तर नृपति का जिस तरह वह कीजिए॥

जो प्राज्ञ हैं रखते नहीं सम्बन्ध ऐसे व्यक्ति से।
है चाहता करना विजित जो, नृपति को, निज शक्ति से॥
कीजे न कानाफूसियाँ नृप की सभा में बैठ कर।
बोलो न कोई बात स्वर दे या अकड़ कर, ऐंठ कर॥

प्रत्यक्ष और परोक्ष में गुण गान नृप का कीजिए।
अवसर मिले तो योग्यता अनुसार सम्मति दीजिए॥
जितना जहां हो प्राप्त उसको ग्रहण कर आभार से।
रखिये नृपति अनुकूल, निज को, इस तरह व्यवहार से॥

अच्छा नहीं होता करें यदि मंत्रणा बहु बार हम।
अथवा बतायें, सभी बातों का, नृपति को, सार हम॥
दिन रात, गर्मी और सर्दी सब समय समभाव से।
सेवा नृपति की कीजिए सब, वर्ष भर, अति चाव से॥

इस भाँति के व्यवहार से यदि वर्ष यह कट जायगा।
तो भाग्य नभ पर उमड़ता, घनघोर दुख, छट जायगा॥"
उपकार माना धर्म ने, माथा नवा कर यों कहा।
"माता तथा चाचा विदुर सम, आप उपकारी महा"॥

## कीचक वध

एक दिन उसको विचरती देख नृप के महल में।
पूछी बहिन से बात कीचक, "आपके जो टहल में॥
है कौन वह अति सुन्दरी, देखा नहीं पहिले इसे।
मन चाहता है आज मेरा प्राप्त करने को उसे॥

आश्चर्य होता है मुझे, यह कर रही क्यों काम है।
है शीलता सुकुमारता, मुख भव्य, रूप ललाम है॥
कुछ योग्य सेवा आपके, यह जान पड़ती है नहीं।
सौन्दर्य की समता जगत में, आज मिलती है नहीं॥

इस सुन्दरी को देख, मन मेरा हुआ आसक्त है।
अब धैर्य मुझमें है नहीं तन मन हुआ उन्मत्त है॥
ऐसी जगत में आज तक मैंने न देखी भामिनी।
मन हो गया है लुब्ध मेरा देखकर यह कामिनी"॥

बोला पुनः वह द्रौपदी से "कौन हो, क्या नाम है ?
किसकी सुता हो दासिता, क्यों कर रही इस धाम है ।।
अति रूप सुन्दर दिव्य छवि, लावण्य मुख आभा, कहीं
सुकुमार तेरी-सी जगत में, आज मिलती है नहीं ।।

दासित्व जो तुम कर रहीं वह, योग्य नहिं कुछ दीखता ।
तव कांति औ' कमनीयता, लख चन्द्रमा भी खीझता ।।
सुख भोगने हित योग्य हो, हर दृष्टि से संसार के ।
तुझमें सभी गुण विद्य हैं शुभ, कर्म, धर्म विचार के ।।

यदि चाहती हो भोगना, सुख द्वार मेरा है खुला ।
आजा निकट मेरे कि, मैं लूं बाँह में तुझको झुला ।।
चाहो अगर तो छोड़ सकता, रानियाँ अपनी सभी ।
स्वीकार हो अपनी बनालो, दासियाँ उनको अभी" ।।

सुन द्रौपदी बोली "महाशय कह रहे क्या आप हैं ?
अर्धाङ्गनी का धर्म कर्म न जानते क्या आप हैं ।।
है ब्याह मेरा हो गया, अरु अन्य कर सकती नहीं ।
दो ब्याह जीवन में कहो, होते सुने हैं क्या कहीं ?

तुम प्रेम पत्नी से करो, है धर्म पत्नी आपकी ।
जो कुछ कहा है आपने, है बात निश्चित पाप की ।।
लज्जा न आई क्यों तुम्हें कहते हुये, क्या बात है ?
सुन आपकी यह नीच इच्छा, जल रहा मम गात है" ।।

अति काम में आसक्त कीचक गुन न सकता बात था।
सुन द्रौपदी की बात जलता दुष्ट का तन गात था॥
"सैरन्ध्रि क्या तुमने अभी तक है न जाना, कौन हूँ ?
साला महीप विराट का, मैं और सेनाध्यक्ष हूँ" ॥

सुन द्रौपदी बोली "अरे क्यों वासना में लीन हो।
तुम, धर्म औ' कर्त्तव्य पथ से जान पड़ते हीन हो॥
हूँ कह चुकी जैसा तुम्हें मैं, ब्याह मेरा हो गया।
यह जानकर भी क्यों, नहीं आती तुम्हें कीचक हया॥

गंधर्व रक्षक पाँच सब, दिन रात रहते संग हैं।
वे वीर योधा हैं बड़े, औ' व उनके अंग हैं॥
यदि देख लेंगे वे तुम्हें तो, प्राण बच सकते नहीं।
रक्षा न कोई कर सकेगा, हों भले फिर इन्द्र ही॥

आसक्ति वश अज्ञानता है छा रही यों आप पर।
ज्यों नीच जयद्रथ-मन डिगा था, द्रौपदी प्रति, पाप पर॥
तुम जानते क्या हो नहीं, उसकी दशा क्या थी हुई।
अच्छी मरम्मत की गई बस मृत्यु ही नहिं थी हुई" ॥

छल बल दिखाया बहुत कीचक ने, नहीं उसकी चली।
बोला सुदेष्णा से "बहिन मेरी न दाल यहाँ गली॥
अब जान पड़ता है, न मुझको शान्ति मिल सकती कभी।
यह जिस तरह से मान जाये बात करना वह सभी" ॥

कर कुछ बहाना काम का थी द्रौपदी भेजी गयी।
कीचक भवन में, एक दिन, वह देवि सम निष्ठामयी ।।
फिर बात की उससे वही, जिसको न थी वह चाहती।
मारा तमाचा खींचकर, पहुँची सभा में भागती ।।

"ऐ भूप प्रवर विराट! कीचक कर रहा अपमान है।
अब न्याय इसका कीजिये, पापी बहुत शैतान है ।।
साहस करे जो पाप का, दें दण्ड यह अभिप्राय है"।
था द्रौपदी ने यों कहा जो उचित कहता न्याय है ।।

कामान्ध कीचक को तनिक भी, ध्यान न सत् का रहा।
चोटी पकड़ कर लात मारी, द्रौपदी को, औ' कहा ।।
"अपमान मेरा कर रही है तू, सभा के बीच में।
मुझको समझती कुछ नहीं, स्थान देती नीच में" ।।

यों हाथ फिर उसका पकड़ झटका, दिया अति जोर से।
सारी सभा में खलबली थी, मच गई उस शोर से ।।
कोई नहीं कुछ कह सका, औ' सब ठगे से रह गये।
थे कंक, वल्लभ, भी वहाँ, हो मौन लखते रह गए ।।

"सारी सभा के देखते, है पाप ऐसा हो रहा।
हो पाप के भागी सभी, सद्धर्म सबका खो रहा ।।
गंधर्व रक्षक पाँच मेरे, सहन कर सकते नहीं।
इस काल संकट में पड़े हैं, पास आ सकते नहीं ।।

रे मन्दमति अति नीच कीचक, सत्य अब यह जान ले ।
तू बच नहीं सकता कभी बस, मौत अपनी मान ले ॥
नरपति विराट बचा सकें क्या जग बचा सकता नहीं ।
धोने पड़ेंगे हाथ जीवन से, न छिप सकता कहीं ॥

हे नृपति सम्बन्धी समझ तुमने न सोचा न्याय है ।
निर्मम बने तुम देखते, कटती सभा में गाय है ॥
लज्जा तुम्हारी धुल चुकी, मुँह में लगा लो कालिमा ।
श्रीहत हुए इस पाप से सब, मिट गई यश लालिमा" ॥

रोते हुए लख द्रौपदी को नृपति-पत्नी ने कहा ।
"अति पाप कीचक कर रहा है अब नहीं धीरज रहा ॥
सैरन्ध्रि ! तुम याचो अगर, कीचक उचित फल पायगा ।
हो मौत का भागी अधम, जीवित नहीं रह पायगा" ॥

सुन द्रौपदी बोली "न दे अब दण्ड कोई भी इसे ।
यह दण्ड पायेगा उसी से अति, सताया है जिसे ॥
भगवान देना चाहता यों जब किसी को कष्ट है ।
तब पाप सिर पर बैठता है, ज्ञान होता नष्ट है" ॥

सम्बोध कर फिर भीम को बोली तनिक आवेश में ।
"जीना नहीं अब चाहती हूँ इस तरह, इस वेश में ॥
अपमान से जीना नहीं हूँ चाहती अब एक क्षण ।
बदला चुकाना नीच से, मैंने किया है आज प्रण ॥

मैं ही रहूँगी जगत में अथवा यही रह जायगा।
अपमान का विष अब नहीं मुझसे पचाया जायगा॥
रक्षक बने थे आप सब, क्यों हो रह यों घात है।
क्यों लाज रक्षण हो न पाया सोचिए क्या बात है?

जब देखती हूँ मैं युधिष्ठिर को खड़े नित सामने।
सम्मान करते मत्स्य नृप का दास से हो अनमने॥
यह देखना होता सहन मुझको नहीं, अति खेद है।
यों अन्य चाकर, औ' युधिष्ठिर में, कहो क्या भेद है?

मैं पाकशाला में कभी जब देखती हूँ आपको।
भोजन बनाते या, जिमाते सह कठिन दुख ताप को॥
धर रूप आर्य बृहन्नला का हैं सिखाते नारियाँ।
गाते, बजाते, नाचते, पहिने रंगीली साड़ियाँ॥

मेरा हृदय फ़टता यथा जैसे गिरी गड़ गाज हो।
होते न बाहर प्राण क्यों तन से भला कोई कहो॥
हा सुर न सकते जीत जिसको, वह बने नारी यहाँ।
साड़ी पहिन कर नाचते गाते धनुर्धारी महा॥

भैया नकुल के रूप सा कोई न जग में अन्य है।
वे अश्वविद्या, शक्ति मेधा में, सहज सम्पन्न हैं॥
अब कर रहे हैं अश्व पालन, जो वहुत लघु काम है।
कुछ भी समझ आता नहीं, क्यों ईश इस विधि वाम है॥

दिन भर चराते गाय हैं सहदेव, जो क्षण हेतु भी--
करते न कोई कार्य थे, यह जानते हैं हम सभी ।।
चलते समय माँ ने कहा था 'प्राण सम सहदेव हैं' ।
उनको सुरक्षित नित रखूँ, मुझको मिला आदेश है' ।।

अब देख उनकी यह दशा, मुझसे रहा जाता नहीं ।
मैं विवश हूँ कर्तव्य से, यह दुख सहा जाता नहीं ।।
कैसे जगाऊँ सुप्त जन को ? प्यार से हुँकार से ।
अब आप ही बतलाइये, हूँ मैं व्यथित दुर्व्यवहार से" ।।

बोले महोदर "भेज देता, तुरत ही यमलोक मैं ।
अपमान का बदला चुकाता, दूर कर दुख शोक मैं ।।
है धर्म, भइया की न आज्ञा मुझे यह सच मानना ।
पर अब न वह जीवित रहेगा, बात यह सच जानना ।।

रच जाल कृत्रिम प्रेम का, उसको बुलाओ पास में ।
पर तुम न आना, मैं मसल दूँगा उसे भुजपाश में ।।
है प्रण हमारा आज कीचक बच नहीं सकता कहीं ।
अब धैर्य मन में धार लो, कुछ नीच कर सकता नहीं" ।।

जाकर कही तब द्रौपदी ने, दुष्ट कीचक से तभी ।
कुछ बात ऐसे मर्म की, जिसको न वह समझा कभी ।
बोली 'मिले अवसर तुम्हें यदि, रात में तब आइये ।
क्या चाहते हैं आप मुझको पूर्णतः समझाइये' ।।

उस रात को कीचक गया, दुर्वासना पथ लीन हो।
पर थे वहाँ पर भीम सोये द्रौपदी बन दीन हो ।।
झट से पकड़ उसको पछाड़ा होश उसके उड़ गए।
मुक्का जमाया एक उसके अंग सारे सो गए ।।

'बलपूर्वक आश्रित जनों पर दृष्टि व्यसनी थी कभी।
सैरन्ध्रि के अपमान का फल दुष्ट ले मुझसे अभी' ।।
कह, ज़ोर से दाबा गला यों प्राण पंछी उड़ गए।
अरमान नर कुल अधम के यों पंक में ही गड़ गए ।।

सब बन्धु बान्धव देख कीचक को मरा, रोने लगे;
दुर्गति हुई थी जिस तरह लख धैर्य वे खोने लगे;
वे कुछ समझ पाये न इसको मारने वाला कहाँ,
सब तर्क करते सोचते, पर कह न कुछ पाते तहाँ ।।

'सैरन्ध्रि के ही रूप पर कीचक सदा आसक्त था।
है मृत्यु का कारण यही, वह प्रेम में उन्मत्त था' ।।
फिर देखकर सैरन्ध्रि को सब रोष में थे भर गए।
हम मार डालेंगे इसे भी, कह सभी निज घर गए ।।

उपकीचकों के मोह में पड़, भूप आज्ञा दे गए।
सैरन्ध्रि कीचक संग जलाने बाँधकर सब ले गए ।।
अब वह जलाई जायगी जिन्दा, समझ रोने लगी—
सैरन्ध्रि थी, अतिशय दुखी व्याकुल तथा करुणापगी ।।

उसने पुकारा दुखित हो निज रक्षकों को झट तहाँ।
बोली, कि 'आओ शीघ्र, मेरे हित छिपे बैठे कहाँ ।।
पापी सभी हैं चाहते मुझको जलाना इस घड़ी।
अब नाव मेरे पुण्य की दुर्भाग्य तट पर है खड़ी' ।।

सुन आर्त वाणी द्रौपदी की, भीम चिन्तित हो गए।
झट लाँघकर दीवार महलों की बड़ी बाहर गए ।।
अति कड़क कर बोले कि 'सैरन्ध्रि यों नहीं डरना कभी।
यमलोक इनको भेजकर, तुमको बचाता हूँ अभी ।।

झटपट बड़े से वृक्ष को ले भीम आये दौड़ते।
कथनी तथा करनी सभी के साथ नाता जोड़ते ।।
यह सोचकर गंधर्व आया, सब भगे श्मशान से।
हो मुक्त लौटी द्रौपदी नृप गेह को अतिमान से ।।

वे जान ले भागे, मगर था भीम ने छोड़ा नहीं।
यों मार डाला कीचकों को क्रोध में तत्क्षण वहीं ।।
दे सान्त्वना फिर द्रौपदी को भीम थे आये वहाँ।
धर रूप वल्लव का, नृपति की पाकशाला थी जहाँ ।।

कुछ भी समझ आता नहीं भयभीत उस क्षण भूप था।
बोला कि 'दुख का हेतु सैरन्ध्रि बस तुम्हारा रूप था ।।
करके नये कौतुक यथा दुख और दिखलाना नहीं'।
सैरन्ध्रि को आज्ञा मिली अब महल में आना नहीं ।।

धीरज मिटा तत्काल ही उस न्याय पथ पर दक्ष का।
की प्रार्थना फिर द्रौपदी ने, समय माँगा पक्ष का।
"भय मोह में पड़कर किये क्यों पाप यों इस जगत में।
क्यों कालिमा लिपटी तुम्हारी धर्म रूपी रजत में॥

बगुला भगत से दीख पड़ते स्वार्थ में लवलीन हो।
बस मुख्य कारण है यही, नृप आप सब जो दीन हो॥
हो भूप कहलाते मगर कब भूप के तुम योग्य हो।
सद्धर्म औ' कर्तव्य पथ पर तुम नितान्त अयोग्य हो॥

क्या देखते सब के नहीं, थी लात मारी तब मुझे।
चोटी पकड़कर खींचता था दुष्ट व्यभिचारी मुझे॥
इस पर जलाने का मुझे आदेश था तुमने दिया।
थी पापियों की कुमति पर, अपमान नृप मेरा किया॥

धिक्कार है तुमको तुम्हारी शक्ति को इस न्याय को।
धिक्कार है उन पापियों के नीचतम् अभिप्राय को।
सारी सभा के सामने, अबला बिलखती देखकर।
थे मूढ़ से बैठे रहे, धिक्कार क्षत्रिय वेश पर"॥

बोले विराट कि "बस करो सैरन्ध्रि, हूँ मैं मानता।
थी भूल मेरी, किन्तु, करता न्याय यदि तब जानता॥
यह थी हमारी भूल इसमें आप का क्या दोष है।
अपमान होता निबल का तो ईश करता रोष है"॥

## राजा विराट पर कौरवों की चढ़ाई

त्रिगर्त देश के महाबली जब भूप सुशर्मा ने देखा।
कीचक रहा नहीं अब जग में, मौका लड़ने का लेखा ॥
कहा कर्ण से "तंग किया था, हमको बनकर वीर बली।
यद्यपि किये प्रयत्न अनेकों मैंने किन्तु न दाल गली ॥

कीचक का वध हुआ, अतः बदला लेना है अब मुझको।
नृप विराट से राज्य छीनकर दण्ड कड़ा देना उसको" ॥
बात जँच गई सबको, बोले कर्ण तभी दुर्योधन से।
"सबसे बड़ा कहाता जग में मत्स्यराज बस गोधन से ॥

मज़ा चखाना है अब उसको छीन सभी उसकी गायें।
किन्तु काम ऐसा करना है जिस पर तनिक न पछतायें" ॥
आज्ञा दी तब दुर्योधन ने कह "स्वीकार सभी बातें।
करें चढ़ाई हम भी उस पर, अवसर देख करें घातें" ॥

किया सुशर्मा ने यों हमला, ले अपनी सेना सारी।
एक ओर से, मार काट औ' ऊधम करता था भारी॥
ओर दूसरी कौरव सैनिक गोधन पर आ टूट पड़े।
हरी सम्पदा गौ विराट की, और युद्ध हित रहे खड़े॥

"कहाँ छिपा राजा विराट है" कहा बुला उसको लाओ।
गायें यहीं छोड़ गोपालक, लौट गाँव अपने जाओ॥
नृप से गोप कही आ बातें, तैयारी की लड़ने की।
रणभेरी तब बजी जोर से, बात बड़ी थी अड़ने की॥

ग्रन्थिक, तन्तपाल, वल्लव औ' कंक पधारे इस रण में।
गऊओं के उद्धार हेतु थी, सेना सभी जुटी क्षण में॥
घमासान अति युद्ध सुशर्मा की सेना से हुआ वहाँ।
कटने लगे वीर बहुतेरे अस्त्र-शस्त्र से जहाँ तहाँ॥

स्वयं सुशर्मा वीर बड़ा था, वीर सभी योद्धा उसके।
देख युद्ध ऐसे वीरों संग, निर्बल प्राण बचा खिसके॥
सेना भगी प्राण ले अपने, लगे विराट हाथ उनके।
बन्दी देख नृपति को, इस विधि भाल पाण्डु सुत के ठनके॥

बढ़कर आगे घेर लिया चट गायें सभी छीन करके।
मार भगाया बलवीरों को रिपु को विमुख क्षीण करके॥
युद्ध भयानक था उस क्षण का, उभय पक्ष थे बलशाली।
एक ओर सत्ता का बल था, दूजा सत्य लिये खाली॥

कट कट शीश धरा पर गिरते, हाथ पैर हो अलग अलग।
लाखों प्राण गंवाते अपने, भीम-क्रोध में सुलग-सुलग॥
पाण्डु सुतों की शक्ति, शक्ति सम प्रखर, अन्यतम् ज्वाला थी।
शत्रु शीश को काट बनातीं काली के हित माला थी॥

लड़े सुशर्मा, वल्लव दोनों हाथी सा बल धौर्य धरे।
बाण वृष्टि होती थी झरझर योद्धा दोनों ओर मरे॥
मार मार कर गदा बाण से जरजर किया सुशर्मा को।
सेना तितर-बितर हो भागी दण्ड मिला दुष्कर्मा को॥

देखा भाई मरे और सेना है शेष बहुत छोटी।
प्राण बचाकर चला सुशर्मा, वल्लव ने पकड़ी चोटी॥
मारी लात पीठ पर उसके देकर कष्ट उसे भारी।
सम्मुख किया कंक के बोले "यही सुशर्मा व्यभिचारी॥

प्राण दण्ड इसको दीजे, या दास बना रखलें घर में।
दुःसाहस था, बड़ा दुष्ट का पुनः न यह ऐसे भरमे"॥
लज्जा से मुख नीचा करके हाथ जोड़कर खड़ा रहा।
मरा नहीं इतना ही जानो, किन्तु ग्लानि में गड़ा रहा॥

हुआ युद्ध का अन्त, नृपति को मिली सम्पदा सब उसकी।
धन अपार पाया औ' फहरी कीर्ति पताका नृप यश की॥
कहा विराट नृपति ने उस क्षण, "कंक आप अब हो राजा।
स्वागत हेतु आपके अब मैं बजवाता हूँ नृप बाजा"॥

धर्मराज ने कहा "भूपमणि मैंने आज सभा पाया।
गो रक्षा का पुण्य युगों से वेद पुराणों ने गाया॥
प्रेम आपका बना रहे, है खुशी हमें इसमें भारी।
प्रेम सम्पदा से बढ़कर है नहीं सम्पदा संसारी"॥

× × ×

उधर आ चढ़ी कौरव सेना, राजमहल था जब सूना।
उत्तर चिन्तित हुआ उस घड़ी, कष्ट हृदय में था दूना॥
भौचक्का सा देख रहा था मन में धीर न उसके था।
सैरन्ध्री ने देख उसे यों सादर दिया शक्ति बल था॥

"है जो बृहन्नला महलों में रण में वह बनती काली।
उसे सारथी बना लड़ो तुम है वह अतिशय बलशाली॥
नहीं जीत सकता कोई जब साथ आपके वह होगी।
है ऐसा विश्वास मुझे, औ' आज परीक्षा भी होगी"॥

बोला राजकुमार "बिना सेना के रण होगा कैसे।
केवल मात्र अकेले लड़ना सुफल न होगा, मेरे से॥
गायें मेरी चली गईं अब राज्य हमारा जाता है।
मृत्यु सामने खड़ी दीखती, मन मेरा घबराता है"॥

सम्मुख आकर बृहन्नला बोली "क्यों ऐसा हुआ विचार।
निर्बल का रक्षक ईश्वर है समझे इसी कथन का सार॥
धारण करो कवच तुम अपना धनुष बाण लो हाथों में।
शीघ्र करो तैयारी रण की, समय न खोवो बातों में"॥

"महारथी दुर्योधन, द्रोरण, कर्ण, भीष्म, अश्वत्थामा ।
कृपाचार्य से लोहा लेना सरल नहीं जानो बामा" ।।
वह अबला है" कहा कुंवर ने "सारथि कैसे बन सकती ।
जो कुछ कहा सही सब मानूँ, बात नहीं मन को जँचती" ।।

समझाया तब बहुत उसे कर, किसी भाँति रण हित राजी ।
तीव्र चाल से रथ को हाँका, युद्ध दुदंभी फिर बाजी ।।
बोली बृहन्नला उत्तर से, "चलो जिधर अब चलना है ।
हृदय खोलकर युद्ध कौरवों से अब हमको करना है" ।।

बोलीं तभी उत्तरा[1] "औ' सखि बृहन्नला लेकर आना ।
रंग-विरंगे वस्त्र कौरव के जो रण में पा जाना ।।
गुड़ियाँ मेरी पहिन उन्हें गुड्डों को मारेगी ताना ।
कभी वीर अब बन कर इस विधि नहीं युद्ध थल में जाना ।।

होगी दशा कौरवों की ऐसी जैसी है सुनी नहीं ।
मुँह की खाकर लाज गवाँयेंगे इसमें है तथ्य सही ।।
बोली बृहन्नला "लाऊँगी जो कुछ सोचा है मन में ।
रण कौशल का मजा चखाकर छिन्न-भिन्न करके क्षण में" ।।

पकड़ी रास उड़े घोड़े ज्यों वायु रही हो चल सन सन ।
पल भर में मैदान भूमि में आये दोनों हर्षित मन ।।
देख कौरवों की सेना भयभीत हुआ उत्तर भारी ।
बोला बृहन्नला से "लौटो व्यर्थ विजय आशा सारी ।।

---

१ नृप विराट की कन्या ।

सजी धजी कौरव सेना है हाथी, घोड़े, रथ लेकर।
बड़े बड़े योधा लड़ने के हेतु, खड़े सम्मुख तत्पर ॥
नहीं रहा उत्साह शेष अब हिम्मत छूट गई सारी।
कौरव से लोहा लेना यों मृत्यु बुलाना हंकारी ॥

कर्ण, द्रोण, दुर्योधन के संग भीष्म बीच में खड़े हुए।
कृपाचार्य, अश्वत्थामा भी धनुष बाण ले अड़े हुए ॥
सारी सेना अस्त्र और हथियारों को है आज गहे।
बड़े क्रोध से हम दोनों को देखो वे सब ताक रहे" ॥

बृहन्नल ने कहा "डरो मत शत्रु न कुछ भी कर सकते।
क्षत्री के बालक जीवन में कभी नहीं रण से डरते ॥
बिना लड़े मैदान छोड़ जो प्राण बचा कर भग जाते।
ऐसे भीरु कपूत कहाते प्राण गवाँ अपयश पाते" ॥

"भीरु कहे अगजग यह सारा युद्ध न मुझसे हो सकता।
निन्दा करें सभी मेरी पर प्राण न यों मैं खो सकता ॥
कभी नहीं लड़ सकता इनसे" कह रथ से वह कूद पड़ा।
भागा बड़े वेग से पीछे, पल भर भी कब हुआ खड़ा ॥

दौड़ी बृहन्नला औ' पकड़ा औ' खींच-तान कर ले आई।
रथ पर बैठाया समझाकर युक्ति सिखाई मन भाई ॥
कहा रास पकड़ो घोड़ों की, करूँ लड़ाई मैं उनसे।
जहाँ कहूँ रथ वहीं चलाना भाग नहीं जाना रण से ॥

गये जहाँ था समी वृक्ष, चट शस्त्र उतारे ऊपर से ।
छिपा गये थे पाण्डव जिसको, ज्ञात न होने के डर से ।।
कसे सभी हथियार कमर में, धनुष बाण निज हाथ लिया ।
शेष छिपा रख दिये यथा विधि खींच डोर टंकार किया ।।

उत्तर ने पूछा" "बतलाओ हैं किसके ये वस्त्र सभी ।
पहिले भी जीवन में क्या तुम युद्ध, हेतु थी गई कभी ।।
अजब तुम्हारा पहनावा यह और वीरता युत द्रढ़ता ।
तुमसा वीर नहीं देखा है होगा यह न जान पड़ता" ।।

उत्तर मिला "भला अर्जुन का नाम आपने सुना कहीं ।
समझो वही खड़ा है सम्मुख इस क्षण दूजा और नहीं ।।
सभी अस्त्र पाण्डव जन के हैं, यह गाण्डीव हमारा है ।
हैं अज्ञात सभी रहते हम, कृत्तिम रूप सँवारा है" ।।

"कहाँ शेष पाण्डव रहते हैं कहाँ द्रौपदी है उनकी ;
क्या करते हैं काम काज वे, जगत आन करता जिनकी ।।
अर्जुन के सब नाम बताओ, तभी मान सकता हूँ मैं ।
परिचय पाये बिना आपका नहीं जान सकता हूँ मैं" ।।

"कंक जिन्हें हम सब कहते हैं वही युधिष्ठिर हैं मानों ।
बल्लव आज रसोई करते, भीम नाम उनका जानो ।।
तन्तपाल हैं नकुल और सहदेव कहाते ग्रान्थिक हैं ।
सैरन्ध्री द्रौपदी कहाती, काम सभी के सात्विक हैं" ।।

नाम बताये जब दस अपने चरण पकड़ उत्तर बोला।
"अनजाने की भूल क्षमा करिये मैं हूँ बालक भोला॥
गुरुजन अपने अनुचर की त्रुटियों पर ध्यान नहीं देते।
उसकी स्नेह भावना पर ही मुग्ध बने नित रस लेते"॥

"मैं प्रसन्न हूँ उत्तर तुमसे उठो चलो देखो कौरव—
चले जा रहे गायें लेकर" बोले पार्थ धार गौरव॥
रास पकड़ घोड़ों को हांका उत्तर से न हुई देरी।
शंख-घोष अर्जुन का सुनकर काँप उठे कौरव बैरी॥

चार बाण मारे शर पर धर, दो गुरुवर के चरणों में—
और बगल से निकल गये दो, परिचय दे गुरु कर्णों में॥
कहा द्रोण ने "महारथी यह कौन प्रणाम मुझे करता।
युद्धि भूमि में शत्रु रूप में आये का आदर करता"॥

देख तीव्र गति घोड़ों की फिर वे बोले दुर्योधन से।
"अर्जुन है, सन्देह नहीं, यह बाणों के सम्बोधन से॥
वीर नहीं अर्जुन-सा कोई दुनियाँ में सन्देह नहीं।
लड़ें सभी मिल किन्तु न हम सब उसको सकते जीत कहीं ?

किया प्राप्त है शिवशंकर से दिव्य अस्त्र उसने ऐसा।
स्वयं अकेला लड़ सकता है वह, चाहे दल हो जैसा॥
धर्मशिरोमणि है सब भाई धर्म भाव में रत रहते।
पड़े कष्ट उन पर कितना भी बड़े धैर्य से हैं सहते॥

युद्ध वीर अर्जुन के सम्मुख, लड़ें अनेकों हम जैसे ।
है मुझको विश्वास पराभव वह देगा अपने दम से" ।।
आग बबूला कर्ण हो गया बोला "क्यों हैं आप सदा—
करते, अर्जुन का गुन गायन, अपमानित कर हमें यदा ।।

हिम्मत केवल नहीं आपमें क्यों महान कहते उसको ।
बैरी को आदर देते हैं पोच बनाते निज जन को ।।
क्या हैं भाव आपके मन में, साफ़ नहीं क्यों बतलाते ।
'अर्जुन बलशाली है' हरदम यही गीत रहते गाते ।।

पीछे रहें आप सैना के, अब न कभी आगे होना ।
ऐसी बातें सुना युद्ध में धैर्य न औरों का खोना ।।
सुनकर ऐसी बात आप से धैर्य सिपाही खोते हैं ।
विजय हेतु आतुर होकर भी बीज हार के बोते हैं ।।

पड़ जाती सारी सेना में फूट सुनो ! प्रिय दुर्योधन ।
जब पाण्डव को धर्मधीर कह, हमको कहते पापी जन ।।
माना सत्य द्रोण गुरुवर है, बुद्धिमान रणधीर सही ।
किन्तु असंगत सी लगती है जो कुछ उनने बात कही ।।

हैं गुरु द्रोण सभी के वैसे, सिखलाई विद्या सारी ।
है आचार्य और द्विजवर भी, यों श्रद्धा के अधिकारी ।।
रहती है हम सब की श्रद्धा उन पर गुरुजन के नाते ।
इस कुल का प्रभाव उज्जवल है वेद पुराण सभी गाते ।।

भेद न इनके मन में होगा, सीधे सरल बहुत, माना ।
देते सही सलाह सभी को यह भी मैंने पहिचाना ।।
क्या प्रभाव ऐसी बातों का होगा नहीं ध्यान धरते ।
हानि लाभ को बिना विचारे बात सदा ये हैं करते ।।

मिलता मान सदा महलों में और सभा में भी पाते—
पूजन-यज्ञ आदि अवसर पर पद इनके पूजे जाते ।।
लेकिन युद्ध विषय में इनसे सम्मति लेना ठीक नहीं ।
युद्ध छिड़ा हो जहाँ वहाँ हों कायरता के गीत ? नहीं !"

दुर्योधन ने "कहा पूज्य गुरु, बात तनिक मेरी सुन लो ।
शर्त जुये की हुई रही क्या पाण्डव के संग में गुन लो ।।
बारह बरस रहेंगे बन में वर्ष एक होगा अज्ञात ।
आशा है गुरुदेव ध्यान में होगी सभी जुये की बात ।।

पूरे तेरह वर्ष नहीं हो पाये यह मन अनुमाने ।
जीत गये तो ठीक किन्तु यदि हारे तो भी हित माने ।।
रहना होगा पुनः सभी पाण्डव जन को रहते ज्यों थे ।
द्यूत खेल के नियम आपको खूब याद होंगे, क्या थे" ।

खिन्न हृदय से कृपाचार्य ने कहा "कर्ण क्या ज्ञात नहीं ?
चित्रसैन-गन्धर्व युद्ध में क्या पाण्डव थे लड़े नहीं ।।
दल था सभी कौरवों का औ' तुम भी थे सब के आगे ।
छोड़ सभी कौरव को, क्या है याद, कर्ण तुम थे भागे' ।।

क्या किरात वेषी शंकर से, पार्थ न लड़ा अकेला था ।
कवच, निवाल, काल खंज, सबको ही रण में ठेला था ॥
जिसको नहीं देवता भी हैं दबा सके यों लड़कर के ।
उससे लड़ना सहज नहीं अज्ञान भाव में पड़कर के ॥

राजाओं का मुँह मोड़ा था नहीं जीत पाये जिससे ।
गाल बजाते व्यर्थ कर्ण तुम, नहीं जोत सकते उससे ॥
नहीं यहाँ कौरव सेना में कोई लड़े धनंजय से ।
इसकी पुष्टि करा सकते हो भीष्म पितामह, संजय से ॥

था अपमान किया तुम सबने सती द्रौपदी का जैसा ।
भद्र पुरुष दुनियाँ में कोई कभी नहीं करते वैसा ॥
करो बड़ाई अपने मुँह तुम नहीं दूसरा कर सकता ।
वज्र मूर्ख भी, मूर्ख स्वयं को कहो कभी, कोई कहता ?"

अश्वत्थामा ने ललकारा "डींग मारते हो भारी ।
दुर्योधन के संग सदा से रहे, बने बस अधिकारी ॥
बात बनाना आता है पर कार्य नहीं कुछ कर सकते ।
मौका पड़ने पर देखा है पैर सदा पीछे धरते ॥

तुम हो क्रूर दुष्ठ दुर्योधन सभी मानते हैं उसको ।
खेला छल से जुआ शकुनि ने सभी जानते हैं इसको ॥
पाप दृष्टि से हड़प लिया धन-धान्य पाण्डवों का सबने ।
शकुनि, दुशासन, दुर्योधन औ' तुम्हें सराहा कब किसने ?

राज्य कर्म औ' धर्म कर्म में पाण्डव है प्रतिभाशाली।
पूरी की सब शर्त नहीं हैं अंश रूप में भी टाली॥
जिनके अग्रज धर्मराज हों कभी भूल वे कर सकते।
अवधि समाप्त हो चुकी है अब आप रहे इनको तकते॥

निर्लोभी हैं सभी पाण्डु सुत दुष्कर कार्य किये सबने।
धर्म विरुद्ध राज्य पाने के कभी नहीं देखे सपने॥
थे तब भी समर्थ ये सारे छीन सभी कुछ सकते थे।
वचन बद्ध हो सभी विवश थे अतः दीन से लगते थे॥

गृह स्वामिनी सुयोग्य द्रौपदी उनकी है इस जीवन में।
बनी पार्थ की प्रेम पियूषी सेवा भाव लिये मन में॥
सभी जानते सती-धर्म से पति की बाधायें टलती।
केवल कृष्णा की निष्ठा से प्रगति पाण्डवों को मिलती॥

अतः लड़ेंगे हम न पार्थ से लौट शीघ्र घर जायेंगे।
हो न सकेंगे अपमानित हम, पाण्डव-मित्र कहायेंगे॥
बाल नहीं बाँका कर सकते अर्जुन का तुम सब मिलकर।
रहा जीतना दूर बहुत है प्राण बचाना भी दुष्कर"

"कर्ण नहीं है अनुभव तुमको" कहा भीष्म ने दृढ़ बनकर।
"वचन सदा अनुचित कहते हो, द्वेष-भाव मन में रखकर॥
द्रोण, कृपा, अश्वत्थामा है बड़े दूरदर्शी जानों।
नाप तौल कर बात बोलते, है आवेश न अनुमानो॥

शोभा नहीं तुम्हें देता जो मन चाहा बकते रहते ।
युद्ध भूमि में खड़े हुये हो क्यों प्रमाद मन में भरते ।।
समझाने का समय नहीं है हो तैयारी लड़ने की ।
क्षमा करो जो कुछ भूल हुई गुरु बात नहीं वह अड़ने की" ।।

अर्जुन ने देखा दुर्योधन भाग रहा है गौ लेकर ।
दिया लगा अपना रथ पीछे पकड़ा तनिक दूर जाकर ।।
मार मार बाणों से उसके ढीले किये अस्थि पंजर ।
गौधन मुक्त किया तत्क्षण ही गूंजा पुनः शंख का स्वर ।।

युद्ध भयानक हुआ, पराजित हुये सभी, कुछ ही क्षण में ।
बड़े बड़े योधा आये थे भागे हार मान मन में ।।
मरे पड़े, कुछ घायल थे कुछ-चम्पत हुये बचा कर, प्राण ।
रण बांकुरा कर्ण भी उस क्षण लगा खोजने निज हित त्राण ।।

देखा रण में नहीं रह गया अब लड़ने वाला कोई ।
लौटे अर्जुन समी वृक्ष के पास वस्त्र पहिने सोई ।।
पहिन वहाँ पर जो आये थे, अस्त्र रखे पहिले जैसे ।
और चले रथ पर उत्तर संग, बने सारथी के जैसे ।।

सुना विराट नृपति ने उत्तर जीते कौरव से रण में ।
करी प्रशंसा बढ़ा चढ़ाकर गर्वित हो अपने मन में ।।
कहा कंक से "उत्तर ने सब योधाओं को मारा है ।
अखिल विश्व में वीर नहीं है, जैसा पुत्र हमारा है" ।।

राज्य कर्म औ' धर्म कर्म में पाण्डव है प्रतिभाशाली।
पूरी की सब शर्तें नहीं हैं अंश रूप में भी टाली ॥
जिनके अग्रज धर्मराज हों कभी भूल वे कर सकते।
अवधि समाप्त हो चुकी है अब आप रहे इनको तकते ॥

निर्लोभी हैं सभी पाण्डु सुत दुष्कर कार्य किये सबने।
धर्म विरुद्ध राज्य पाने के कभी नहीं देखे सपने ॥
थे तब भी समर्थ ये सारे छीन सभी कुछ सकते थे।
वचन बद्ध हो सभी विवश थे अतः दीन से लगते थे ॥

गृह स्वामिनी सुयोग्य द्रौपदी उनकी है इस जीवन में।
बनी पार्थ की प्रेम पियूषी सेवा भाव लिये मन में ॥
सभी जानते सती-धर्म से पति की बाधायें टलती।
केवल कृष्णा की निष्ठा से प्रगति पाण्डवों को मिलती ॥

अतः लड़ेंगे हम न पार्थ से लौट शीघ्र घर जायेंगे।
हो न सकेंगे अपमानित हम, पाण्डव-मित्र कहायेंगे ॥
बाल नहीं बाँका कर सकते अर्जुन का तुम सब मिलकर।
रहा जीतना दूर बहुत है प्राण बचाना भी दुष्कर"

"कर्ण नहीं है अनुभव तुमको" कहा भीष्म ने दृढ़ बनकर।
"वचन सदा अनुचित कहते हो, द्वेष-भाव मन में रखकर ॥
द्रोण, कृपा, अश्वत्थामा है बड़े दूरदर्शी जानों।
नाप तौल कर बात बोलते, है आवेश न अनुमानो ॥

शोभा नहीं तुम्हें देता जो मन चाहा बकते रहते।
युद्ध भूमि में खड़े हुये हो क्यों प्रमाद मन में भरते ॥
समझाने का समय नहीं है हो तैयारी लड़ने की।
क्षमा करो जो कुछ भूल हुई गुरु बात नहीं वह अड़ने की" ॥

अर्जुन ने देखा दुर्योधन भाग रहा है गौ लेकर।
दिया लगा अपना रथ पीछे पकड़ा तनिक दूर जाकर ॥
मार मार बाणों से उसके ढीले किये अस्थि पंजर।
गौधन मुक्त किया तत्क्षण ही गूंजा पुनः शंख का स्वर ॥

युद्ध भयानक हुआ, पराजित हुये सभी, कुछ ही क्षण में।
बड़े बड़े योधा आये थे भागे हार मान मन में ॥
मरे पड़े, कुछ घायल थे कुछ-चम्पत हुये बचा कर, प्राण।
रण बांकुरा कर्ण भी उस क्षण लगा खोजने निज हित त्राण ॥

देखा रण में नहीं रह गया अब लड़ने वाला कोई।
लौटे अर्जुन समी वृक्ष के पास वस्त्र पहिने सोई ॥
पहिन वहाँ पर जो आये थे, अस्त्र रखे पहिले जैसे।
और चले रथ पर उत्तर संग, बने सारथी के जैसे ॥

सुना विराट नृपति ने उत्तर जीते कौरव से रण में।
करी प्रशंसा बढ़ा चढ़ाकर गर्वित हो अपने मन में ॥
कहा कंक से "उत्तर ने सब योधाओं को मारा है।
अखिल विश्व में वीर नहीं है, जैसा पुत्र हमारा है" ॥

कहा कंक ने "बृहन्नला जिस ओर, विजय उस ओर सदा।
बृहन्नला के बल पर रण में मत करना सन्देह कदा॥
उसके जैसा वीर नृपति भू पर है नहीं आज मिलता।
स्वयं इन्द्र भी रण में उसका बाल न बाँका कर सकता"॥

"कंक तुम्हें कुछ ज्ञात नहीं है लड़ी लड़ाई है किसने।
मानी जीत उसी की जाती बाण चलाये हैं जिसने॥
लड़ो कहाँ थी बृहन्नला, रण तो यह उत्तर ने जीता।
श्रेय वही लेगा जिसके सिर कष्ट घोर रण में बीता"॥

सुन विराट का तर्क कंक ने कहा "यही मैं कहता हूँ।
बृहन्नला है वीर नृपति मैं नहीं भाव में बहता हूँ॥
बाण चलाना रथ दौड़ाना रण के कौशल सब जानें।
उसके सम है वीर न कोई बात सत्य मेरी मानें"॥

"युद्ध कभी सारथी न करता श्रेय नहीं उसको दूँगा।
शत्रु, दल सहित जो संहारे पक्ष उसी का मैं लूँगा॥
कृपाचार्य, अश्वत्थामा औ' कर्ण, भीष्म, दुर्योधन से।
कहीं लड़ सकेगी बेचारी सोचो कंक तनिक मन से"॥

पुनः कंक ने कहा नृपति से अर्थ सहज अति था जिसका।
सारथि बन यदि गई न होती बृहन्नला बल था किसका?
विजय न मिल सकती उत्तर को यही बात मन में धारो।
जो भी हो बहुमूल्य वस्तु, वह बृहन्नला पर नृप वारो॥

सुनकर वचन कंक से नृप के मन में बढ़ी क्रोध धारा ।
पासा मारा खींच कंक को निकली तभी रुधिर धारा ।।
"अरे नपुंसक को करते हो समता तुम रणधारी से ।
स्वान कभी उपमा पाता क्या सिंह वृहद् बन चारी से" ।।

'उत्तर आये' समाचार सुन नृप बोले "सत्वर जाओ ।
द्वारपाल तुम वीर पुत्र उत्तर को' सादर ले आओ" ।।
कहा कंक ने द्वारपाल से "बृहन्नला को मत लाना ।
होगा दुष्परिणाम नृपति ने सत्य न कुछ भी पहिचाना ।।"

रक्त रोक संकेत किया, लख दौड़ी सैरन्ध्री आई ।
भरा कटोरा धर्म रक्त से देख बहुत वह घबराई ।।
यदि धरती पर रक्त कणों को अर्जुन ने यों देख लिया ।
भस्म करेंगे राज्य नृपति का सोच हृदय में शोक किया ।।

था दृढ़ अर्जुन का प्रण ऐसा, दुराचार से यदि कोई ।
धर्मराज पर वार करे तो, समझो युद्ध बेल बोई ।।
बूँद रक्त की गिरते भू पर सहन नही उनको होगा ।
भय है नृप विराट को होगा दुःख, न जो अब तक भोगा ।।

कृतज्ञता वश उस महान ने रक्त पिया सत्वर सारा ।
बचा विराट युद्ध ज्वाला से राज्य बचा उसका प्यारा ।।
"धन्य सती द्रौपदी आज तूने है अद्भुत कार्य किया" ।
कहा युधिष्ठिर ने प्रसन्न हो, "नृप विराट का वंश जिया" ।।

किया प्रणाम पास आ उत्तर ने सबको अति आदर से ।
पिता सभासद् और धर्म पथ लीन युधिष्ठिर नागर से ।।
कहा कंक की ओर देखकर नृप विराट से घबराकर ।
"किसने कष्ठ इन्हें पहुँचाया क्या न मृत्यु का उसको डर ।।

सज्जन बड़े दयालु कंक हैं भूल हुई थी क्या ऐसी ।
किसका यह दुःसाहस, किससे चोट लगी इनको ऐसी" ।।
तब विराट ने कहा "कंक है नहीं वीर तुमको गुनता ।
बृहन्नला के गुन गाता है, बात नहीं मेरी सुनता ।।

इससे क्रोध मुझे ही आया मैंने पांसा मारा है ।
ऐसों को शिक्षा देने का कहो भला क्या चारा है ?
छोड़ो इसे, बताओ बेटा लड़े किस तरह कौरव से ।
देख वीरता पुत्र तुम्हारी मन फूला है गौरव से" ।।

उत्तर बोले "क्षमा कंक से मांगो है अपराध बड़ा ।
पूज्य पिताजी, पीछे होगा तुमको पश्चाताप बड़ा" ।।
बात सभी सुन नृप विराट ने कहा भूल मेरी सारी ।
मैं क्रोधी हूँ अतः आपकी दया क्षमा का अधिकारी" ।।

क्षमा मूर्ति बन कहा धर्म ने मेरा है यह व्रत राजन् ।
क्रोध और प्रतिहिंसा से मैं मुक्त रखूँगा अपना मन ।।
सैरन्ध्री यदि आज शीघ्र ही पी न रक्त जाती मेरा ।
सहित आप के राज्य नष्ट यह होता वचन सही मेरा" ।।

"मेरी विजय नहीं" उत्तर ने कहा न "मैं रण में जीता।
देवकुमार एक थे जिनसे कौरव गर्व हुआ रीता॥
लख कौरव औ' उनकी सेना मेरे छक्के थे छूटे।
रथ से कूद भाग निकला था साहस धीरज थे टूटे॥

बैठाया था रथ में मुझको स्वयं धनुष शर धारण कर।
टूट पड़े यों कौरव दल पर सिंह टूटता जरि दल पर॥
छल बल किया बहुत कौरव ने पर न जीत पाये उनको।
स्वयं काल से लड़ सकते थे तिल भर भय न हुआ उनको॥

दिया निमंत्रण मैंने उनको, वचन लिया है आने का।
हैं वे बड़े हितैषी मेरे काम नहीं घबराने का॥
तीन दिवस उपरान्त मिलेंगे मान उचित कीजे उनका।
मन से, बचन, कर्म से उनका स्वागत कीजे बिन खटका"॥

ठीक समय आने पर उत्तर सहित भूषणों से भूषित।
पाण्डव सहित द्रौपदी आये, किया नहीं नृप को सूचित॥
राजोचित आसन पर बैठे देख, नृपति बोले उनसे।
"अरे कंक, ये वस्त्र, अस्त्र, आभूषण पाये हैं किनसे ?"

दिया पार्थ ने सब का परिचय था उत्तर का अनुमोदन।
अपनी भूल चूक हित सबने किया अनन्य क्षमा याचन॥
कहा नृपति ने धर्मराज से, "स्वीकारो धन राज सभी।
एक और छोटी इच्छा है सिद्ध करो मिल उसे सभी"॥

अर्जुन करें विवाह उत्तरा से है यह मेरी इच्छा।
हो सम्बन्ध आपका मेरा यही माँगता हूँ भिक्षा" ॥
देखा धर्मराज ने अर्जुन को वे समझ गए मन में।
बड़े प्रेम से वचन सुनाये पुलकित हो अतिशय तन में ॥

पार्थ हृदय अनुरक्त सदा से कृष्णा पर रहता आया।
अतः न मुझको आज आपका यह प्रस्ताव उचित भाया ॥
रही उत्तरा पुत्री जैसी सदा सभी के लिए नृपति।
अतः ग्रहण हो नृप कन्या का उसी रूप में प्रेम सहित ॥

अर्जुन की अति उच्च भावना आज यही है दरसाती।
नृपति आपकी कन्या उसको रही पुत्रि सम मन भाती ॥
हो सकता है ग्रहण उत्तरा का यदि बात आप मानो।
पहिले वचन मुझे दो अपना होगा शुभ निश्चित जानो" ॥

कहा विराट नृपति ने, "देता वचन बात मैं मानूँगा।
होगी कुछ न उपेक्षा भगवन् सत्य कहा सब जानूँगा ॥
आज्ञा कीजे महाराज मन-भेद न रंच कभी लाना।
यद्यपि हुआ अनर्थ बहुत जो प्रथम न मैंने पहिचाना ॥

"बने हमारी बहू उत्तरा हो पति अभिनन्यु इसका।
ससुर कहायें, पिता तुल्य सम्बन्ध रहे सम पुत्री का" ॥
कहा पार्थ ने "मैं इसके संग रहा नाचता औ' गाता।
पूज्य पिता सम यह रखती थी मेरे संग नृपवर नाता ॥

शिष्या रही सदा यह मेरी श्रद्धा भाव भरे मन में।
ससुर रूप में अब पायेगी मुझको नृपवर जीवन में॥
हैं अभिमन्यु योग्य वर इसके बल पौरुष उसके तन में।
अब कहिए स्पष्ट बात यदि उचित जँचे नृप तन मन में" ॥

"है स्वीकार मुझे नाता यह, भाव आपका उत्तम है।
करो विवाह उत्तरा का अब यह संयोग महोत्तम है" ॥
नृप ने खूब सराही मन में निष्ठा वीर धनंजय की।
कभी उपेक्षा की न पाण्डवों ने कुल सभा मर्यादा की॥

## द्रौपदी की दृढ़ता

संधि हेतु कौरव-पाण्डव की, यत्नशील थे नर ज्ञानी ।
किन्तु बात किंचित कौरव ने नहीं किसी की भी मानी ।।
उत्तर मिला पाण्डवों को वे सुई नोक सम भूमि कभी—
युद्ध बिना देंगे न, समझलें इसको पाण्डव बन्धु सभी ।।

है प्रस्ताव पाँच गाँवों हित पाण्डव का सुनकर कृष्णा ।
सूख गई आतुर हो बोली "मुझे नहीं यह भी तृष्णा ।।
था मेरा अपमान किया मैं उसको नहीं भूल सकती ।
जुआ खेल कर मान घटाया छीन राज्य, छीनी हस्ती ।।

करते नहीं धर्मयुत बातें आधा राज्य न देते हैं ।
अनाचार की नौका पर चढ़, अहम् भाव से खेते हैं ।।
मान लूटते सभी हमारा क्रूर समझते हैं निर्बल ।
हमें, मिटा देने को जड़ से, करते सदा कपट छलबल ।।

ऋतुमति की चोटी घसीटकर, लाये थे पापी कौरव।
वस्त्र हीन करने को आतुर थे जिससे मिटता गौरव ॥
मेरी स्थिति जान बूझ भी नहीं उन्होंने थी जानी।
इससे बुरा और क्या करते ये कौरव चिर अभिमानी ॥

सभी शास्त्र का मत ऐसा है लगता पाप बड़ा भारी।
यदि अपराध बिना दुख देवें पुरुष बली, निर्बल नारी ॥
लगता वही पाप इन सबको पापी जो न बधे जायें।
लोक कर्म है यही बताता पापी कठिन दण्ड पायें ॥

करो काम अब वही जनार्दन हो न पाप यों जीवन में।
पाण्डव, यादव, संजय मिलकर प्रण कर लो दृढ़ निज मनमें ॥
वैठेंगे अब नहीं शान्ति से पापी जब तक रहते हैं।
यही धर्म का सार कहाता यही विद्वजन कहते हैं ॥

नहीं आज कोई नारी है मेरे सम हे गिरिधारी—
दुखी और अपमानित जो हो यथा–सुनो हे बनवारी ॥
हूँ मैं यज्ञ ज्वाल से प्रकटित भूप द्रुपद की करनी से।
जन्म कथा है विदित आपको औ' जगमाता धरनी से ॥

धृष्टद्युम्न की भगनी हूँ मैं सखी आपकी कहलाती।
पाण्डु ससुर हैं मेरे जिनकी कथा आज दुनियाँ गाती ॥
पति अर्जुन हैं वीर बड़े औ' पाण्डव रक्षक कहलाते।
कारण क्या है कष्ट हमारा अब भी आप सहे जाते ?

अतिशय दुःख सहा, पर जाने क्यों न प्राण होते बाहर।
यादव, पाण्डव, पांचालों में अब भी रोष न करता घर॥
होते हुए सभी वीरों के बाल पकड़ खींचा मुझको।
सभी आप यह भूल गये हैं दण्ड न क्यों देते उनको ?

अब भी क्रोध नहीं आता यदि यत्न नहीं कुछ भी करते।
है धिक्कार सभी का जीवन जो सद्‌मार्ग न अनुसरते॥
दुर्योधन औ' दुःशासन का पक्ष धरें वे अभिमानी—
है निन्दा के पात्र, दुःख को देख न द्रवित हुये ज्ञानी॥

है यदि नेह आपका सच्चा सखी मानते हैं मुझको।
समझूंगी मैं दया आपकी दण्ड मिलेगा यदि उनको॥
बात कीजिये नहीं संधि की जब तक कहें नहीं देना—
आधा राज्य न्याय से मेरा—केवल मुझे यही कहना" ॥

बाल हाथ में ले बोली फिर नयनों में आँसू भरकर।
"कमलनयन हैं यही केश वे दुष्ट जिन्हें लाया गहकर॥
बीच सभा अपमान हुआ था अपशब्दों से, लातों से।
क्यों होगा सन्तोष मुझे यों आज संधि की बातों से॥

पार्थ, भीम बन आए भीरु अति नहीं लाज इनको आती।
उत्सुक बड़े दिखाई देते संधि वार्ता मन भाती॥
मेरे ऊपर कृपा कीजिये आप न संधि हेतु, जायें।
संधि नहीं मुझको करना है, व्यर्थ कष्ट क्यों कर, पायें॥

बदला लेंगे पिता द्रुपद जो युद्ध करेंगे कौरव से ।
वृद्ध बहुत हैं किन्तु उन्हें जीना है जीवन गौरव से ।।
महाबली अभिमन्यु, पाँच सुत, बन्धु, लड़ेंगे बस रण में ।
संधि नहीं होने दूँगी मैं खूब समझ लें यह मन में ।।

काट भुजाएँ दुःशासन की गिरा उसे फिर धरनी पर ।
जब तक नहीं चैन लूँगी मैं, दुष्ट नहीं वैतरनी पर ।।
नहीं शान्ति मुझको मिल सकती कृष्ण बताऊं मैं कैसे ।
जैसे समझ आप सकते हो समझाऊं मैं फिर वैसे ।।

क्रोध अग्नि को लिये हृदय में, मैंने करी प्रतीक्षा थी—
तेरह वर्ष भटक वन वन में, मेरी यही परीक्षा थी ।
आज संधि की बातें सुनकर मेरा हृदय विदीर्ण हुआ ।
हाय ! नहीं दिखता कुछ इनको, आज नेह पट जीर्ण हुआ" ।।

कण्ठ भर गया इतना कहते बात नहीं बोली आगे ।
लगी फूट रोने बेचारी करुण भाव सबके जागे ।।
असमंजस में कृष्ण पड़ गये दशा देख यों कृष्णा की ।
बोले "तृप्ति शीघ्र होगी इन प्रतिकारों की तृष्णा की ।।

धैर्य धरो मन में कृष्णा, तुम नहीं बात सोचो ऐसी ।
जैसी तुमने कही अभी तक नहीं बात कुछ भी वैसी ।।
जिन पर तुमने क्रोध किया है नहीं बचेंगे वे रण में ।
इतना तो विश्वास तुम्हें रखना होगा अपने मन में ।।

करी प्रतिज्ञा मैंने भी थी, याद नहीं क्या वह तुझको ।
सोचो पिछली बातें सारी भूल गईं क्यों तुम उनको ।।
जैसे तुम रोती हो कृष्णा कौरव पत्नी रोवेंगी ।
मिट जायेंगे कौरव रण में औ' सुहाग वे खोवेंगी ।।

समय अधिक अब नहीं रह गया होगा युद्ध महा भारी ।।
बदला लूँगा सभी चुका मैं, बात सत्य मानो सारी ।।
धर्मराज की आज्ञा लेकर अर्जुन, भीम लड़ेंगे सब ।
नकुल और सहदेव युद्ध में पीछे नहीं हटेंगे तब ।।

मैं भी साथ रहूँगा इनके, नहीं छोड़ रण जाऊंगा ।
रण कौशल औ' कर्त्तव्यों का, उत्तम मार्ग सुझाऊंगा ।।
है कर्त्तव्य हमारा कहता एक बार उनसे मिलकर ।
हाँ या ना की बात समझ लें, तब हों रण के हित तत्पर ।।

है विश्वास मुझे पूरा यह नहीं बात वे मानेंगे ।
बड़े हठी हैं कौरव सारे युद्ध भयानक ठानेंगे ।।
हम बच जायेंगे अपयश से इस प्रकार होगा यदि रण ।
सत्य, धर्म, कर्त्तव्य आदि के प्रति भी होगा आकर्षण ।।

आज्ञा दो मुझको जाने की अन्य भावना मत लाओ ।
पूरी होंगी सभी कामनायें अब शीघ्र, न बिसराओ" ।।
देकर आज्ञा कृष्णा बोली "कृष्ण जगत के हो कर्ता ।
उचित समझना वह कर आना आप सभी के हो भर्ता ।।

रहे ध्यान मर्यादा का नहिं बात बिगड़ने भी पाये।
प्रण है किया सभी लोगों ने वह भी पूरा हो जाए ॥
मुझको लगा कि भय कातर है आज शक्ति पाण्डव सारी।
इसी हेतु से अनुचित बातें आज कह गई बनवारी ॥

इन पर देना ध्यान नहीं कुछ हित सोचो मानवता का।
यही विनय है ध्यान रहे कुछ मेरी भी भावुकता का ॥
फूले फले सदा सब दिन यों आर्य जाति यश अमर रहे।
कीर्ति बड़ी तुम भी पाओ जग में सब जय जय कृष्ण कहें" ॥

× × ×

जगत विदित है कौरव दल की कुरुक्षेत्र में हार हुई।
पाप कहानी पापी जन की पुण्य अनल में क्षार हुई ॥
यद्यपि दोनों दल के कोटिक वीर युद्ध में आये काम।
नर संहार शेष था फिर हुआ विधाता कितना बाम ॥

× × ×

# ममतामयी द्रौपदी की दया

अश्वत्थामा पुत्र द्रोण का वीर बड़ा रण मतवाला।
युद्धवीर सैनिक के व्रत को उसने सभी सदा पाला॥
सुनी पिता की मृत्यु कपट से, हार कौरवों की रण में।
सह न सका यह कष्ट सोचने लगा तभी अपने मन में॥

पहिले उसने सोचा, वध मैं सभी पाण्डवों का कर दूँ।
शत्रु सैन्य घट निज बाणों की, वर्षा से अब मैं भर दूँ॥
किन्तु उसे था भय वह कैसे जीतेगा पाण्डव दल से।
वीर धनुर्धारी हैं जिनमें महाप्रतापी अर्जुन से॥

बसी मलिनता मन में उसके, भूल गया गौरव अपना।
ध्यान न आया सतकृत का औ' भाया तब ओछा सपना॥
कृपाचार्य औ' कृतवर्मा भी मिलकर हुए साथ उसके।
समझ मिला सहयोग उसे, भुजदण्ड उभय उसके फड़के॥

महारथी पंचाल मत्स्य औ' सोमक के, सब थे सोते।
परम्परा थी युद्ध अचानक नहीं रात को थे होते ॥
धर्म युद्ध था, धोखा होगा समझ न कोई था पाया।
किन्तु काल उस रात द्रौपदी के पुत्रों पर था छाया ॥

अश्वत्थामा शिविर द्वार पर अस्त्र शस्त्र लेकर आया।
कृपाचार्य औ' कृतवर्मा को इस कुकृत्य हित बहकाया ॥
सबको सोते ही वध करने की वह लगा सोचने बात।
और घुस गया पाण्डु[1] शिविर में, सब सोते थे, थी अधरात ॥

धृष्टद्युम्न को सोते पाया मार लात बोला उससे।
"बदला लेने पुत्र, पिता का आया उठो लड़ो मुझसे" ॥
इतना कहकर मुक्का मारा गिरा धरनि पर मुँह के बल।
झट छाती पर बैठ गया फिर गला पकड़ उसका वह खल ॥

साँस रुकी तब द्रुपद पुत्र की, नहीं जानता था ऐसा।
अर्धरात्रि को छल से कोई गला दबा देगा वैसा ॥
था वह विवश पड़ा नीचे तब किसी भाँति बोला उससे।
"क्यों देरी करता है पापी प्राणों को हर शस्त्रों से" ॥

मारी लात गिरा दूरी वह धृष्टद्युम्न बोला उठ यों।
"नहीं युद्ध का नियम बताया पाप कर्म करता है क्यों ॥
वीर समझता यह जग तुझको यदि हथियारों से लड़ता।
चोरों का सा वेष बनाकर आया, सिर कलंक मढ़ता" ॥

---

१. पाण्डव

"बधने से आचार्य, किसी को कभी न पुण्य लोक मिलता।
अतः शस्त्र से तुम्हें मारना उचित नहीं मुझको लगता" ॥
मर्म स्थल पर मार मार कर धृष्टद्युम्न का प्राण लिया।
जाग गईं महिलायें सहसा सबने करुण विलाप किया ॥

कोई नहीं समझ पाया था कौन निशाचर वह आया।
धृष्टद्युम्न को सोते मारा युद्ध नियम सब बिसराया ॥
रथ पर चढ़ तब अश्वत्थामा लगा घूमने इधर उधर।
नहीं समझ में उसको आया जाये अब वह कहाँ किधर ॥

बड़ा बहादुर उत्तमौज[1] था कभी न जो साहस खोता।
देखा पास लगा तम्बू में थका पलंग पर है सोता ॥
सोते ही छाती पर वह था दुष्ट मारता मुष्ठिक यों।
धान कूटते समय गिराता कृषक झपटकर मूसल ज्यों ॥

हुआ मार यों खाकर मूर्छित होश नहीं था जब उसको।
कण्ठ दबाकर प्राण निकाले नहीं तरस आया मनको ॥
हुआ शोर सेना में भारी, औ' जग गये वीर सारे।
नहीं समझ में कुछ आया वे सोच सोच मन में हारे ॥

युधामन्यु समझा कोई है सेना में राक्षस आया।
जिसने मारा उत्तमौज को निशा युद्ध जिसको भाया ॥
गदा उठाकर आया बाहर, हनन किया दृढ़ छाती पर।
गिरा भूमि पर अश्वत्थामा लगा खून बहने झर झर ॥

---

१. उत्तमौजा।

क्रोध भरे अश्वत्थामा ने झट उठ भू पर दे मारा ।
गिरा भूमि पर युधामन्यु तो हुआ विवश पौरुष सारा ।।
मार मार कर मुक्के उसके आँख नाक औ' दाँतों पर ।
लेने लगे प्राण यह कहकर "समझो मुझे" काल निश्चर ।।

मार मार यों युधामन्यु के उस पापी ने प्राण लिये ।
पहुँचा उस थल जहाँ कि सोते महारथी थे जान लिये ।।
निज कृपाण से काट शीश सबका खुश होता था मन में ।
क्या होगा परिणाम अन्त में यह हुलास ही था तन में ।।

कई शिविर में गया दुष्ट वह सोते पड़े सैनिकों को ।
क्षण में तहस नहस कर डाला घोड़े सहित हाथियों को ।।
लथपथ हुआ खून में भारी दैत्य दिखाई देता था ।
काल सरिस वह घूम घूमकर प्राण सभी के लेता था ।।

उठ निद्रा से लड़ते थे सब वीर बिना तैयारी यों—
महारथी से बिना अस्त्र के लड़े अनेकों सैनिक ज्यों ।।
मारे गए सभी क्षण भर में नहीं जान पाया कोई ।
दीप ज्योति में कीट जलें ज्यों थी गति सोतों की सोई ।।

सुनी बात द्रौपदी सुतों ने मामा का वध कर डाला ।
सोते हुये हमारे दल को किस पापी ने मथ डाला ।।
नहीं बात सह सके सभी थे वीर बड़े, यद्यपि बच्चे ।
अर्जुन की सन्तान कहाकर होते क्यों मन के कच्चे ।।

मारे तीखे बाण अनेकों विकल हुआ अश्वत्थामा ।
पर उस दुष्ट क्रूर के उर, था बीज रोष—अघ का जामा ॥
ले तलवार म्यान से अपनी लड़ने लगा क्रोध करके ।
एक एक को लगा काटने मन में बड़ा रोष भरके ॥

प्रतिविन्ध्य और सुत सोम हुये हत् शतानीक भी सहसा साथ ।
शीश कट गया इन तीनों का पाई-मृत्यु शत्रु के हाथ ॥
लेकर परिध चला श्रुतकर्मा करी चोट मुँह पर उसके ।
रोक लिया अश्वत्थामा ने डरे बहुत मन में हिचके ॥

कर श्रुतकीर्ति बाण की वर्षा झड़ी लगा दी सहसा यों ।
घोर भयानक वर्षा करते श्रावण भादों के धन ज्यों ॥
बाण बहुत मारे बालक ने पर पापी ने रोक लिये ।
अवसर पा वह आगे आया सिर दोनों के काट दिये ॥

छोड़े बाण शिखण्डी पर जो लगे वेग से आँखों में ।
अन्धा हुआ गिरा धरती पर, काट दिया दो फाँकों में ॥
व्यापा रोष और भी उसको सभी प्रभद्रकों पर टूटा ।
उसने वधा सभी को क्रमशः कोई शेप नहीं छूटा ॥

बचे वीर राजा विराट के, भूप द्रुपद के सम्बन्धी ।
पुत्र पौत्र को काट गिराया देर न की था प्रतिद्वन्दी ॥
जैसे आँधी बड़े-बड़े वृक्षों को तहस नहस करती ।
चाहे अनचाहे घर वन में महानाश का स्वर भरती ॥

सिंहनाद अश्वत्थामा का सुनकर जाग गये सारे।
वीर अनेकों पाण्डव दल के धोखे से उसने मारे॥
हाथ कहीं पर पैर कहीं पर गला कहीं पर कटा पड़ा।
पेट किसी का फाड़ रक्तधारा से, था रण-खेत मढ़ा॥

घायल चीख मारते रोते पीड़ा से कुछ उछल रहे।
बिगड़ बिगड़ घोड़े हाथी थे उन्हें वहाँ पर कुचल रहे॥
नहीं समझ पाया कोई भी कौन उन्हें था घाल रहा।
एक दूसरे से यह कहते थे, हैं मंडराता काल महा॥

प्राण बचाने को जो भागे मारे गए द्वार पर वे।
कृतवर्मा औ' कृपाचार्य से कैसे जाते बच कर वे॥
कुछ तो बिना लड़े कुछ लड़कर मरे वीर अँधियारे में।
हानिहुई इतनी जितनी थी नहीं हुई उजियारे में॥

अश्वत्थामा को अपना या नहीं पराया कुछ सूझा।
वह तो दल को धोखा देकर मध्य रात्रि को आ जूझा॥
हुई लड़ाई घमासान अति वर्णन नहीं किया जाता।
सोच सोच वह घटना सारी हृदय आज भी दुख पाता॥

शेष वीर जो कुछ बाकी थे उन्हें जला कर क्षार किया।
सारी पांडव सेना को यों अश्वत्थामा पार किया॥
अगर उपस्थित होते पाण्डव कहीं, बात होती कुछ और।
थोड़ी सी आहट पर आते, पाता शत्रु न भागे ठौर॥

काट काट टुकड़े टुकड़े कर हाथी घोड़े वीर सभी ।
लथपथ हुआ रक्त से दिखता यम सदृश वह क्रूर तभी ॥
हाथ पैर धड़ मुंड हिलाता मरे हुवों का कभी वहाँ ।
था प्रहार निबलों पर करता घूम घूम कर जहाँ तहाँ ॥

थी तलवार चमकती उसकी, तन आकार भयंकर था ।
जिनने देखा उस क्षण उसको कहते वे, प्रलयंकर था ॥
किंकर्तव्य विमूढ़ हो गये, रहा न तनिक किसी को ज्ञान ।
देख विकट औ' अशुभरूप सब, आँख मूँद ढक लेते कान ॥

हो पिशाच सम द्रोण पुत्र ने मिला वहाँ जो, धर काटा ।
पाण्डव दल के वीर सैनिकों से उसने था थल पाटा ॥
चहुँ दिश हाहाकार मचा था त्राहि त्राहि का करुणिक नाद ।
सुनने से लोगों के मन में, जागी काल रात्रि की याद ॥

मूर्ति रूप उस काल रात्रि को, पाण्डव वीरों ने देखा ।
काला बदन नेत्र मुख खूनी, भाल लाल चंदन-रेखा ॥
लाल पुष्प की माला पहिने, लाल रंग की साड़ी थी ।
स्वयं ढंग की रही अकेली, पाश हाथ में धारी थी ॥

सखियों का समुदाय साथ था, खड़ी गीत वह गाती थी ।
काट काट पाशों द्वारा, वह नूतन खेल मचाती थी ॥
हाथी, भैंसे, वीर सिपाही, ऊँट बैल खच्चर घोड़े ।
बाँध साथ वह ले जाती थी, नहीं किसी को भी छोड़े ॥

काल रात्रि को जैसे देखा, तब प्रत्यक्ष वहाँ सबने ।
देख रहे थे मुख्य वीर त्यों, अन्य रात्रि में भी सपने ।।
सदा दिखाई वह देती थी, अपने पाशों में बाँधे ।
केश रहित नाना प्रकार के प्रेतों को लेते जाते ।।

इसी प्रकार देखते थे सब काल रात्रि को स्वप्नों में ।
सोये हुए महारथियों को डाल शस्त्र सब बसनों में ।।
करते हुए द्रोण सुत को संहार सभी रण वीरों का ।
रही सभी को ले जाती, कर रक्त पान रणधीरों का ।।

काट रहा था यम समान वह काल प्रेरणा से उस क्षण ।
टूक टूक कर हाथ पैर सिर नाक कान छाती औ' धड़ ।।
देता था फिर कुचल उन्हें, वे चीख मार चिल्लाते थे ।
तजा न उसने उन्हें वहाँ भी, जो रो रो घिघियाते थे ।।

उन वीरों के रुण्डमुण्ड जिनने कीना परलोक पयान ।
रक्तधार में लुढ़क रहे थे इधर उधर सब गेंद समान ।।
पूर्ण हो रहा चीत्कारों से उस क्षण पूरा वह मैदान ।
थे कराहते और तड़फते निकल न पाये जिनके प्राण ।।

शस्त्र सहित या रहित न देखा, सब का गला तुरत काटा ।
तनिक काल में द्रोण पुत्र ने, लाशों से थल था पाटा ।।
सोते और जागते अथवा पड़े अचेत जहाँ पाया ।
रंच दया ना आई उसको प्राण लिये जैसे भाया ।।

कितनों ने तो मल त्यागे थे, कितनों के पेशाव झड़े।
कितनों की अँतड़ी निकली थी, कितने थे बेताब पड़े ॥
बाल बिखेरे वहाँ अनेकों, भाग रहे थे इधर उधर।
कितनों को हाथी घोड़ों ने कुचल किया था तितर बितर ॥

मार काट सुन इस प्रकार की बड़े बड़े राक्षस आकर।
करते थे गर्जना भयंकर, रक्त पान तन शोषण कर ॥
भूतों का समुदाय वहाँ कोलाहल करता था भारी।
भूतल की संपूर्ण दिशाओं, में स्वर गूँजा दुखकारी ॥

भाँति भाँति के आकृति वाले राक्षस और पिशाचों का—
जुटे वहाँ, समुदाय अनेकों रक्त पान हित लाशों का ॥
रूप बड़े विकराल भयंकर पिंगल वर्ण सभी वे थे।
पर्वत जैसे दाँत सभी के, तन-में धूल लपेटे थे ॥

रहे रखाये जटा शीश पर पाँच पैर थे पेट बड़े।
माथे की हड्डी चौड़ी थी, रोम वृक्ष सम रहे खड़े ॥
रहीं उँगलियाँ उनकी पीछे थे रूखे था रूप कुरूप।
करते थे गर्जना भयंकर, भाँति भाँति भाषा, तन, रूप ॥

घंटों की मालायें बहुतों ने पहिनी, था रूप कराल।
नील चिह्न उनके ग्रीवा में, नद सा दिखता था विकराल ॥
नारी और पुत्र ले संग में, आये थे सब उस थल में।
थे अत्यन्त क्रूर औ' निर्दय, चलते थे सब दल दल में ॥

खिल उठते थे कभी हर्ष से, रक्त पान कर वीरों का ।
झुण्ड बना कर नाच रहे थे, होली खेल अवीरों का ॥
कोई कहता यह उत्तम है, कोई कहे पवित्र उसे ।
बड़ा स्वाद इसमें आता है चख कर देखो तनिक इसे ॥

मेदा मज्जा हड्डी चर्बी का अहार करने वाले ।
राक्षस झुण्ड अनेक वहाँ तब आये गले माल डाले ॥
एक और दो नहीं, भयंकर बहु मुख थे उनके तन में ।
जो खा रहे मांस कच्चा ही होकर हर्षित निज मन में ॥

थे कुक्षि रहित राक्षस जो उनमें करते थे चर्बी का पान ।
इधर उधर थे दौड़ लगाते करके बहुत राक्षसी गान ॥
थे दल वहाँ अनेक राक्षसों के औ' रूप अनेक धरे ।
क्रूर कर्म करने वाले सब, वर्णन उनका कौन करे ॥

किसी किसी में दस हजार औ' किसी किसी में लाख रहे ।
रहे लाख दस किसी किसी में गणना उनकी कौन कहे ॥
मांस चबाते रक्त चूसते हड्डी कड़ कड़ खाते थे ।
पहन पहन कर मुण्ड माल सब, नाच कूद कर गाते थे ॥

बड़ा भयानक दृश्य वहाँ का कोई देख न सकता था ।
रचा द्रोण मुनि ने जो नाटक, उसे देख मन झकता था ॥
होते प्रात वहाँ पर कौवे आये चिल्ल शृंगाल अनेक ।
नोच नोच कर मांस अतड़ियाँ, खाते रख कर अपनी टेक ॥

रात्रि अन्त पर अश्वत्थामा कृपाचार्य औ' कृतवर्मा ।
मिलकर हुये प्रसन्न बहुत थे तीनों पापी दुष्कर्मा ।।
लथपथ वस्त्र खून से उनके अपने दल में वे आये ।
बड़े प्रसन्न दिखाई पड़ते कृत पर तनिक न शर्माये ।।

गये पास दुर्योधन के वे देखा उसे कि है जिन्दा ।
बुरा भला कह पाण्डव को वे करने लगे बड़ी निन्दा ।।
सात्यकि कृष्ण पाँच पाँडव औ' तीन आपके दल में हम ।
शेष रहे हैं अभी जिन्होंने त्याग न पाये अन्तिम दम ।।

धृष्टद्युम्न, द्रौपदी सुतों को मैंने काट गिराया है ।
खाया नमक आपका था सो रण चढ़ आज चुकाया है ।।
शान्ति मिली दुर्योधन को सुन, प्राण पखेरू गये निकल ।
देख दशा ऐसी उसकी तीनों जन हो अति गये विकल ।।

धृष्टद्युम्न का सारथि बचकर अँधियारे में निकल गया ।
प्राण बचाये कृतवर्मा से धर्मराज तक विकल गया ।।
धर्मराज सब समाचार पा उससे व्याकुल हो बोले ।
"अरे दुष्ट ने मारे छिपकर वीरपुत्र मेरे भोले" ।।

पुत्र शोक से व्याकुल हो कर पृथ्वी पर गिर गए धरम[1] ।
सात्यकि, भीमसेन. अर्जुन, सहदेव, नकुल हो गए नरम ।।
रोने और तड़पने के अतिरिक्त नहीं कुछ चारा था ।
सभी मिट चुका दुनियाँ से यों जो कुछ उनका प्यारा था ।।

---

१. धर्मराज

कहा नकुल से धर्मराज ने कृष्णा दुखिया को लाओ।
मातृपक्ष की सभी नारियों को भी, सत्वर ले आओ॥
भेज नकुल को धर्मराज हो शोकाकुल रोते रोते।
गये जहाँ पर पुत्र पड़े थे बधे गए सोते सोते॥

देखी कटी पड़ी सब उनने पुत्र सहित सेना सारी।
आँखों में आँसू भर आये, लगे रुदन करने भारी॥
जीत हुई थी मेरी पर अब, जीत गए हैं वे मुझसे।
चला गया सर्वस्व हमारा कौन जीत कहता इससे॥

कभी कभी अनहित की बातें, पहिले हित दरशाती हैं।
किन्तु अन्त में हमको भीषण कष्ट वेदना लाती हैं॥
नहीं समझ में आता कुछ तब, भाव वेग में बह जाते—
हम सब, लाभ मीन को गहने, किन्तु भंवर में फँस जाते॥

आज मानता हूँ मैं ऐसा विजय हमारी हार हुई।
दुखकारी है शत्रु पराजय जिसमें ममता क्षार हुई॥
हा ! प्रमाद से बढ़कर दुनियां में न मृत्यु होती कोई।
अर्थ त्याग देते प्रमादवश वे, कि बुद्धि जिनकी खोई॥

प्राप्त प्रमादी कभी न करता, विद्या, तप वैभव या यश।
वह तो सदा प्रमाद बोझ से रहता है पशु सम परवश॥
जैसे सारी नदी पार कर तरनी जा डूबे तट पर।
उसी भाँति रण के प्रमाद में नष्ट हुए मेरे हितकर॥

उसी समय द्रौपदी वहाँ पर आई देखा हाल अजब ।
कभी नहीं सोचा था उसने जैसा था हो गया गजब ।।
धर्मराज के चरणों पर वह गिरी धड़ाके से ऐसे ।
कोई बड़ा वृक्ष आंधी से कभी उखड़ गिरता जैसे ।।

बहुत भाँति समझाया सबने किन्तु न शान्ति मिली उसको ।
अनायास यों सुत खोने से धैर्य मिला है कब किसको ।।
"क्षात्र धर्म अनुसार न मारे बीर पाँच बालक मेरे ।
भूल जायेंगे आप सभी पर दुःख मुझे होगा घेरे ।।

सोते में वध कर डाला है युद्ध धर्म कब है माना ।
पाप किया है उनने भारी सत् वा असत् न पहिचाना ।।
दूध पिलाया जिनको मैंने पाल पोष कर बड़ा किया ।
भूल सकूंगी कभी न जो अश्वत्थामा ने पाप किया ।।

साथी सहित आज यदि उसको प्राण दण्ड नहिं हो देते ।
प्राण हमारे भी लेने का अपयश शीश पर हो लेते ।।
आजीवन अनशन व्रत लूंगी प्राण त्याग दूंगी ऐसे ।
जैसे मरे पुत्र मेरे हैं मर जाऊँगी मैं वैसे" ।।

धर्य बँधाया गया, सुतों ने रण में सुगति प्राप्त की है ।
करुणा ऐसे पुत्रों के हित समझदार ने कब की है ।।
बहुत दूर अब चला गया अश्वत्थामा कह समझाया ।
मार दिया जायेगा वह, यदि जीवित कभी गया पाया ।।

जाकर भीम समीप कहा फिर 'आप करो रक्षा मेरी।
धर्म शास्त्र अनुसार आज बदला लेने में क्या देरी ?
शम्ब-असुर को वधा इन्द्र ने उसी भाँति वध कीजे आप।
जब तक दण्ड न उसको मिलता नहीं मिटेगा मम संताप।।

जैसे वरणावत् नगरी में रक्षा पाण्डु सुतों की, की।
प्राण बचाये थे हिडिम्ब से, जान निकाली कीचक की।।
बड़े बड़े संकट सह कर तुमने रक्षा की निज जन की।
आज याचना तुमसे है मेरी अश्वत्थामा वध की'' ।।

भीषण दुःख और रोना यों भीम सहन कब कर पाये।
निश्चय वध करने की मन में ठान अस्त्र थे मंगवाये।।
सारथि बना नकुल को उनने रण हित शीघ्र पयान किया।
पीछा करने के हित उनने लक्ष्य शत्रु-रथ-चिन्ह लिया।।

बोले कृष्ण युधिष्ठिर से "है शिक्षा मिली उसे ऐसी—
द्रोण पुत्र के शक्ति पास है ब्रह्म अस्त्र के ही जैसी।।
उसी शस्त्र का ज्ञान प्राप्त है अर्जुन को भी, भान करो।
उपयोगी होगा अर्जुन का जाना, इसका ध्यान करो।।

भीमसेन हैं गए अकेले पुत्र-शोक में हैं आकुल।
नहीं बचेंगे मुझे दीखता भीमवीर औ' बन्धु नकुल।।
क्रूर छली है खूब जानते तुम अश्वत्थामा भारी।
है आपे के बाहर अब वह दुष्ठ बड़ा अत्याचारी।।

बनें सहायक भीमसेन के अर्जुन तभी जीत होगी।
भेजें इनको शीघ्र, यही हैं ब्रह्म शस्त्र हित उपयोगी ॥
यही बचा सकते हैं सबको बात मानिये यह मेरी"।
"अर्जुन जाओ" कहा धर्म ने "करो नहीं क्षण भर देरी" ॥

देखा उसको गंगा तट पर ध्यान लगाये रमा हुआ।
परम यशस्वी व्यास और कुछ ऋषियों के संग जमा हुआ ॥
कुशा वस्त्र पहिने था वह औ' भस्मि विभूषित थी काया।
कुन्ती नन्दन भीमसेन पर, समझ गए उसकी माया ॥

टूट पड़े ले गदा हाथ में बोले "उठो लड़ो पाजी।
था अतिगर्व तुझे है तूने जीती छल से रणबाजी ॥
देख भीम को अश्वत्थामा ने, पीछे देखा आते—
महा प्रतापी कृष्ण, धर्म औ' अर्जुन को अति रिसियाते ॥

देख सभी को डरा बहुत पर निश्चय किया तुरत मन में।
केवल ब्रह्म अस्त्र से हो बस बच सकता इस जीवन में ॥
दिव्य अस्त्र का चिन्तन करके एक सींक ले बायें कर।
किया कठिन संकल्प कि जिससे क्षय हों पांडव सब जल कर ॥

क्रोध भरे मन से छोड़ा फिर जैसे जगत-मोह आया।
हुई अग्नि उत्पन्न सींक से कोई नहीं समझ पाया ॥
कृष्ण समझते थे जो बातें करी वहाँ उस पापी ने।
लगा विचित्र सभी को जो कुछ किया दुष्ट सन्तापी ने ॥

देख यत्न अश्वत्थामा का बोले कृष्ण पार्थ से यों।
"सीखी तुमने भी यह विद्या फिर प्रयोग की चिन्ता क्यों॥
तुम भी झट उपयोग करो अब तनिक नहीं लाओ देरी।
प्राण तुम्हारे सहित बन्धु के, लेने को आतुर बैरी॥

ब्रह्म अस्त्र यह विफल बनेगा ब्रह्म अस्त्र से ही जानो।
लोहा लोहे से कटता है बात हमारी सच मानो"॥
सुनकर कूद पड़े रथ से चट लगे मन्त्र फिर वे जपने।
मंगल हो आचार्य पुत्र का सुखी रहें भाई अपने॥

कर गुरुजन का ध्यान शीश नत बोले पार्थ ध्यान धर के।
ब्रह्म अस्त्र हो शान्त शत्रु का यही भावना मन भर के॥
दोनों के द्वारा था छूटा अस्त्र और धनु टंकारें।
उल्का गिरते आसमान से या हों जलते अंगारे॥

जली अग्नि की ज्वाला सहसा चकाचौंध थी दिशा सभी।
मानों रवि का हृदय फट गया लखा न ऐसा दृश्य कभी॥
ब्रह्म अस्त्र की टंकारों से ध्वनि होती थी अति भारी।
इस क्षण जैसी ज्वाला-ऊष्मा सह न सके नर संसारी॥

छल बल किया अनेक भाँति पर चली न पापी की माया।
तब वह ब्रह्म अस्त्र ले पापी वंश नाश के हित धाया॥
जान उत्तरा[1] गर्भवती है छोड़ो उसने शक्ति प्रचंड।
उसका नीच कर्म लख ऐसा क्षुब्ध हुए श्रीपति, श्रीखण्ड॥

---

१. ब्रह्मास्त्र में ध्यान धरे शत्रु पर प्रहार करने की शक्ति थी। अश्वत्थामा ने अपने प्राण संकट में समझ पाण्डव कुल का विनाश चाहा था।

"पाण्डव वंश नष्ट करने को तुमने मन में ठानी है।
नहीं चलेगी चाल तुम्हारी मेरी भी यह वाणी है" ॥
रक्षा करी तुरत यह कह कर वासुदेव ने कर माया।
अनाचार सहते कब भगवन् सभी शास्त्र द्वारा गाया ॥

बाँध लिया अर्जुन ने उसको ला कर खड़ा किया बाहर।
बोले "चोरी से सोतों को वध, कहलाते नर नाहर ॥
काला मुंह पड़ गया लाज से, आँखें भीतर थीं चिपकी।
दीन बना वह खड़ा रहा भर आई थीं उस क्षण हिचकी ॥

× × × ×

देख दीनता ब्राह्मण सुत की, दया आ गई कृष्णा को ॥
चाह न थी कुछ शेष देख यह कृष्णा सी दुख व्यसना को ॥
बोली "छोड़ो इसे, विप्र है यह" कर निज पाषाण हिया।
कर्म नहीं देखे पापी के केवल कुल का ध्यान दिया ॥

"पुत्र द्रोण का कहलाता है गुरू मानते हम उनको।
अस्त्र शस्त्र सब उनसे सीखे, वीर जानते हम जिनको ॥
उनको आज मान देना है, प्राण नहीं इसके लेकर।
गुरु के ऋण से मुक्त बने हम, उसको प्राण दान देकर ॥

वंश आपका बड़ा यशस्वी रहा कलंक न लग जाये।
देती हूं वरदान मृत्यु यह कभी नहीं जग में पाये ॥
पुत्र शोक से ज्यों मैं रोती क्यों गुरु पत्नी भी रोये।
ब्राह्मण होता पूज्य सदा से मुक्त कीजिये घर जाये" ॥

कृष्णा बोली "मस्तक मणि है इसे जन्म से प्राप्त हुई।
उसे छीन कर मुक्त कीजिये" इतना कह कर खिन्न हुई॥
"उसकी दुर्गति यों कर दी तो हृदय शान्त हो जायेगा।
काम हुआ यदि नहीं इस तरह शान्ति न मम मन पायेगा"॥

कृष्णा को यह दया भावना और क्षमा लख सब हर्षे।
मानवता का प्रेम समझ कर आँखों से आँसू बरसे॥
मस्तक मणि ली काट पार्थ ने मुंडित सिर कर छोड़ दिया।
केवल क्षमा भाव के कारण वैरी ब्राह्मण—पुत्र जिया॥

अर्जुन ने वह दिव्य राशि मणि भूप युधिष्ठर को दे दी।
इस प्रकार वह पापी तब से बना देह का ही कैदी॥
बहुत दुखी हो चला गया था जंगल को अश्वत्थामा।
कृष्णा को सन्तोष हुआ कुछ, मिटा युद्ध का हंगामा।

## द्रौपदी की ममता

करुण विलाप किया कृष्णा ने जब माँ कुन्ती को देखा।
"हाय! कहां अभिमन्यु गया, हैं कहाँ पाँच मम उर रेखा॥
दीर्घकाल के बाद आपके दर्शन हुये आज माता।
देख तपस्विनि देवी को हैं कहाँ छिप गये सब भ्राता॥

क्यों न सामने आकर तुमको नत प्रणाम करते हैं आज।
पुत्रों से हो हीन मुझे अब रहा राज्य, तनसे क्या काज॥
नहीं रख सकूँगी जीवन जब, सब कुछ मेरा चला गया।
सोते में अश्वत्थामा ने पुत्र बधे तज सहज दया"॥

रोते रोते विह्वल होकर धरती पर वह लेट गई।
देख दशा यह उसकी कुन्ती सहसा शोक-विभोर भई॥
नहीं समझ पाती थी मन में क्या कह कर वह समझाये।
जीवन-प्राण कहाँ मिल सकते, क्या अब उसको बतलाये॥

महाशोक से आतुर होकर कुन्ती ने रोते रोते—
दिया सांत्वना द्रुपद कुमारी को पर धीरज कब होते ॥
उसे उठाकर धरती पर से आँसू निज कर से पोंछे।
कहा "धैर्य धारो कृष्णा तुम किये कर्म उनने ओछे ॥

जो कुछ लिखा भाग्य में होता, मिलता वही, न जाता है।
करे चाहना कोई कितनी, उससे अधिक न पाता है ॥
है यह कार्य ब्रह्म का सारा, जिसने दिया कष्ट तुझको।
किस प्रकार तुझको समझाऊँ, समझ न पड़ता जो मुझको" ॥

उसे उठाया कुन्ती ने ले गांधारी के पास गई।
देख दशा उस यशस्विनी की, कृष्णा और अधीर भई ॥
धर धीरज तब गांधारी ने कृष्णा से यह बात कही।
"इस प्रकार शोक से व्याकुल क्षत्राणी होती न कहीं ॥

मेरी ओर न क्यों लखती हो मैं भी दुख में डूबी हूँ।
देख सभी की दीन दशायें अपना दुख मैं भूली हूँ ॥
समय, भाग्य के उलट फेर से, प्रेरित होकर यह सारा—
हुआ विनाश आज कुल मेरा, होनहार किसने टारा[1] ॥

रहा काण्ड यह होने वाला, हुआ वही ऐसा जानो।
इसमें रंच न दोष किसी का, बात सत्य निश्चित मानो ॥
सफल न हुई कृष्ण की अनुनय-विनय संधि करवाने में।
सभी महत्व पूर्ण बातें थीं, कही विदुर ने जाने में ॥

---

१. टारा=टाला

हुआ वही जो कहा उन्होंने, थी बातें जानो मानी।
कभी न रुक सकता विनाश यह, थीं सब बातें अनुमानी ॥
होना था जो सभी हो गया वृथा शोक अब है करना।
मारे गये सभी रण थल में, रहे योग्य सब, मन धरना ॥

जैसी मैं हूँ आज द्रौपदी, वही तुम्हारी भी गति है।
कौन बँधाये किसको धीरज, दोनों की आतुर मति है ॥
मेरे ही अपराधों से यह श्रेष्ठ वंश संहार हुआ।
धरो धैर्य अब अपने मन में, भूलो जो व्यवहार हुआ" ॥

# धर्मराज की विरक्ति भावना और द्रौपदी की उक्ति

कर्ण जन्म की कथा जानकर धर्मराज थे महा दुखी।
उन्हें लगा धन राज्य सम्पदा से जन होता नहीं सुखी ॥
हेतु सभी ये हैं विनाश के ईर्षा, क्रोध अहं लाते।
पास न रहते कभी सदा वे इनके, संग में बह जाते ॥

किया पाप हमने भारी जो राज्य सम्पदा के हित से।
नष्ट कर दिया कुल अपना, हो गई घृणा अपनी कृति से ॥
हुआ देश सब तहस नहस हैं मारे गये वीर सारे।
हुई करोड़ों ही विधवायें, हुये अनाथ बहुत बारे[1] ॥

जिसका कुछ अस्तित्व नहीं है, उसके हित क्यों किया प्रयास।
कारण हुआ आज जो सारा कुल औ' जग का सत्यानाश ॥
दूर हो गया क्रोध हमारा, मार शत्रुओं को, माना।
पर न शोक कर सके दूर हम, कभी न यों था मैं जाना ॥

---

१. बच्चे, बालक

धर्मराज ने कहा धनंजय से "वेदों का यह मत है।
किये हुये सब पाप नष्ट हो जाते, बात सही सत है॥
पापी कहें स्वयं पापों को, औ' शुभ कर्म करे न्यारे।
पश्चाताप, तीर्थ यात्रा, तपदान करे यदि वह सारे॥

पार्थ पाप सब कट जाते हैं निवृति परायण होने से।
करे अगर स्वाध्याय वेद औ' शास्त्रों का, रुचि होने से॥
कर सकते हैं पाप न त्यागी, हैं ये श्रुति के कथन सही।
जन्म मरण के बन्धन में भी, फिर वे पड़ते कभी नहीं॥

अर्जुन! ताप शत्रुओं को देने वाले, अब है इच्छा—
विदा माँग कर तुम लोगों से, बन में जा माँगू भिक्षा॥
मत मेरा है यही धनंजय संग्रह और परिग्रह में।
फँसा हुआ मैं रम न सकूँगा, प्रभु के प्रेम अनुग्रह में॥

अत: आज अनुरोध पार्थ तुमसे मेरा है, यह सुन लो।
शासन करो पूर्ण पृथ्वी का, निष्कंटक सत्ता कर लो॥
मुझे राज्य सुख वैभव जग का अब न चाहिये, किया विचार"।
चुप हो गये बात कह इतनी धर्मराज, चिर धर्म उदार॥

सुनकर बातें धर्मराज की हुये पार्थ विह्वल भारी।
बोले "क्या हैं आप कह रहे, लगी कहाँ यह बीमारी॥
किया अलौकिक महापराक्रम राज लक्ष्मी मिली तभी।
अनायास जिसको तजने को, सोच रहे हैं आप सभी॥

कर संहार शत्रुओं का राजन् भू का अधिकार मिला।
प्राप्त किया धर्मानुसार सब राज्य संपदा और किला ॥
कायर और आलसी जन को प्राप्त न होता राज्य कभी।
यदि थी यही भावना मन में क्यों न बताया प्रथम सभी" ॥

राजनीति औ' लोक-धर्म की बातें कही अनेक प्रकार।
धर्ममान्य श्री धर्मराज ने, बदले अपने नहीं विचार ॥
जो कुछ बातें कहीं पार्थ ने धर्म राज ने काट दिया।
उत्तम जीवन संन्यासी का उन्हें बता कर डाट दिया ॥

कहा भीम ने "महाराज यह राजधर्म की है निन्दा।
इसी धर्म से आज विश्व की निष्ठा सारी है जिन्दा ॥
क्षात्र धर्म के विद्वानों का मत है, उन्हें मार देना।
राज ग्रहण के समय अगर कोई करता है ठक ठेना[1]" ॥

बहुत बहुत समझाया उनने, बात न उनकी भी मानी।
तभी नकुल ने गृहस्थ आश्रम की महिमा जानी मानी—
कही बोधकर धर्मराज से, है उत्तम यह चारों[2] में।
योग्य आप हैं राज्य काज निर्माण, अनेक विचारों में ॥

कहा पुनः सहदेव अनुज ने "महाराज विनती सुनिये।
"मैं" "मेरा" का भाव मृत्यु है तनिक इसे मनमें गुनिये ॥
"मैं" "यह मेरा नहीं" भाव ही ब्रह्म सनातन कहलाते।
मृत्यु और अमृत आप में, दोनों ही पाया जाते ॥

---

१. झंझट। २. ब्रह्मचर्य, ग्राहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास।

अदृश्य भाव से रहकर ये ही, आपस में लड़वाते हैं।
इसमें संशय नहीं इसी से, प्राणी सब दुख पाते हैं॥
यदि है जीवात्मा का होना अविनाशी राजन निश्चित।
तब यो हिंसा कभी न होती, देह बधे से यह किंचित॥

अगर मान लो संग अंग के जीव जन्मता मरता है।
तब तो काया नष्ट हुये पर, जीव नष्ट हो रहता है॥
माना गया कभी यदि ऐसा गुनिये क्या हो जायेगा।
सारा वैदिक कर्म मार्ग ही, व्यर्थ सिद्ध हो जायेगा॥

अतः विचार छोड़कर राजन रहने का एकान्त कभी।
करें अनुशरण उसी मार्ग का, करते पूर्वज रहे सभी॥
करते हुए गृहस्थ धर्म का पालन, यदि शासन करना।
अधम मार्ग हैं आप समझते, तो मुझको बस है कहना॥

स्वायम्भुव मनु तथा अनेकों चक्रवर्त्ति राजाओं ने।
क्यों सेवन था किया इसे जनकादिक महानुभावों ने॥
युक्त चराचर सभी प्राणियों से पृथ्वी को जो पाकर—
इसका है उपभोग न करता उचित रूप से, है कातर॥

करी धृष्टता आज आपसे, कहे वचन जो भी अनुचित।
क्षमा करें, सुन बात आपकी, मेरा मन था महा दुखित—
मेरे आप पिता, माता, भ्राता गुरु औ' है कर्णधार[1]।
लगें यथार्थ अगर बातें तो, इसपर करिये पुनः विचार"॥

---

१. नाविक, पतवार सम्भालने वाला।

किया आग्रह सभी भाइयों ने मिल नृप से शत् शत् बार।
धर्म धुरन्धर धर्मराज ने तनिक न बदले त्याग-विचार ॥
देख दशा यों धर्मराज की कृष्णा ने जिह्वा खोली।
बड़ी विनम्र भावना लेकर उच्च विचारों से बोली ॥

उत्पन्न हुई थी वह महान् कुल में, थी श्रेष्ठ युवतियों में।
था चिर प्रेम शुद्ध उसका अपने मर्यादित पतियों[1] में ॥
था स्थूल नितम्ब और थीं अति विशाल आँखें उसकी।
रूप मनोहर, पूर्ण विश्व में उपमा कहीं न सम जिसकी ॥

था अभिमान धर्मराज के प्रति उसको कर्तव्यों में।
रही लाड़ली उनकी सब दिन धर्म कर्म मंतव्यों में ॥
धर्म कर्म का उसे ज्ञान था, धर्म मार्ग पर थी चलती।
धर्म बिरुद्ध कभी कोई वह कार्य न किंचित थी करती ॥

करि समूह से घिरा हुआ, गजराज शोभता है जैसे।
मध्य पाण्डवों के बैठी कृष्णा भी शोभित थी वैसे ॥
परम मधुर वाणी से बोली, लखकर धर्मराज की ओर।
देती हुई सान्त्वना उनको, पाण्डव थे सब चकित विभोर ॥

"कुन्ती नन्दन सूख गये हैं पाण्डव सुन संकल्प कराल।
और पपीहों के सदृश सब आज हो रहे हैं विकराल ॥
लगा रहे हैं शासन करने की रट सब मिन्नत करते।
फिर भी इनका अभिनन्दन नृप ! आप नहीं क्यों हैं करते ॥

१. पतियों=रक्षकों।

उन्मत्त हुये गजराजों के सम बन्धु आपके ये सारे।
सदा दुःख ही दुःख उठाते रहे न पर साहस हारे॥
अब तो दया कीजिये इनपर और न दुख अब ये पायें।
युक्तियुक्त वचनों द्वारा अभिनन्दन करिये बलि जायें॥

भोग रहे थे कष्ट संग में बन्धु आपके वन वन में।
सर्दी गर्मी आँधी पानी; खिन्न हुये न कभी मन में॥
देते हुए धैर्य इनको, क्या वहाँ आपने कहा न था।
उन बातों को भूल गये या, ऐसा क्या तब ज्ञान न था॥

वीर वन्धुओ ! विजय आश रखने वाले हम रण थल में।
दुर्योधन को मार महा रथियों को काट काट पल में॥
करि-सवार को मी वध कर हम सब घुड़सवार के सहित वहाँ।
पाट देयगे युद्ध-भूमि को छिड़ा अगर रण कभी यहाँ॥

तत्पश्चात पूर्ण भोगों से अति सम्पन्न वसुन्धरा का।
हम सब मिलकर भोग करेंगे होगा दुःख न क्षण भर का॥
यज्ञ करेंगे, दान दक्षिणा वाले, भगवत की पूजा।
होगा यह दुख, सुख में परिणित, पर अब मनमें क्या गूँजा॥

आप द्वैत बन में ऐसी बातें करते थे स्वयं वहाँ।
तोड़ रहे हैं हम लोगों का दिल फिर क्यों अब आज यहाँ॥
जो हैं कायर और नपुंसक कर सकते उपभोग नहीं।
इस पृथ्वी का शासन करने के वे होते योग्य नहीं॥

कभी उपार्जन धन का, अथवा भोग न कर सकते राजन ।
भार स्वरूप उन्हें पृथ्वी का कहते हैं योगी-बुध जन ।।
जिस भाँति मछलियाँ केवल कीचड़ में उत्पन्न नहीं होतीं ।
उसी प्रकार नपुंसक के घर पुत्र वृद्धि नृप कब होती ?

जिनमें दण्ड न देने की है शक्ति कभी क्षत्रिय ऐसे ।
शोभा कहीं कदाचित पाते लगते हैं वे खर जैसे ।।
जब तक दण्ड न देता राजा स्वयं न करता सुख उपभोग ।
दण्डहीन नृप से जनता भी कभी न कर सकती सुख-भोग ।।

उचित दण्ड दुष्टों को देना औ' पालन सत्पुरुषों का ।
पीठ न दिखलाना रण थल में, श्रेष्ठ धर्म यह पुरुषों का ।।
देना लेना दान तथा अध्ययन, तपस्या का करना ।
हैं ब्राह्मण के धर्म सभी ये, मैत्री भी सबसे रखना ।।

जिनमें क्रोध, क्षमा होते हैं दोनों प्रगट समय अनुसार ।
जो देते हैं दान तथा कर लेते राज्य धर्म अनुहार ।।
जिनमें शक्ति शत्रुओं को भय दिखलाने की भी होती है ।
शरणागत् को अभय, शक्ति भी, कहलाती नृप-जोती है ।।

मिली नहीं नृप ! धरा आपको यह शास्त्रों के सुनने से ।
नहीं हुई उपलब्ध कभी यह यज्ञ कर्म के करने से ।।
दान रूप में या कि किसी को समझाने से मिली नहीं ।
भीख माँगने से भी राजन ! प्राप्त कभी यह हुई नहीं ।।

रही शत्रुओं की सेना अति श्रेष्ठ सुसज्जित औ' सम्पन्न ।
थे हाथी, घोड़े, रथ, अगनित करते मन में भय उत्पन्न ।।
जिसकी रक्षा द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा, 'कृप' करते थे ।
किया आपने उनका क्षय है जिनसे सुर-नर डरते थे ।।

पाया तब अधिकार नृपतिवर ! इस धरती का, ध्यान धरे ।
अतः आज है यही याचना इसका अब सम्मान करें ।।
अपने युक्त अनेक जनपदों से यह जम्बूद्वीप महा ।
देकर दण्ड रौंद डाला है, अब पापी खल नीच कहाँ ?

क्रमशः पश्चिम और पूर्व में, महा मेरु से लगे हुये ।
क्रौंच द्वीप औ' शाक द्वीप भी नृपवर हो आधीन लिये ।।
भद्राश्व[1] जो शाक द्वीप के सम है उसको दबा दिया ।
आश्रय भूत अनेक द्वीप औ' आन्त दीप भी स्ववश किया ।।

किया पराक्रम अनुपम औ' सम्मानित हो द्विजातियों से ।
क्यों न प्रसन्न हो रहे हो अब राजन् दण्ड नीतियों से ।।
मतवाले साड़ों के सम बलशाली सब गज राज समान ।
देख आप इन बन्धु गणों को, अभिनन्दित हूजे मतिमान ।।

शत्रु जनों को संतापित करने वाले ये बन्धु सभी ।
वेग सहन करने में उनके, पीछे थे नहिं हटे कभी ।।
देव तुल्य ये तेजस्वी हैं मेरा है यह दृढ़ विस्वास ।
एक वीर भी इन पाँचों में सुखी बना सकता हर त्रास ।।

---

१. भद्राश्ववर्ष

फिर नर श्रेष्ठ वीर योधा मिल पांच नहीं क्या कर सकते ?
देख पराक्रम पौरुष जिनका देव यक्ष तक हैं थकते ॥
नर शरीर को चेष्टाशील बनाने में जो है सुस्थान—
सभी इन्द्रियों का—त्यों जानो, सुखी बनाने में मम प्रान ॥

मेरी सास न कभी झूँठ बोली थी, महाराज है ज्ञान ।
हैं सर्वज्ञ देख सकती सब उन्हें समय का है प्रति-भान ॥
कहा उन्होंने मुझे एक दिन था, न जिसे हैं बिसराया ।
'दुख उपरान्त सदा सुख मिलता, वेदों ने है यह गाया ॥

विकट काल में नृपति युधिष्ठिर निज पौरुष दिखला करके ।
विजय प्राप्त कर लेंगे रण में वैरी सभी क्षार करके ॥
तुझे प्रतिष्ठित सुख—सिंहासन पर कर, देंगे धर्माधार ।'
उनकी बातें भी, लगता है व्यर्थ हुई यह देख विचार ॥

जिनका जेठा बन्धु नृपति वर हो जाता उन्मत्त कभी ।
करते हैं अनुसरण उसीका उसके छोटे बन्धु सभी ॥
पाण्डव हैं उन्मत्त हो गये देख आपका यह उन्माद ।
समझ न पाती हूँ भविष्य को, देख आपका आज प्रमाद ॥

सभी हुये उन्मत्त न होते तो ये पाण्डव वीर महा ।
बांध आपको पतित नास्तिकों के संग राजन अभी यहाँ ॥
करते शासन स्वयं सभी इस वसुधा का निर्भय होकर ।
कभी न करते विवश आपको, यों अतिशत कातर होकर ॥

रही शत्रुओं की सेना अति श्रेष्ठ सुसज्जित औ' सम्पन्न ।
थे हाथी, घोड़े, रथ, अगनित करते मन में भय उत्पन्न ।।
जिसकी रक्षा द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा, 'कृप' करते थे ।
किया आपने उनका क्षय है जिनसे सुर-नर डरते थे ।।

पाया तब अधिकार नृपतिवर ! इस धरती का, ध्यान धरे ।
अतः आज है यही याचना इसका अब सम्मान करें ।।
अपने युक्त अनेक जनपदों से यह जम्बूद्वीप महा ।
देकर दण्ड रौंद डाला है, अब पापी खल नीच कहाँ ?

क्रमशः पश्चिम और पूर्व में, महा मेरु से लगे हुये ।
क्रौंच द्वीप औ' शाक द्वीप भी नृपवर हो आधीन लिये ।।
भद्राश्व[1] जो शाक द्वीप के सम है उसको दबा दिया ।
आश्रय भूत अनेक द्वीप औ' आन्त दीप भी स्ववश किया ।।

किया पराक्रम अनुपम औ' सम्मानित हो द्विजातियों से ।
क्यों न प्रसन्न हो रहे हो अब राजन् दण्ड नीतियों से ।।
मतवाले साड़ों के सम बलशाली सब गज राज समान ।
देख आप इन बन्धु गणों को, अभिनन्दित हूजे मतिमान ।।

शत्रु जनों को संतापित करने वाले ये बन्धु सभी ।
वेग सहन करने में उनके, पीछे थे नहिं हटे कभी ।।
देव तुल्य ये तेजस्वी हैं मेरा है यह दृढ़ विस्वास ।
एक वीर भी इन पाँचों में सुखी बना सकता हर त्रास ।।

---

१. भद्राश्ववर्ष

फिर नर श्रेष्ठ वीर योधा मिल पांच नहीं क्या कर सकते ?
देख पराक्रम पौरुष जिनका देव यक्ष तक हैं थकते ॥
नर शरीर को चेष्टाशील बनाने में जो है सुस्थान—
सभी इन्द्रियों का—त्यों जानो, सुखी बनाने में मम आन ॥

मेरी सास न कभी झूँठ बोली थी, महाराज है ज्ञान।
हैं सर्वज्ञ देख सकती सब उन्हें समय का है प्रति भान ॥
कहा उन्होंने मुझे एक दिन था, न जिसे हैं बिसराया।
'दुख उपरान्त सदा सुख मिलता, वेदों ने है यह गाया ॥

विकट काल में नृपति युधिष्ठिर निज पौरुष दिखला करके।
विजय प्राप्त कर लेंगे रण में वैरी सभी क्षार करके ॥
तुझे प्रतिष्ठित सुख—सिंहासन पर कर, देंगे धर्माधार।'
उनकी बातें भी, लगता है व्यर्थ हुई यह देख विचार ॥

जिनका जेठा बन्धु नृपति वर हो जाता उन्मत्त कभी।
करते हैं अनुसरण उसीका उसके छोटे बन्धु सभी ॥
पाण्डव हैं उन्मत्त हो गये देख आपका यह उन्माद।
समझ न पाती हूँ भविष्य को, देख आपका आज प्रमाद ॥

सभी हुये उन्मत्त न होते तो ये पाण्डव वीर महा।
बाँध आपको पतित नास्तिकों के संग राजन अभी यहाँ ॥
करते शासन स्वयं सभी इस वसुधा का निर्भय होकर।
कभी न करते विवश आपको, यों अतिशत कातर होकर ॥

करता है जो कर्म इस तरह महा मूर्ख कहलाता है।
कभी न हित उसका हो सकता, अंत समय पछताता है॥
जो उन्माद ग्रस्त होकर नृप! उलटे मार्ग ग्रहण करते।
दोनों लोक नष्ट करते वे, कभी न वैतरनी तरते॥

उनके लिये उचित लगता है धूप-सुगन्ध प्रथम देकर।
फिर दोनों नेत्रों में कोई अंजन सिद्ध लगा-मलकर॥
सुँघनी इन्हें सुँघाकर अथवा कोई औषधि देकर भी।
उसकी करे चिकित्सा राजन! सम्भव जो हो सुलभ सभी॥

धर्मराज! मैं अधम नारि हूँ विश्व नारियों में सबसे।
पुत्रहीन हो जाने पर भी, मोह रहा इस जीवन से॥
हैं कर रहे प्रयत्न आप को ये सब लोग समझने का।
फिर भी देते ध्यान न इन पर है यह विषय अखरने का॥

जो कुछ मैंने कहा अभी वह वचन न मेरा झूठा है।
केवल मुझे भान होता है भाग्य हमारा रूठा है॥
जिसके कारण त्याग रहे हो पूरी पृथ्वी का यह राज।
अपने लिये विपत्ति आप ही खड़ी कर रहे हो नृप! आज॥

थे सम्मानित भू मंडल के सभी नृपति वर में, जैसे—
मन्धाता[1] औ' अम्बरीष—राजन हो आज आप वैसे॥
करते हुए प्रजा का पालन धर्म पूर्वक धर्माधार।
शासन करिये इस पृथ्वी का त्याग दीजिए, त्याग विचार॥

---

१. मान्धाता

यज्ञ कीजिये भाँति भाँति के युद्ध शत्रुओं से रण में ।
दान करूँ मैं विप्रों को धन, वस्त्र, अन्न निज प्राङ्गण में ।।
शोभा देता यही आपको, त्याग-भावना तज दीजे ।
करके सेवा जीव मात्र की जन्म सफल अपना कीजे ।।"

पुनः नकुल सहदेव भीम औ' अर्जुन ने भी समझाया ।
राज दण्ड की कही महत्ता भुक्त दुखों को जतलाया ।।
देवस्थान व्यास मुनि ने भी दे दृष्टांत महान अनेक ।
क्षात्र धर्म की करी प्रशंसा रख रख अपने मन की टेक ।।

विवश हुए यों धर्मराज तब स्वीकारा शासन का भार ।
हुई प्रफुल्लित कृष्णा मन में सुखी हुये सब पाण्डु कुमार ।।
समाचार सारे भू मंडल में यह सत्वर फैल गया ।
प्रमुदित हुई सभी जनता औ' छाया था उत्साह नया ।

## हस्तिनापुर में स्वागत

रण के बाद हस्तिनापुर में जब कृष्णा ने किया प्रवेश ।
उसे देखने के हित आये नर नारी औ' देव विशेष ।।
सभी इकट्ठे थे सड़कों पर पुष्पों की लेकर माला ।
जय ध्वणि गूँज रही थी नभ में जनमन होता मतवाला ।।

जैसे चन्द्रोदय होने से सिंधु उमड़ने लगता है ।
सूर्य उदय से तालाबों में कमलों का दल खिलता है ।।
उसी तरह से चौराहे थे खूब सजाये गये वहाँ ।
भीड़ उमड़ती हुई प्रजाजन की थी शोभा वहाँ महा ।।

राज मार्ग सब सजे हुये थे हरी पत्तियों फूलों से ।
कदली के बहु बृक्ष लगे थे, मार्ग मार्ग पर कूलों[1] से ।।
तोरण झंडी उच्च मचानों की अति दिव्य सजावट थी ।
उत्तम घोड़े था रथ सुन्दर, अनुपम परम बनावट थी ।।

---

१. किनारों

आस पास के भवन सभी थे रत्न विभूषित और विशाल।
जिन पर थी सुन्दर ललनायें कमल करों में ले ले थाल ॥
सजा आरती स्वागत के हित, कृष्णा को थीं जोह रहीं।
कोकिल कण्ठों से सुगान कर सब का मन थी मोह रहीं ॥

करने लगीं प्रशंसा वे फिर निष्ठा धारे तन मन में।
धीरे धीरे धर्मराज औ' भीमसेन की—आपस में ॥
करी प्रशंसा पार्थ, नकुल, सहदेव वीर की करनी की।
पुनः प्रशंसा करी सभी ने भारत की शुचि धरनी की ॥

जहाँ महा पांचाल कुमारी कृष्णा ने था जन्म लिया।
धन्य धन्य हो तुम देवी द्रौपदी परम उपकार किया ॥
पाँच महान व्यक्तियों की तुम सेवा में रत रहती हो।
कर्म धर्म व्रत सदा निबाहा, तुम इस युग की महती हो ॥

है व्रतचर्या सफल तुम्हारी तुम विशाल गुणशाली हो।
हैं अमोघ सब पुण्य कर्म तव, तुम अघ घातक काली हो ॥
तुम दुर्गा हो तुम बाराही तुम हो जगत जननि माता।
है विनम्र मेरा प्रणाम कर जोर जुगल कृष्णा माता' ॥

द्रुपद कुमारी की सबने थी करी प्रशंसा इकमत हो।
सती वही कहलाती जग में जिनमें पातिवृत सत हो ॥
तुमने जग—नारी की लज्जा रक्खी मान बढ़ाया है।
पातिवृत से सदा विजय मिलती तुमने सिखलाया है ॥

जेठ और देवर की सेवा तुमने करी सदा सम भाव।
पति औ' उनमें भेद न रक्खा, हुआ न मन का कभी मुटाव ॥
सास ससुर कुल मर्यादा का पालन तुमने किया सदा।
कुल को किया संगठित तुमने अवसर पाकर यदा कदा ॥

सजे सजाये राज मार्ग से राज भवन में वह आई।
मुख्य नागरिक जहाँ इकट्ठे थे, बजती थी सहनाई ॥
हुआ वहाँ स्वागत पाण्डव का, कृष्णा का सम्मान हुआ।
सभी मांगलिक द्रव्यों द्वारा राजोचित सत्कार हुआ ॥

राजमहल भीतर कृष्णा ने किया प्रवेश मुदित मन से।
ब्राह्मण भिक्षुक दास दासियों को संतुष्ट किया धन से ॥
हुआ उल्लासित जन समूह, औ' फिर से आशा उर जामी।
युग युग जियें पाण्डु सुत, कृष्णा, हों उनके हम अनुगामी ॥

## राजभवन में सम्राज्ञी द्रौपदी

भवन विशाल सुसज्जित था वह, जिसमें कृष्णा थी रहती ।
लगे हुये थे वृक्ष अनेकों, वायु मधुर मनहर बहती ।।
जिसके पटतर और न जग में बना आज तक है कोई ।
था वह एक अनूप विश्व में जो लखता, ठगता सोई ।।

रचा उसे था[1] मया असुर ने, था वह शिल्पी चतुर महान ।
जिसे देखने के हित आते देव असुर किन्नर मतिमान ।।
था अनुपम प्रत्येक दृष्टि से, अद्भुत परम अनोखा था ।
दिव्य, रम्य, विश्रुत, मणिमय, जल-थल लख होता धोखा था ।

भाँति भाँति के वृक्ष अनेकों, सुन्दर और सुनहले थे ।
टिकते जन के चक्षु न उनपर विद्युत सरिस हलचले थे ।।
लहराते थे निशदिन वे, चमका करते रवि किरणों से ।
सुन्दर मधुर गान करते थे, मंथर मारुत चलने से ।।

१ मयासुर

सूर्य चन्द्रमा, अथवा अग्नि समान ज्योतिमय थे लगते—
लगता था है इनमें जीवन, प्राणवान सम वे सजते ।।
थे ये शोभा बढ़ा रहे सब, दृश्य मनोहर, सुन्दर था ।
मानो वहाँ वास करता चिर, स्वयं महान पुरन्दर था ।।

था वह भवन अलौकिक, उसकी चमक दमक थी परम विशाल ।
सूर्य चन्द्र की प्रभा अपेक्षा में फीकी लगती तत् काल ।।
रहे अनेकों किंकर उसमें, रक्षा करने हित उसकी ।
उसे सजाते यथा समय पर मौसम–रुचि लखकर नृप की ।।

दिव्य सरोवर वहाँ एक था, जिसकी रचना थी अद्भुत ।
रहा कुंज के बीच बना वह चमक रहा था ज्यों विद्युत ।।
बनी हुई थीं दिव्य सीढ़ियाँ, सुन्दर अनुपम सुदृढ़ विशाल ।
मणि माणिक्य जड़े थे उनमें, करते क्रीडा नवल मराल ।।

उसके चारों ओर लगे थे वृक्ष गगन चुम्बी भारी ।
हरे भरे पत्ते थे जिनके करते छाया सुखकारी ।।
जहाँ बैठ पालित पशु पक्षी थे आनन्द किया करते ।
देख इन्हें, सुन उनका कलरव, मोद सभी मन में भरते ।।

सुरस सुफल सौरभ से युत, उद्यान वहाँ थे चारों ओर ।
था उद्यान एक ऐसा भी, जहाँ नृत्य करते थे मोर ।।
कोयल चहक चहक कर गाती भौंरे करते थे गुंजार ।
जहाँ पहुँचकर दुखी पुरुष भी, रहे भूलते निज संसार ।।

थीं उसमें बावड़ी अनेकों विमल नीर की जो भंडार।
जहाँ अनेकों सुन्दर पक्षी करते रहते नृत्य बिहार॥
चकवा चकवी चहक चहक कर उपजाते थे नयी बहार।
मधुमय पुष्पों का रस पाकर भौंरे करते थे गुंजार॥

जल औ' थल की कमल पंक्तियाँ अपनी गंध और छबि से।
कर लेती थीं मुग्ध सदा सबको शुचि हृदय मनोहर से॥
वहाँ सदा द्रौपदी बैठकर अपना मन बहलाती थी।
वंदन-पूजन ध्यान आदि से विगत् दुःख बिसराती थी॥

हुआ राज्य अभिषेक धर्म का देख सुअवसर उचित मुहूर्त।
इस प्रकार से हुई द्रौपदी की इच्छा की सब विधि पूर्ति॥
वचन दिया था कुन्ती माँ ने होगी कृष्णा सम्राज्ञी।
अतः कृष्ण ने सभासदों औ' विज्ञजनों से मति माँगी॥

कहा, "धर्मपत्नी कृष्णा है अर्जुन की संदेह नहीं।
फिर भी है यह श्रेष्ठ सभी बहुओं में शंका लेश नहीं॥
रही मालिकिन पाण्डव कुल की कुन्ती ने सौंपा था भार।
इसकी देख रेख में रहता आया यह पाण्डव परिवार॥

थे नृप प्रथम युधिष्ठिर जब भी, इसने राज-काज देखा।
सेना सेवक हाथी घोड़े, सबका रखती थी लेखा॥
आय तथा व्यय और बचत का लेखा भी थी वह रखती।
सम्बन्धी अभ्यागत गण को भी सम्मान दिया करती॥

व्याह सुअवसर पर भी बातें निश्चित करी सभी ने थी।
राज्य-काज के संचालन की प्रमुख विधायक यह ही थी ॥
अतः कार्य जितने भी हों अब सबमें इसका हाथ रहे।
कभी न अपमानित हो पाये, वचन दिया वह याद रहे ॥

रथ सदृश यह राज्य-काज है, शासन है इसका स्वामी।
पाण्डव सभी अश्व सम हैं ये, मन सम रास धर्म ज्ञानी ॥
सारथि बुद्धि रूप कृष्णा है राज्य-काज संचालन में।
रखती हैं अधिकार सभी पर कर्तव्यों के पालन में ॥

अश्व महा चंचल होते हैं, मन—निर्बलता देख कभी—
इधर उधर भगने लगते हैं, सुगम मार्ग को छोड़ सभी ॥
मन भी देख निबलता अपनी, क्षण में कहाँ कहाँ जाता।
रास अगर ढीलो हो जाती, चैन न स्वामी फिर पाता ॥

अगर बुद्धि करले मन को वश, हो जाये मन दृढ़ बलवान।
रास सरिस तब यह मन अश्वों को कर सकता स्ववश निदान ॥
इधर उधर फिर भाग न सकते अश्वरास के स्ववश हुये।
लक्ष प्राप्त तब कर लेता है स्वामी यों मन में गुनिये ॥

यही ध्येय था कुन्ती देवी का जिसने था किया विचार।
रहें पुत्र सब उनके मिलकर सुखी रहे पाण्डव परिवार ॥
कभी फूट उनमें नहिं होवे, हो तन, मन, वच एक विचार।
करें कार्य एकमत होकर उपजें मन में नहीं विकार ॥

सभी जानते कृष्णा सुख दुख में पाण्डव के साथ रही।
इसने बात बना ली सारी हुआ जहाँ मत भेद कहीं ॥
जीवन गाथा पाण्डु सुतों की खूब जानता यह संसार।
कार्य किया क्या-क्या कृष्णा ने राज्य प्राप्तहित, सह दुख भार ॥

मेरा है विश्वास सुदृढ़ यदि कृष्णा नही संग होती।
पाण्डु सुनों को राज्य प्राप्त हित तनिक न इच्छा, रुचि, होती ॥
सब लोगों ने जान लिये हैं धर्मराज के धर्म विचार।
अन्य पांडु सुत के भी मन में उसी रोग[1] का है संचार ॥

अत: राज्य निर्माण तथा संचालन में ज्यों हाथ रहे—
सती द्रौपदी का भी सम ही, बागडोर निज हाथ गहे ॥
उचित रूप से कार्य तभी होगा मेरा यह कहना है।
दीजे अभिमत आप लोग भी, जैसी जिसकी धरना[2] है" ॥

चुप हो गये बात कह इतनी, लगे ताकने सब इनको।
बात कही जो स्वाभाविक थी लगी सुरुचिकर बुधजन को ॥
जो न दूरदर्शी ज्ञानी थे उन्हें खटकती थी यह बात।
नहीं धर्म पत्नी थी कृष्णा धर्मराज की, थे दो गात ॥

शंका करी निवारण अपनी कुछ न दोष पाये इसमें।
अंतर मिलता हमें बहुत अध्यात्मवाद औ' लौकिक में ॥
थे वे ज्ञानी आत्म ज्ञान के योगी पहुँचे हुये महान।
कार्य किये विशिष्ठ रूप से उनने सब, समझे मतिमान ॥

१. अर्जुन आदि को भी एक बार वैराग्य हो गया था।
२. धरणा।

कृष्ण चन्द्र की आज्ञा से तब धौम्य पुरोहित ने जाकर ।
स्वयं बना इक सुन्दर वेदी औ' गोबर से लिपवाकर ।।
रेखा खींची एक कुशा से उस वेदी के कर दो भाग ।
करी लोक व्यवाहारिक बातें जैसा मन में था अनुराग ।।

एक ओर थे नृपति युधिष्ठिर और दूसरी, द्रुपद सुता ।
था मंडप अति दिव्य मनोहर स्वच्छ रम्य औ' लिपा पुता ।।
स्वर्ण जटित चौकी होने से चमक रही थी अग्नि समान ।
बाजे बजते थे पृथ्वी पर बरसाते थे पुष्प विमान ।।

किया राज्य अभिषेक कृष्ण ने सबसे प्रथम शंख लेकर ।
तब धृतराष्ट्र और कुल पाणी आये शुभाशीष देकर ।
हुआ उचित सम्मान और स्वागत, सब थे प्रमुदित मनमें ।
इस प्रकार से कृष्णा थी सम्राज्ञी कहलाई जग में ।।

किया अनेकों वर्ष राज्य यों, औ' पाण्डव संग राह गही—
स्वर्ग लोक के हित देवी ने, मिले जहाँ पति पार्थ वही ।।
जैसा कार्य किया उसने कोई भी नारि न कर सकती ।
अतः मानते हैं उसको सब जग की श्रेष्ठ नारि महती ।।

## स्वर्गारोहन

घटना युधिष्ठिर ने सुनी जब कृष्ण के संग घात की।
यादव मरे लड़कर सभी, थी बात पश्चाताप की॥
सोचा अनेकों भांति से तब अन्त में निर्णय किया।
अब चाहता है काल अपना भी यहाँ ताण्डव किया॥

निश्चय किया सब संग में जायें सदेह अमरपुरी।
यह सोच कर मन में जगत की लालसा होती बुरी॥
थी राह दुर्गम अति कठिन पर ध्येय था उत्कर्ष का।
साहस न छोड़ो अन्त तक, था भाव चिर आदर्श का॥

वलकल वसन धारण किये सब भाइयों के साथ में।
दे भार सारे राज्य का शिशुवत् परीक्षित हाथ में॥
त्यागी तपस्वी वेश में थी द्रौपदी पीछे चली।
यों देख कर सारी प्रजा में मच गई थी खलबली॥

प्रिय द्रौपदी को संग ले जाते लखे पाण्डव सभी।
रोने लगी सारी प्रजा, कुल सुजन बालक वृद्ध भी॥
परितुष्ठ कर सबको सभी विधि, फिर गले से भेंट कर।
थी द्रौपदी बन को गई चिर स्नेह सीमा मेंट कर॥

ऊँचे शिखर हिम खण्ड नदियां पार करते जा रहे।
जो देखते इनको सभी थे, हृदय में पछता रहे॥
है धन्य रानी द्रौपदी जो साथ यह छोड़ा नहीं।
प्रण को सहज पूरा किया निज नियम को तोड़ा नहीं॥

पहुँचे हिमालय के शिखर पर अग्र फिर बढ़ने लगे।
शीतल बरफ की चोटियों पर अंग थे गलने लगे॥
कुछ दूर ही चल कर गिरी वह द्रौपदी करुणामयी।
लख भीम ने पूछा कि "भइया बात ऐसी क्यों भयी॥

थी द्रौपदी सच्ची सती सब जानते इस बात को।
रह साथ में सब की करी सेवा विदित है तात को"॥
उत्तर मिला नृप धर्म से "वह गिर गई जिस बात से।
है पार्थ का मन अति व्यथित उस भांति के आघात से॥

था द्रौपदी को प्रेम अति सब जन सुहृद परिवार से।
कोई कभी करती न थी वह चूक निज व्यवहार से॥
वह सुधि सदा रखती रही सबके बराबर मान की।
समता न मिलती है हमें थी मूर्ति ही वह ज्ञान की॥

पर प्रण किया था यह कि वह समता रखेगी हर समय ।
हम रक्षकों औ' पार्थ के संग, वह रहेंगी चिर अभय ।।
करने न पायी पूर्ण प्रण अपना यही दुख आज है ।
इस हेतु वह हम से विलग है, दुःख का क्या काज है ।।

थी वह अधिक कुछ चाहती प्रिय पार्थ को पति जान कर ।
थी हृदय में नारी सुलभ यह भावना-शुभ मान कर ।।
सब जानते हैं इस जगत की नारियाँ सारी सदा ।
हैं मानती पति को अधिक हर क्षेत्र में, औ' सर्वदा ।।

विश्वास है हम को मिलेगी द्रौपदी प्रिय पार्थ को ।।
काया सहित निश्चित अमरपुर में तजो दुख—स्वार्थ को ।।
यह स्वर्ग में निश्चित मिलेगी कुछ न इसमें भूल है ।
है कर्म फल मिलता सभी को धर्म का यह मूल है" ।।

कुछ दूर जा कर गिरे पड़े सहदेव भी उस राह पर ।
काया सहित जाने न पाये स्वर्ग लेटे आह भर ।।
बोले युधिष्ठिर "मानते थे ज्ञान का भण्डार हूँ ।
था गर्व इनको हो गया बस बात ज्यादा क्या कहूँ" ।।

लख द्रौपदी, सहदेव को मृत नकुल व्याकुल हो गये ।
वे बन्धु प्रेमी वीर योद्धा मार्ग में ही सो गए ।।
देखी दशा उनकी कहा फिर भीम ने वर बन्धु से ।
"क्यों गिर पड़े ये भी मुझे जो दीखते शुचि सिन्धु से" ।।

"समता नहीं मिलती जगत में नकुल से प्रिय रूप की।
विकृत हुई थी भावना इस हेतु इस नर भूप की॥
है गिर गये इस दर्प से वे मार्ग में यह जानिये।
यह दर्प मानव के लिए है अहित कर सच जानिये"॥

अब देख तीनों को गिरा प्रिय पार्थ दुख कब सह सके।
अनुताप के मारे धरा पर सो गये ज्यों हों थके॥
यों देख मरणासन्न अर्जुन को कहा फिर भीम ने।
"छीना भला क्यों पार्थ श्री, बोलो यहाँ निःसीम ने"॥

उत्तर मिला "प्रिय पार्थ भी थे शक्ति के अभिमान में—
थे चाहते जब शत्रु दल को भेजना शमशान में॥
अपमान वीरों का हुआ था इसलिए पातक लगा।
अभिमान बोलो कब हुआ है बन्धु अपने हित सगा"॥

कुछ दूर आगे और जाकर भीम भी थे गिर पड़े।
चलते रहे केवल युधिष्ठिर सत्य के बल से अड़े॥
अति खेद से फिर भीम ने पूछा "गिरा मैं क्यों कहो"।
बोले युधिष्ठिर "नियति का यह वार द्रढ़ बन कर सहो॥

अपमान तुम से भी हुआ था गर्व वश नर अन्य का।
भोजन अधिक करते रहे तुम भाव तज सौजन्य का॥
तुम हाँकते थे डींग अपनी सो मिला यह शाप है।
तुम भी धरा पर सो गए बस यह तुम्हारा पाप है"॥

यों अन्त में केवल युधिष्ठिर थे गये उस लोक में।
थे देवता बसते यहाँ शुचि ज्ञान के आलोक में॥
देखा वहाँ बैठे सभी उनके सगे सब साथ हैं।
बैठी वहाँ पर द्रौपदी औ' पास उसके नाथ हैं॥

जीवन कहानी द्रौपदी की अन्त होती है यहाँ।
अर्धांगिनी था पार्थ की वह पार्थ पति पाया वहाँ॥
जैसी हमारी भावना है समझ पाते हम वही।
सब भावना की बात होती, भावना ही है सही॥

# उपसंहार

अत्यन्त पुरातन देश हमारा भारतवर्ष कहा जाता ।
धर्म कर्म का हुआ यहीं निर्माण प्रथम माना जाता ।।
कैसा हो आचरण मनुज का कैसे कर्म करें जग में ।
मिले शान्ति जीवन में जिससे कर्म मार्ग पर डगडग में ।।

हुये अनेकों कर्मवीर, तपसी, ज्ञानी औ' विज्ञानी ।
कर्तव्य परायण, न्याय धुरन्धर, शीलवान, एवं दानी ।।
सत्य जिन्होंने कभी न त्यागा झूठ न बोला जीवन में ।
रहे सदा रत धर्म-कार्य में या जीवन काटा वन में ।।

त्याग जगत की माया सारी लोभ क्रोध मद काम सभी ।
नहीं बसाया उर में सुख दुख, त्यागा था धन धाम सभी ।।
रही भावना उसके मन में सारे प्राणी सुख पावें ।
शान्ति मिले सबको जीवन में अंत ब्रह्ममय हो जावें ।।

किये अनेकों यज्ञ दान तप ऊँचे ऊँचे भाव रखे।
दुख सुख सहे सभी जीवन में प्राप्त भाग्य फल सभी चखे ॥
कष्टों में कब कुछ हुई निराशा, ग्लानि, प्रसन्न रहे ऐसे।
अंधे को लोचन मिल जावे रंक बने राजा जैसे ॥

कर्मज्ञ तथा धर्मज्ञ और मर्मज्ञ रहे भारत वासी।
राजा रंक, वृद्ध बालक सब, तरुण ग्रही औ' सन्यासी ॥
जो कुछ कर्म कभी करते थे यज्ञ दान तप कर जग में।
करते सदा धर्मरत होकर धर्म भाव था रग रग में ॥

अध्यात्मवाद औ' लौकिक बातें समझ, कार्य यों किये सभी।
देश, समाज वंश की मर्यादा वे भूले नहीं कभी ॥
किया यथा विधि पालन सबका बाजी लगा वस्तु सब की।
साहस कभी न छोड़ा इनने रहा समक्ष काल जब की ॥

देख आज कर्तव्य भावना ऐसे वीर महानों की।
श्रद्धा है उन पर इससे अब जाने और अजानों की ॥
नहीं देश ऐसा कोई है जिसमें ऐसे वीर हुए।
जैसे हुये आर्य इस भू पर अनुपम कर्म अनेक किए ॥

हुई यहाँ ललनायें भी, थे जिनके अद्‌भुत कर्म विचार।
इनकी महिमा लोग आज तक गाते हैं निज रुचि अनुहार ॥
अखिल विश्व में देश हमारा भारतवर्ष रहा आदर्श।
नारि धर्म का इसी देश में हुआ सदा सब दिन उत्कर्ष ॥

कहाँ जन्म इनका होता है कहाँ पुनः ये जाती हैं।
सोचो तो किस भाँति सदा ये दुहरा नेह निभाती हैं ॥
इनके ही द्वारा परिवार सदा होता है सुख कारी।
यों ये गृहलक्ष्मी कहलाती हैं इनकी सत्ता भारी ॥

मातु पिता भ्राता औ' अपने पुत्रों पर रखतीं अधिकार।
दो कुल को ये एक सूत्र में देतीं बाँध अनेक प्रकार ॥
ऐसा हो जाता सम्बन्ध कि टूट न सकता जीवन में।
त्यागी नारि समाज सभी हैं, श्रद्धा है इनके तन में ॥

किसी विषय पर हो जाता मतभेद किसी नारी का जब—
अपने पति या परिवारों से—याद उसे आते वे सब—
जिन्हें समझती वह अपना या जिनपर उसका है अधिकार।
लख सम्बन्ध घनिष्ट, पास का—है स्वाभाविक नारि-विचार ॥

होकर विवश पाण्डवों ने जब किया कृष्ण से था प्रस्ताव—
उन्हें दिलायें पाँच गाँव ही—कौरव पर निज डाल प्रभाव—
इससे उनका पाँच भाइयों का हो जायेगा निर्वाह।
युद्ध न कर सकते कौरव से, भय वश होगा वंश तबाह ॥

सुनकर ऐसी बात दुःखी हो कृष्णा ने था कहा वहाँ।
'उसे न है स्वीकार संधि की बातें ज्यों हो रही तहाँ ॥
युद्ध न कर सकते पाण्डव यदि सोच कि उनके हैं भाई।
नहीं करे ये, बात न कोई है, इनकी यह मनुसाई ॥

बात कौरवों से करना इस भाँति संधि की है बेकार ।
किन्तु पाण्डवों को अब उनसे लड़ने की न रही दरकार ॥
हुये नहीं अपमानित पाण्डव, मेरा हुआ महा अपमान ।
अतः नहीं अब रुक सकता है युद्ध मानिये यह मतिमान ॥

अभिमन्यु औ' पाँच पुत्र मम वृद्ध तात औ' भ्रात सभी ।
युद्ध करेंगे इन कौरव से पीछे हट सकते न कभी ॥
उनको सहन न हो सकता ज्यों किया गया मेरा अपमान ।
मैं जिनकी हूँ जो हैं मेरे उन्हें न भय जाये यदि प्राण' ॥

छोड़ एक अभिमन्यु वहाँ पर अन्य किसी पाण्डव-सुत का ।
उसने रंच न ध्यान किया था, अर्थ हुआ क्या इस वृत का ॥
कारण क्या था इसका सोचें आप स्वयं क्षण भर मतिमान ।
थे उसके पति-भ्रात—पुत्र वे अतः न उनका आया ध्यान ॥

अधिकार सदा वह अपने और सुभद्रा के सुत पर रखती ।
जिनके केवल पार्थ पिता थे, उनको थी अपना गुनती ॥
यही हेतु था जहाँ कहीं भी प्राणों की बाजी लगती ।
वह अभिमन्यु और अपने सुत पाँच रही आगे करती ॥

याद कीजिये रामचन्द्र को माता ने वनवास दिया ।
जिसे सोचकर माताओं का कंप जाता है आज हिया ॥
दिया मातु कैकेई ने था रामचन्द्र को वन का वास ।
अतः राम ने किया उसे स्वीकार न पाया क्षण दुख भास ॥

पूछा जब कौशल्या माँ ने भेज रह वन कौन उन्हें ।
कही राम ने हर्ष सहित तब कैकेई की बात तिन्हें ॥
जो प्रति उत्तर था माता का धर्म कर्म युत वाणी थी ।
इस विशाल भारत की ललनायें सचमुच कल्याणी थीं ॥

"माता का अधिकार तात से सदा अधिक ही माना है ।
और विमाता को माता से बड़ अधिकारिन जाना है ॥
तुझ पर है अधिकार केकई का मुझसे निश्चित भारी ।
कर्म धर्म व्यवहार नीति पथ विज्ञ तात में बलिहारी ॥

दिया आज यदि होता केवल राजा ने वनवास तुम्हें ।
मुझको था अधिकार बड़ा मैं रख लेती बिन कहे उन्हें ॥
बात उलटदूँ सौतेली माँ की अधिकार न मुझको है ।
करो तुरत वनवास हेतु प्रस्थान ध्यान सब तुझको है" ॥

था अभिमन्यु सुभद्रा का सुन अपना जिसे समझती थी ।
अन्य पाण्डवों के सुत पर कृष्णा अधिकार न गुनती थी ॥
इस पर करें विचार सभी यह बात धर्म के है अनुसार ।
मर्याद कर्तव्य लिये है स्वाभाविक जग का व्यवहार ॥

× × × ×

है लोक-मर्यादा तथा इस देश का व्यवहार है ।
क्रमशः सहोदर भाइयों का ब्याह ही स्वीकार है ॥
छोटे बड़े का ध्यान रख यह कार्य करते हैं सभी ।
होता नियम है भंग यदि सम्भव न होता यह कभी ॥

पाण्डव विवाहित थे नहीं जब मच्छ वेधी पार्थ ने।
था कर दिया उनको विवश राजा द्रुपद के स्वार्थ ने ॥
होकर खड़े जब वे लगे कहने न जग में वीर है।
जो वेध दें इस मच्छ को औ' शर कला में धीर है ।

अपमान था यह पाण्डवों का थे उपस्थित जो वहाँ ॥
अज्ञात थे निश्चित सभी पर शौर्य्य उनमें था महा।
उस ठौर थे वे ब्राह्मणों के वेश में यों चुप रहे।
पर पार्थ से ऐसे वचन जाते भला कैसे सहे ?

यो वेधना उस मच्छ को सबके लिये दुर्द्धर्ष था।
केवल स्वयंवर था नहीं वह शर कला आदर्श था ॥
सीता स्वंवर में समस्या यों रही लखती नहीं।
जो आ गई थी पाण्डवों के सामने दिखती वहीं ॥

सामर्थ्य थी श्रीराम की तोड़ा धनुष पाल मात्र में।
औ' कुछ न औचट था पड़ा छोटे बड़े के पात्र में ॥
पर छोड़ अर्जुन को वहाँ कोई न पाण्डव नूर था।
जो वेध सकता मच्छ को औ' शर कला का शूर था ॥

कारण यही था पार्थ ने आज्ञा सभी से माँग कर।
इस लोक मर्य्यादा तथा व्यवहार को भी लाँघ कर ॥
वेधा तुरत उस मच्छ को पट पड़ गया औचट वहाँ।
बातें चलीं जब ब्याह की औ' टूटता था क्रम यहाँ ॥

थे धर्म उनमें अग्र, कुन्ती ने कहा, सोचो सभी।
क्या ब्याह इनका हो सकेगा द्रौपदी के संग भी?
निश्चय हुईं बातें सभी, नृप-शर्त के अनुसार से।
था हो चुका वह ब्याह तो जय माल के व्यवहार से॥

फिर भी सभा के बीच भ्राता ने मिलाया हाथ था।
यों ब्याह दोनों का वहाँ पर हो गया इक साथ था॥
कारण यही था पाण्डु सुत जब राज्य आधा पा गये।
तज पार्थ को सब बन्धुओं ने ब्याह थे अपने किये॥

था क्यों न अर्जुन का हुआ फिर ब्याह सबके साथ में।
बातें सभी हैं सोचने की सोचिये थिर माथ में॥
थी धर्म पत्नी द्रौपदी बस पार्थ की यह सत्य है।
थी पाँच की अर्धांगनी इसमें न कुछ भी तथ्य है॥

× × × ×

श्री कृष्ण केवल पार्थ को ही निज सखा थे मानते।
औ' शेष पाण्डव को सदा बस थे सगा ही जानते॥
पर द्रौपदी भी कृष्ण को अपना सखा थी मानती।
बस पार्थ के नाते स्वय को वह सखी थी जानती॥

था कुछ न परिचय बालपन का कृष्ण-कृष्णा का कभी।
थी वह न कोई गोपिका हैं जानते इसको सभी॥
यह देख नाता कृष्ण-कृष्णा का समझना चाहिये।
थी धर्म पत्नी सखा की संशय न करना चाहिये॥

× × × ×

मिलते अनेकों और भी दृष्टान्त हैं इतिहास से।
जो खोजते हैं सत्यता को सत्य पथ विश्वास से॥
हैं सत्य बातें ग्रन्थ में पर हम समझते हैं नहीं।
बह भावना में, अर्थ को हैं मान लेते कुछ कहीं॥

हैं गूढ बातें ये सभी इनका समझना गूढ़ है।
इनको समझ सकते वही जो धर्म पथ आरूढ़ हैं॥
जो मूल बातें हैं समझते भूल वे करते नहीं।
पर छोड़ जड़ जो पात गहते डूब जाते वे सही॥

हैं सब अलंकृत शास्त्र श्रुति शुभ संस्कारों से भरे।
नित मनन करिये ध्यान दे हैं कल्पनाओं से परे॥
इस लोक मर्यादा तथा व्यवहार से परिपूर्ण हैं।
यदि मानते हम सत्य हैं तो सत्य से भर पूर्ण हैं॥

× × × ×

रही शर्त पाण्डव की कोई भी कृष्णा से मिले नहीं।
अगर किसा भाई की सेवा में होवे वह रमी कहीं॥
शर्त भंग करने से होगा बारह वर्षों का वनवास।
ब्रह्मचर्य से रहे सदा वह, करे न नगरों में आवास॥

सोचो पार्थ गये जब बन में क्या-क्या कार्य किये उनने।
राष्ट्रों से सम्बन्ध बढ़ाया, कर विवाह अपना जिनने॥
कहाँ शर्त थी पूर्ण हुई वह थी बातें सब गोल मटोल।
थीं वह राजनीति की बातें जिन्हें न सकते थे वे खोल॥

थी अत्यन्त विदूषी कृष्णा, राजनीति का था शुचि ज्ञान।
क्या भविष्य में होने वाला था उसको निश्चित अनुमान॥
अतः मंत्रणा करी पार्थ से गुप्त राखीं बातें सारी।
धर्म राज तक जान न पाये, की जब बन की तैयारी॥

था उसको संदेह युधिष्ठिर कभी असत्य न कह सकते।
लिया पूछ यदि कौरव ने तो सत्य भाव में बह सकते॥
अतः भेद रक्खा सीमित औ' किया बहाना था प्रण का।
था ऐसा कुछ निश्चय कृष्णा और पार्थ में उस क्षण का॥

यही हेतु था पार्थ न वन में गये न ब्रह्मचर्य धारा।
पहुँचे वे प्रत्येक राष्ट्र में, कार्य सकल अपना सारा॥
अतः चाहिये सदा समझना थी वह राज नीति की चाल।
जिसको कौरव समझ न पाये, मित्र बनाये जग-महिपाल॥

× × × ×

करी सत्य भामा ने भी कुछ शंका थी अपने रंग में।
किस प्रकार से कर सेवा वह पाँच पाण्डवों की संग में॥
करती है रक्षा पातिव्रत की जो न कभी सम्भव जाना।
सेवा करना आत्म जनों की खेल मात्र ही पहिचाना॥

क्या उत्तर था दिया द्रौपदी ने उस पर तो करो विचार।
चाम न होता प्यारा जग में कृत्य प्रेम का है आधार॥
राज्य काज का भार सम्हाला कर सेवा सबकी इकसार।
सेवा का है मूल्य बड़ा अति, इसे मानता है संसार॥

× × × ×

करी याचना माद्री ने थी कुन्ती से जब त्यागे प्राण ।
'नकुल तथा सहदेव न पायें कष्ट सदा करना कल्याण ॥
रखना सदा समान प्रेम गुन पाँच पुत्र की हो माता ।
कभी न अन्तर हो आपस में मान न हो तुम तन दाता' ॥

कुन्ती ने भी करी प्रतीज्ञा कभी न रंच भेद होगा ।
सेवा वह समभाव करेगी उन्हें न मातृ खेद होगा ॥
सबको सदा समान मिले सुख, रहें संग में फूट न हो ।
व्रत था उसके जीवन का, तब श्रद्धा क्यों न अटूट कहो ॥

देख कुशलता द्रुपद-सुता की उसने मन में किया विचार ।
है सुयोग्य कृष्णा सम सेवी क्यों न उसे सौंपे गृह भार ॥
यही हेतु था जितना भी उसके ऊपर गृह भार रहा ।
देकर कृष्णा के हाथों में था उससे यह वचन कहा ॥

"प्राण तुल्य हैं पाण्डव मेरे, जीवन मम निर्भर इन पर ।
प्राण कभी मैं रख न सकूँगी, हुये विलग, भटके दर दर ॥
रही सदा मैं इन्हें पालती जिस प्रकार से एक समान ।
है मेरो याचना द्रौपदी ! देना इनको सम सम्मान ॥

कोई कभी न सोचे मन में कृष्णा नारि पराई है ।
बीज फूट का बोने के हित यह पाण्डव घर आई है ॥
हुई फूट यदि पाण्डव कुल में होगा बहुत बुरा परिणाम ।
पायेंगे हम दुःख जीवन में सध न सकेगा कोई काम" ॥

करी प्रतीज्ञा कृष्णा ने थी शंकर को साक्षी देकर।
सम सेवा उद्देश्य सदा होगा उसका, यह व्रत लेकर ॥
कभी न होगी फूट पाण्डवों में उसके संरक्षण में।
एक सूत्र में बांध उन्हें वह एक करेगी जीवन में ॥

करी सदा सेवा सम उसने तन, मन वच से सभी प्रकार।
उसके ही शुचि कर्तव्यों से सुखी रहा पाण्डव परिवार ॥
है प्राकृतिक स्वभाव नारियों का न इसे भूले कोई।
पति को हैं ये अधिक चाहती, कृष्णा की गति थी सोई ॥

कर न सकी वह पूर्ण प्रतीज्ञा—अर्जुन को पति के नाते।
थी वह अधिक चाहती सबसे—रहती गुण उनका गाते ॥
कारण यही मानते हैं जिससे संदेह वह जा न सकी।
स्वर्ग लोक को—तथा राह में प्राण त्याग वह रही थकी ॥

करें न संशय इसमें कोई, सत्य सरल ये बातें हैं।
ज्ञानी पण्डित धर्म शील सब इसे सत्य बतलाते हैं ॥
जिनको मर्यादा संस्कृति औ' निज ग्रन्थों का है शुचि ज्ञान।
जिनको अपनी मात-भूमि की महिलाओं पर है अभिमान ॥

करें प्रशंसा जितनी भी भारत की महिलाओं की हम।
समता कहीं न मिलती उनकी रह जाती उपमायें कम ॥
सब इनके कर्तव्य निराले हैं इनके आदर्श महान्।
कोविद ऐसा कौन जगत में जो कर दे प्रत्यक्ष बखान ॥

वे राम जिनका स्नेह था आदर्श से निश्चित अटल।
जिनका पुनीत चरित्र सुन खुलते हमारे द्रग पटल॥
उनको न सकते छोड़ हम अज्ञान औ' अभिमान में।
पर सोचते हैं क्या किया था धर्म निष्ठित राम ने ?

सीता पुनीता थीं उसे देकर कहो वन दान यों।
बन निठुर तोड़ी स्नेह डोरी फिर भला सम्मान क्यों ?
पर तनिक यदि सोचें 'रजोगुण में छुपा वैराग्य था।
था नियति का वह खेल' जिसका कार्यकारी भाग्य था॥

थे राम पति पीछे प्रथम वे नृप, अयोध्या धाम के।
सीता महारानी जहाँ की थी दशा यह मान के॥
नर श्रेष्ठ रघुकुल नृपति ने आदर किया गणतंत्र का।
इसमें छुपा है आज भी सम्मान मत स्वातत्र का॥

पर बात हमने आज छेड़ी है पती के धर्म की।
इससे तनिक देखें झलक विरही नृपति के कर्म की॥
"सीता पुनीता है, पुनीता थी सदा मम जानकी"।
रटते रहे यह राम रटना, शपथ ले सम्मान की॥

बोले महाजन जब कि "प्रभु करना हमें शुभ यज्ञ है।
होगा महारानी रहित कैसे प्रभो सर्वज्ञ है"॥
मूरत बना वैदेहि की यदि राम ने की अर्चना।
तो स्नेह पर संदेह क्यों कैसी विचित्र विडम्बना॥

रघुवंश मणि का यह नियम आदर्श था इस देश का।
होता रहा आदर सदा यों आदि शक्ति सुवेष का॥
इस हेतु ही वे नर सुखी हैं जिन्हें सद् नारी मिली।
उत्थान हित इस विश्व में सद् धर्म गति न्यारी मिली॥

यह मानता संसार है दो चक्र इस ग्राहस्थ्य के।
स्थान पति का है बड़ा ये वाक्य हैं सिद्धान्त के॥
रक्षा सभी सद् नारियों की सब प्रकार करें सदा॥
यह थी सनातन टेक जिसको पालते सज्जन मुदा॥

पति में सती का प्रेम है जग में बढ़ा सच मानिये।
कल्याण है उसका बड़ा पति प्रेम से यह जानिये॥
तुलना नहीं उसकी कहीं पाठक विचारे तो सही।
यह तथ्य है जिसको सहज स्वीकार करती यह मही॥

सम्बन्ध है क्या नारियों से पूज्यनीय वेष में।
माता बहिन पुत्री परम आदर्श हैं इस देश में॥
निन्दा अगर कोई करे अब भी तो हमको खेद है।
जिस थाल में भोजन किया करता उसी में छेद है॥

माता पिता अरु बन्धु भगनी, प्रिय कहाते जो कभी।
ये त्याग देती हैं उन्हें अपने बनाये थे कभी॥
इस भान्ति जीवन भर तपस्या में बिताती नेम से।
करती कृतार्थ कुटुम्बियों को नियम, निष्ठा, प्रेम से॥

है अर्थ पत्नी का चतुर गृह कार्य में व्यवहार में।
पति प्राण है जिसके लिये कर्तव्य और विचार में॥
उसकी सरलता और सुचिता से बँधा भर्तार हो।
इस भान्ति जो दम्पत्ति हों उनका सहज विस्तार हो॥

हर क्षेत्र के व्यवहार औ' आचार हों सब संग में।
रहती सफेदी ज्यों छिपी उभरे ढके सब रंग में॥
औ' है नहीं देती दिखाई क्योंकि स्थिति गूढ़ है।
करना विलग जो चाहता वह अज्ञ है मतिमूढ़ है॥

सब ठौर औ' सब कार्य में सब भान्ति जो पति संग है।
वह भाग्यशालिन है कि जो डूबी सदा पति रंग है॥
छाया सरिस वह साथ रहती औ' बिलग होती नहीं।
जब तक प्रकाशित प्राण होते अलग हो सकती कहीं ?

यह धर्म नारी का सभी नर श्रेष्ठ थे सम्मानते।
सर्वोच्च उनका त्याग है ऐसा सदा वे मानते॥
था नारियों का धर्म पति कहता उसे ही मानना।
अनुकूल पति के आचरण ही लाभकारी, जानना॥

कर्तव्य नारी के गिने पर बात पूरी कब सुनी।
कहना अभी है बात नर की शान्त हो सुन लें गुणी॥
सचमुच हमारे लक्ष्य से हम दूर समझे जायेंगे।
सद् पुरुष के कर्तव्य का आभास यदि ना पायेंगे॥

आदेश माता का परिस्थिति वश लिया स्वीकार था।
पर थी व्यवस्था भी करी जिसका उन्हें अधिकार था॥
सब कार्य था उनका नियम से थी न इसमें वासना।
सद् ग्रन्थ की है मान्यता यह आज हमको मानना॥

गाथा यताती राज की सुन जग भले ही कुछ कहे।
पर सोचिये सुचिता सरलता आर्य जो रखते रहे॥
कहते निकाला देवयानी को नृपति ने कूप से।
सम्बन्ध उसका हो गया था इसी से उस भूप से॥

उस शुक्र पुत्री देवयानी औ' यताती वंश में।
समता रहित था व्याह सब को दीखता था अंश में॥
सब सीख लें उत्तम नियम की जगत में आलोक हो।
मंगल मिलन उनका हुआ जिससे न सद्पथ लोप हो॥

हों सुदृढ़ सामाजिक नियम केवल यही मत मान कर।
संकल्प शुक्राचार्य ने खुद ही किया था जानकर॥
था वर्ण धर्म विरुद्ध मिलना इस तरह दो अंश का।
थी ब्रह्म कन्या एक दूजा पुत्र क्षत्रिय वंश का॥

क्या प्रार्थना थी 'अम्ब' की, जो भीष्म से उसने करी।
"यदि शाल्व ने मुझको न व्याहा तो, महामन ! मैं मरी॥
मैं वर चुकी हूँ शाल्व को यदि व्याह होगा और से।
होगा न नीति विचार का यह कार्य सोचो ग़ौर से॥

मेरे पिता भी आदि से थे बात सब कुछ जानते।
इस हेतु ही वे शाल्व को मेरा पती थे मानते॥
रचना स्वयंवर की हुई थी सिर्फ कुल व्यवहार से।
सम्बन्ध इसका कुछ नहीं है विरोधी-मनुहार से॥

यों आप सब कुछ जानते हैं इस समय निज कर्म को।
इस हेतु रक्षा कीजिए सम्मान दे मम धर्म को॥
सम्मान नारी धर्म का नर श्रेष्ठ के अब हाथ है।
सुख तभी तक रहता कि जब तक धर्म रहता साथ है॥

दीजे अभय वरदान होवे व्याह मेरा शान से।
स्वीकार कीजे प्रार्थना को इस तरह की, मान से" ॥
पर्याप्त था यह भीष्म ने ली प्रार्थना स्वीकार कर।
व्याहा उसे था शाल्व से विख्यात है वे वीरवर॥

पुरु वंश का आदर्श था यह सोचिए पाठक जरा।
छोड़ा नहीं सद्मार्ग को, व्यवहार उनका था खरा॥
इस भान्ति की गाथा अनेकों हैं, नहीं हम खोजते।
व्यवहार सद् निज पूर्वजों का क्यों नहीं हम सोचते॥

भगवान ने आकर स्वयं उपदेश है हमको दिया।
पर खेद है हमने न उसका लाभ किंचित भी लिया॥
है प्राणियों में श्रेष्ठ मानव जन्म हम सब धन्य हैं।
क्यों भूलते हैं यह कि करनी हेय और जघन्य है॥

होगी दशा क्या देश की इस भाँति सुनिये ध्यान से।
है खून ही करती निकल तलवार अपनी म्यान से॥
यह तथ्य है अब सोचिये गंभीरता से सोचिए।
किस हेतु मानव जन्म है यह ध्यान दे फिर सोचिए॥

× × ×

आर्य जाति के थे पाण्डव औ' रहा सनातन उनका धर्म।
सही अनेकों विपदायें पर तजे न उनने अपने कर्म॥
जैसी थी मर्यादा जग की कार्य किये उनने वैसे।
हैं आदर्श कार्य सब उनके सभी मानते हैं तैसे॥

बहु पति की थी प्रथा न कोई उस युग में कहता इतिहास।
थे पति पाँच द्रौपदी के करिये न कभी इसपर विश्वास॥
बस पत्नी थी एक पार्थ की वह सेवा का भार लिये—
सब पाण्डव की—निज जीवन में, उसने अनुपम कार्य किये॥

ऐसी सती न इस दुनियाँ में हुई न होगी सम्भव है।
उसने कार्य किये हैं ऐसे वर्णन आज असम्भव है॥
अत: सभी भारत महिलायें मान उसे आदर्श महान।
करें उच्च कर्तव्य, निराले, हो भारत का तब उत्थान॥

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १३३ | १ | २ | ना | न |
| १३७ | ३ | २ | तुरन्त | तुरत |
| १३८ | ४ | ३ | और | औ' |
| १४८ | २ | १ | मंया | मैया |
| १४६ | ४ | २ | कुशाल | कुशल |
| १५१ | २ | ४ | ज्योंहि | ज्यों |
| १५१ | ५ | ४ | अमोद | आमं |
| १५५ | १ | ४ | बढ़ती | बढ़ा |
| १५५ | ३ | ३ | लागत | लात |
| १८६ | ३ | २ | × | ही |
| १९३ | ५ | ४ | अथवा | × |
| १९६ | ५ | १ | बेहम | बहम |
| २०५ | ५ | ५ | भाजन | भोज |
| २०६ | ३ | २ | — | समय |
| २०६ | ५ | १ | था | × |
| २३० | २ | १ | नीज | नीच |
| २४५ | ३ | २ | व | बज़ |
| २४८ | १ | ३ | रह | रहा |
| २४९ | २ | ४ | मैं | × |
| २५० | ४ | १ | सरन्ध्रि | सैरं |
| २५७ | ३ | १ | औ' + कर | हँस |
| ५७ | ३ | २ | कोरव | कौरव |
| २५७ | ४ | ३ | × | मैं |
| २५७ | ५ | ४ | × | अब |
| २५९ | २ | १ | वस्त्र | अस्त्र |
| २६५ | १ | ४ | कुछ | × |
| २६९ | २ | २ | जरि | करि |
| २७१ | २ | ४ | कुल सभा | संस्क |
| २८३ | २ | ४ | थे | × |
| २९० | ४ | २ | अपयश | अयश |
| ३०१ | ५ | ४ | पाया | पाये |
| ३०५ | ४ | ३ | भी | × |
| ३०६ | ३ | २ | लिये | किये |
| ३२६ | १ | ३ | कुछ | × |
| ३२८ | ३ | २ | वृत | व्रत |
| ३२९ | १ | १ | रह | रहा |
| ३२९ | ४ | ४ | मर्याद | मर्यादा |
| ३३० | ५ | ३ | पट | पर |
| ३३३ | १ | ३ | राखी | रखी |
| ३३७ | ४ | १ | पूजनीय | पूजनीय |

# अशुद्धियों की सूची

| पेज नं० | पद नं० | पंक्ति नं० | अशुद्ध शब्द | शुद्ध शब्द | |
|---|---|---|---|---|---|
| १८ | १ | ४ | न | × | ज्ञानी समझते हैं इसे जिनको न शंका लेश है |
| १९ | ३ | ३ | मर्यादा | मर्याद | थे याद रखते बात प्रण की सोचते मर्याद भी |
| २० | १ | ३ | × | है | पति पाँच होना है असम्भव जाति जन व्यवहार से |
| २० | ३ | ३ | मर्म | धर्म | ···जूझती थी धर्म पर |
| २१ | १ | ३ | है | × | यह भी बहुत सम्भव कि वे कह दें भनित सब झूठ है |
| २५ | ५ | ३ | का | की | ··· शास्त्र सम्मत तर्क की। |
| २९ | १ | ४ | प्रबन्ध | प्रारब्ध | कुछ ऐसा प्रारब्ध कि उसके ····· |
| २९ | २ | ३ | विभूति | विभूती | ·······रंगे विभूती शंकर की |
| ३० | १ | २ | सोचा | मोचा | ······क्यों न कष्ट मेरा मोचा |
| ३० | ३ | ३ | औ' | और | ····· बड़े दयालु और दानी |
| ३१ | १ | १ | तुम | × | लगी सोचने वह बेचारी किस विधि शिव को आराधूँ |
| ३१ | १ | २ | मुख | × | ·· ···किस आगे वर स्वर साधूँ। |
| ३१ | २ | २ | उर | × | ·····क्यों संकोच करूँ अंतर। |
| ३१ | २ | १ | थे | × | ······पाँच बार बोले शंकर। |
| ३२ | ४ | ४ | तुम | × | कैसे बोले शंकर जी यह······ |
| ३४ | १ | १ | शिव | × | क्यों ऐसा करते हो शंकर कन्या ने शिव से पूछा |
| ३४ | १ | २ | कर | × | पति पत्नी की मर्यादा को क्यों करते इस विधि छूँछा |
| ३४ | १ | ३ | का था | × | करो याद जब महा सती ने सीता रूप बनाया था |
| ३४ | १ | ४ | भी तो | × | त्याग दिया था उन्हें आपने कौतुक तुम्हें न भाया था |
| ३५ | २ | २ | × | है | जिसका है सम्बन्ध स्नेह से······ |
| ३६ | ४ | ४ | × | हैं | पर अबला अपमान सहन हैं करते कभी न असुरारी |
| ३६ | ५ | १ | रम्भा | रूमा | सुग्रीव की स्त्री का नाम रूमा था। |
| ४३ | ५ | १ | और | भाव | मन में पतिव्रत भाव रहे मैं पति अनुगामी······ |
| ४३ | ५ | २ | न | नहिं | अप्रिय कभी नहिं उनसे बोलूँ··· |
| ४६ | २ | २ | अभर्य | अभय | तुमसे अभय मिला है मुझको···· |
| ५५ | ३ | ३ | चम | सब | सब हाथ पैर सुन्दर सुडौल थे चम चम चमके पाया |
| ५५ | ३ | ४ | गम | थी | थी कोकिल कण्ठी अधर मधुर थे गम गम गमके काया |
| ७४ | १ | ४ | लिखा | लिया | थी सोचती पति खो लिया है पुत्र दुःख भी साथ में |
| ७७ | ५ | १ | तुरन्त | तुरत | बोली तुरत कुन्ती महा प्रभु··· |
| ८२ | २ | २ | औ' किसी की | और किसकी | उसने करी थी कामना क्या और किसकी |
| ९६ | १ | ३ | थी | × | आजीवन वह सदा-चारिणी रही सदा सेवा में लीन |
| १०३ | २ | ४ | धुरी | धुरीण | है धर्म वीर धुरीण पाण्डव |
| १०८ | ५ | १ | ज्योती | ज्योति | इन अब तारों ने ही भाई धर्म ज्योति है चमकाई |
| ११४ | २ | ४ | एसों | ऐसों | अपमान के कारण······शीश ऐसों का कहीं |
| ११७ | २ | २ | ज्योंहि | ज्योंही | ······ज्योंही ली जमुहाई। |
| १२१ | १ | ४ | — | औ | लख जिसको सब जन देते थे आदर औ' सम्मान प्रचुर |
| १३६ | १ | ३ | कहो तो महाराज | कहिये तो महराज | क्यों होती अनीति कहिये तो······महराज |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १३३ | १ | ३ | ना | न | किन्तु न आते कभी······प्रचुर |
| १३७ | ३ | २ | तुरन्त | तुरत | यों धर्म की······तुरत इस बात में |
| १३८ | ४ | ३ | और | औ' | गायें छुड़ा औ' कर व्यवस्था ·· उत्साह से |
| १४८ | २ | १ | मया | मैया | मैया न अच्छी तात है······अच्छे हैं नहीं |
| १४६ | ४ | २ | कुशाल | कुशल | रण की कला में कुशल······तन में भरे |
| १५१ | २ | ४ | ज्योंहि | ज्योंही | था सूख जाता रक्त ज्योंही पाण्डु सुत मुख देखता |
| १५१ | ५ | ४ | अमोद | आमोद | केवल क्षणिक आमोद की ··· |
| १५५ | १ | ४ | बढ़ती | बढ़ाती | ····· क्यों है बढ़ाती बात को |
| १५५ | ३ | ३ | लागत | लात | फिर लात मारी······आवेश में |
| १८६ | ३ | २ | × | ही | तात मनुज अस्तित्व भावना पर ही आधारित होता |
| १६३ | ५ | ४ | अथवा | × | निज संगती को या डरेगा······सर्प से |
| १६६ | ५ | १ | बेहम | बहम | |
| २०५ | ५ | ५ | भाजन | भोजन | |
| २०६ | ३ | २ | — | समय | मुनिका निमंत्रण इस समय स्वीकारना |
| २०६ | ५ | १ | था | × | क्या करें औ' क्या नहीं उसको न कुछ लगता पता। |
| २३० | २ | १ | नीज | नीच | थी नीच की संगति········ |
| २४५ | ३ | २ | व | बज्र | ······औ' बज्र उनके अंग हैं। |
| २४८ | १ | ३ | रह | रहा | ·······क्यों हो रहा यों घात है। |
| २४६ | २ | ४ | मैं | × | ··· ··हूँ व्यथित दुर्व्यवहार से। |
| २५० | ४ | १ | सरन्ध्रि | सैरन्ध्रि | सैरन्ध्रि के ही रूप पर ····· |
| २५७ | ३ | १ | औ'+कर | हँस कर | बोली तभी उत्तरा हँस कर······ |
| २५७ | ३ | २ | कौरव | कौरवों | |
| २५७ | ४ | ३ | × | मैं | बोली वृहन्नला लाऊँगी मैं |
| २५७ | ५ | ४ | × | अब | बोला वृहन्नला से लौटो अब व्यर्थ······ |
| २५६ | २ | १ | वस्त्र | अस्त्र | |
| २६५ | १ | ४ | कुछ | × | क्षमा करो जो भूल हुई गुरु |
| २६६ | २ | २ | जरि | करि | ······सिंह टूटता करि दल पर |
| २७१ | २ | ४ | कुल सभा | संस्कृति | कभी उपेक्षा की न पाण्डवों ने संस्कृति मर्यादा की। |
| २८३ | २ | ४ | थे | × | एक दूसरे से यह कहते हैं मँडराता ····· |
| २६० | ४ | २ | अपयश | अयश | |
| ३०१ | ५ | ४ | पाया | पाये | |
| ३०५ | ४ | ३ | भी | × | ······दिखलाने की होती है। |
| ३०६ | ३ | २ | लिये | किये | |
| ३२६ | १ | ३ | कुछ | × | कष्टों में कब हुई निराशा······ |
| ३२८ | ३ | २ | वृत | व्रत | |
| ३२६ | १ | १ | रह | रहा | |
| ३२६ | ४ | ४ | मर्याद | मर्यादा | |
| ३३० | ५ | ३ | पट | पर | |
| ३३३ | १ | ३ | राखी | रखी | |
| ३३७ | ४ | १ | पूजनीय | पूजनीया | |
| ३४० | ३ | ४ | ब्याहा | भेजा | भेजा उसे था शाल्व को विख्यात है। |